जनवरी - जून 1996

वर्ष : 28, अंक : 1/2

# वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

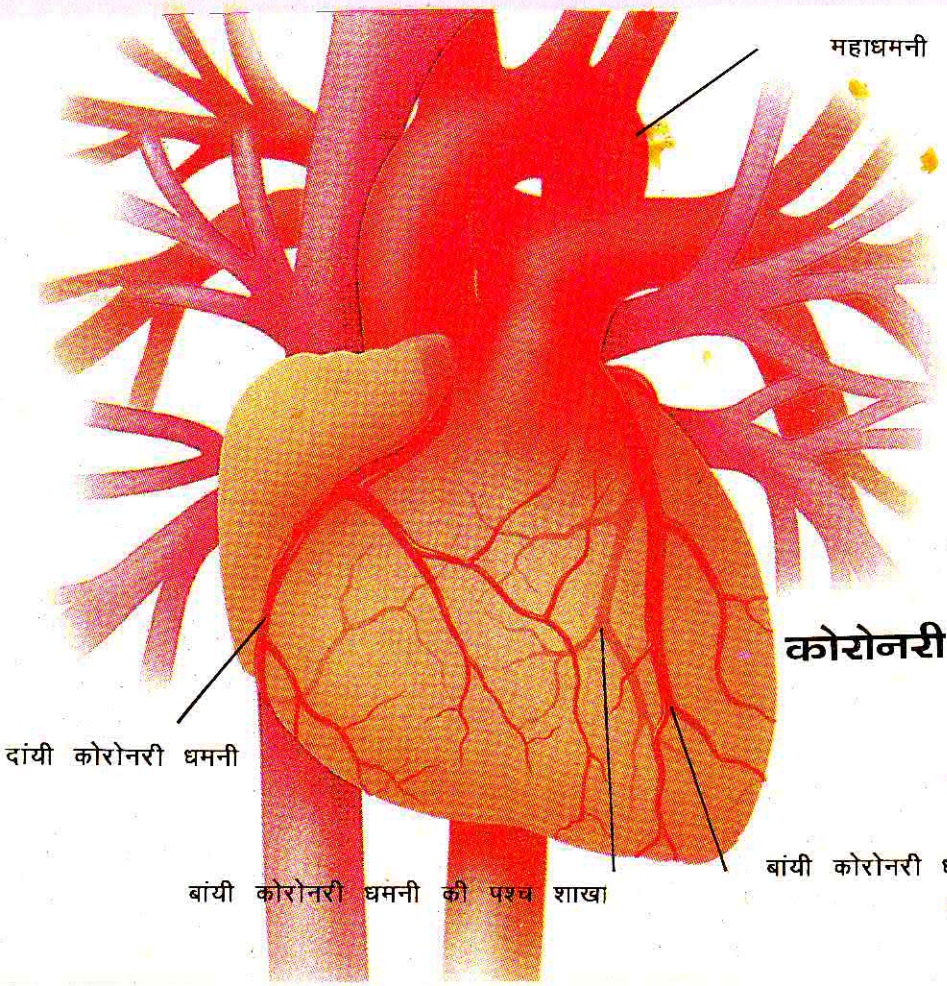


## कोरोनरी धमनियां

# हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन व प्रचार हेतु परिषद नियमित रुप से त्रैमासिक पत्रिका "वैज्ञानिक" का प्रकाशन, विज्ञान गोष्ठियों, वार्ताओं एवं अखिल भारतीय विज्ञान लेख प्रतियोगिता का आयोजन करती है।

परिषद की सदस्यता एवं " वैज्ञानिक" पत्रिका का शुल्क इस प्रकार है।

| | परिषद सदस्यता (रुपए में) | | | वैज्ञानिक शुल्क (रुपए में) | |
|---|---|---|---|---|---|
| | एक वर्ष | आजीवन | प्रवेश शुल्क | एक वर्ष | तीन वर्ष |
| व्यक्तिगत | 15 | 100 | 1 | 15 | 40 |
| संस्थागत | 25 | 250 | 1 | 25 | 70 |

- "वैज्ञानिक" के विशेषांकों का मूल्य अलग से निर्धारित होगा।
- वर्तमान नियमानुसार परिषद के सदस्यों को "वैज्ञानिक" निःशुल्क भेजी जाती है।
- सभी शुल्क हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के नाम से डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही भेजें। कृपया मुंबई से बाहर के चैक व मनीआर्डर द्वारा शुल्क न भेजें।
- कृपया शुल्क के साथ अपना निजी विवरण इस पत्रिका में दिये गये आवेदन पत्र के प्रारुप के अनुसार भेजें।

## " वैज्ञानिक" में विज्ञापन

हिंदी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाओं में "वैज्ञानिक" अग्रणी है। देश के सभी मुख्य वैज्ञानिक संस्थान इसके ग्राहक हैं। इस पत्रिका में आपके विज्ञापन आमंत्रित हैं। पूरे पृष्ठ की छपाई का आकार 16 सेमी X 21 सेमी है।

| विज्ञापन की दरें | : एक प्रति के लिए |
|---|---|
| अंतिम आवरण | : रु 2,500/- |
| दूसरा/तीसरा आवरण (अंदर) | : रु 2,000/- |
| पूरा पृष्ठ | : रु 1,500/- |
| आधा पृष्ठ | : रु 800/- |

## अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता - 1996

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ.केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। **लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है।** दो टंकित अथवा स्पष्ट लिखित प्रतियां (लगभग 3000 शब्द) निम्नलिखित पते पर भेजें। चित्रों को सफेद कागज पर काली रोशनाई से बनायें और लेख के अंत में संलग्न कर दें।

**पुरस्कार : प्रथम रु. 1500/-, द्वितीय रु. 1000/-, तृतीय रु. 500/-**

इसके अतिरिक्त पांच प्रोत्साहन पुरस्कार व अहिंदी भाषी प्रतियोगियों के लिए दो विशेष पुरस्कार - प्रत्येक रु. 300/- के दिये जायेंगे। अतः अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

**अंतिम तिथि : 15 दिसंबर 1996**

**विशेष** : *पुरस्कृत रचनाएं "वैज्ञानिक" की संपत्ति होंगी। "वैज्ञानिक" पत्रिका से संबंधित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।*

**प्रविष्टियां भेजने का पता :**

*डॉ. अशोक कुमार सूरी, सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, धातुकी प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्रांबे, मुंबई - 400 085.*

# अ नु क्र म णि का


वैज्ञानिक

वर्ष 28 अंक 1 व 2

जनवरी-जून 1996



**व्यवस्थापन मंडल**

श्री इंद्र कुमार शर्मा

डॉ. अशोक कुमार सूरी

श्री ललित कुमार

श्री कुलवंत सिंह

**संपादन मंडल**

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

श्री हरिओम मित्तल

डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला

श्री रामनाथ जिंदल

डॉ. राजनारायण पांडेय



**कार्यालय**

"वैज्ञानिक" हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेन्ट्रल काम्प्लैक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई - 400 085



संपादकीय 3

**लेख**

1. क्राउन ईथर-रसायन विज्ञान में क्रांतिकारी खोज 5
   — डॉ. अनिल कुमार
2. अंतर्राष्ट्रीय जालक्रम (इंटरनेट) की भूमिका 9
   — एस. वेंकटाचलम
3. टॉप क्वार्क की खोज 17
   — कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी
4. पानी एक मूलभूत आवश्यकता एवं निर्लवणीकरण तकनीक 25
   — विनय कुमार श्रीवास्तव
5. प्रकाशीय प्रौद्योगिकी के बढ़ते चरण 31
   — डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा एवं गजेंद्र प्रसाद डिमरी
6. निम्नतापीय (क्रायोजनिक) इंजन 40
   — डॉ. ए. के. शर्मा
7. नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद - सिद्धांत एवं अनुप्रयोग 43
   — जय प्रकाश सिंह
8. कंप्यूटर व भारतीय भाषाएं 50
   — अर्चना कटारिया
9. आधुनिक विज्ञान प्रगति में कंप्यूटर के उपयोग 53
   — जी. विजय कुमारी
10. परखनली शिशु : विज्ञान की अनोखी देन 58
    — हरेश्वर प्रभाकर मोरे
11. अपघटन : प्रकृति की एक अनूठी प्रणाली 60
    — डॉ. अ. ब. भट्ट
12. एरोमैटिक निष्कर्षण प्रौद्योगिकी : एक संक्षिप्त विवेचन 65
    — भगत राम नौटियाल, गुरुप्रसाद एवं डॉ. बचन सिंह रावत

**मानव स्वास्थ्य**

1. हमारा दिल 69
   — डॉ. आर. डी. लेले
2. कैन्सर के मनोवैज्ञानिक पहलू 73
   — नमिता शर्मा

● "वैज्ञानिक" में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

● "वैज्ञानिक" में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं. वि. सा. परिषद के पास सुरक्षित हैं।

● "वैज्ञानिक" एवं हिं. वि. सा. परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा।

शुल्क

**भारत में**

| | संस्थागत | व्यक्तिगत |
|---|---|---|
| एक वर्ष | 25 रु | 15 रु |
| तीन वर्ष | 70 रु | 40 रु |

**विदेश में**

(समुद्री डाक द्वारा प्रेषण)

| | संस्थागत | व्यक्तिगत |
|---|---|---|
| एक वर्ष | 45 रु | 35 रु |
| तीन वर्ष | 125 रु | 95 रु |

**शुल्क भेजने का पता**

**श्री ललित कुमार**

कोषाध्यक्ष, हिं. वि. सा. प.,
धातुकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

**"वैज्ञानिक" का शुल्क**

पाठकों से अनुरोध है कि यदि उनका 'वैज्ञानिक' का शुल्क समाप्त हो गया हो, तो उसे भेज कर नवीनीकरण करा लें।
यदि संभव हो तो
आजीवन सदस्य बन जायें।

## नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

1. उप-परमाण्वीय कणों की खोज — 78
— डॉ. विवेक एम. दातार
2. भ्रूण संबंधी (एम्ब्रॉयनिक) विकास का प्रारंभिक नियंत्रण — 84
— भगवती प्रसाद गुप्ता

## टिप्पणियां

1. अकेसिया की विभिन्न प्रजातियां एवं उनके उपयोग — 89
— एन. के. बौहरा
2. प्राचीन भारत में धातुकर्म तकनीकी तथा अभियांत्रिकी का विकास — 93
— डॉ. बाल गोविंद जायसवाल
3. मच्छरों को मारने में जैव नियंत्रण विधि का प्रयोग — 93
— डॉ. आर. एस. सेंगर
4. अब घोंघे से पौष्टिक व स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ बनेंगे — 94
— डॉ. आर. एस. सेंगर
5. मां के कार्यकलापों को पहचानता है गर्भस्थ शिशु — 95
— राजेंद्र कुमार राय
6. विकिरणोपचारीय चिकित्सा के कुछ पहलू — 97
— डॉ. श्रीमती प्रेम भार्गव

## विज्ञान कविता

99

## बाल विज्ञान

100

● बिजली के तारों पर बैठी चिड़िया को करंट क्यों नहीं लगता?
● क्या सौर ऊर्जा से सूर्य ताप से अधिक ताप प्राप्त किया जा सकता है?
● तारे क्यों टिमटिमाते हैं?
● तारे हमें छोटे क्यों दिखाई देते हैं ?
● पृथ्वी घूमती है पंसु हमें इसका पता नहीं चल पाता, क्यों?
● क्या चंद्रमा पृथ्वी से दूर हट रहा है ?
● वायु में नट कलाबाजी कैसे करते हैं?
— श्याम लाल धीमान

## विज्ञान समाचार

● भा. प. अ. केंद्र से — 103
● अन्य समाचार — 105
● संगोष्ठी समाचार — 106

## वैज्ञानिक संस्मरण

111

## कुछ फूल : कुछ कांटे

113

संपादकीय

# आधुनिक संचार माध्यम एवं जनजीवन

आधुनिक संचार व्यवस्था प्रकाशिकी फाइबर संचार, उपग्रह संचार तथा कंप्यूटर संचार तकनीकों के एक सुनियोजित सम्मिलन का परिणाम है। फलस्वरूप आज टेलेक्स, फैक्स, पेजर, सेल्युलर फोन, अंतर्राष्ट्रीय टेलीविजन, अंतर्राष्ट्रीय कंप्यूटर इत्यादि सुविधाएं उपलब्ध हो गयी हैं जिन्होंने हमारे आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण में प्रभावी तौर पर परिवर्तन लाया है। हमारे देश की संचार सुविधाओं में आया परिवर्तन राष्ट्र की संचार नीति में अपनाये गये सकारात्मक दृष्टिकोण का परिणाम है। मानव सभ्यता के साथ-साथ समय, परिस्थिति एवं आवश्यकताओं के अनुरूप संचार पद्धतियां बदलती गयीं। ऐसा माना जाता है कि ईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व सुमेरियन सभ्यता के दौरान संचार के लिए लिखने की शुरुआत चित्रों जैसे संकेतों के प्रयोग के साथ हुई। ये चित्र पहले वस्तुओं को इंगित करते थे तथा बाद में इन्होंने आवाज का स्थान ले लिया। देखा जाय तो संचार के लिए भाषा की आवश्यकता अहम् है। फिर चाहे वह आंखों की हो, संकेतों की, मशीन की अथवा शब्दों की। चित्रकारी एवं संगीत का भी संचार में महत्वपूर्ण स्थान है।

यदि मानव सभ्यता के इतिहास को देखें तो पाते हैं कि संदेश पहुंचाने या संचार के लिए मौलिक तौर पर दो पद्धतियां उभर कर सामने आयी हैं। एक तो वह जिसमें सुनने, बोलने, देखने की क्षमताओं का सीधा उपयोग हुआ और दूसरा वह जिसमें लिखने-पढ़ने, चित्रकारी आदि कलाओं को अपनाया गया। संचार के लिए दो तरह की आवश्यकताएं सदैव से रहीं। पहली निकट संचार की तथा दूसरी दूर संचार से संबंधित। आरंभ से मानव ने निकट संचार के लिए शब्दों, हाव भाव इत्यादि का सहारा लिया तथा एक इलाके से दूसरे इलाके तक, एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी तक संदेश पहुंचाने के लिए धुआं, आग की ज्वाला, ढोल-ड्रम के ध्वनि संकेत आदि का प्रयोग किया। यही नहीं, हमारी पौराणिक कथाओं में कबूतरों, घोड़ों, मानवों आदि का संदेश वाहक के रूप में चर्चा मिलती है। आकाशवाणी द्वारा चेतावनी की घोषणा, टेलीपैथी द्वारा घटनाओं का पूर्वाभास होना भी कम रोचक उदाहरण नही हैं। यहीं पर अफ्रीका में बातचीत करने वाले विशेष ड्रम का जिक्र असंगत न होगा। अमरीकी अन्वेषक एच एम स्टेनल ने 1875-77 के दौरान बताया कि ये ड्रम लगभग 12 मीटर लंबे होते थे और विभिन्न तीव्रता के आघातों एवं स्वरों को उत्पन्न कर वार्तालाप किया जाता था।

यदि देखा जाय तो संदेश पहुंचाने तथा एक दूसरे से अपनी बात कहने के कार्य की मौलिक आवश्यकता तो सदैव से चली आ रही है तो फिर तब और अब में फर्क क्या है ? पहले दूर संचार का दायरा वहीं तक होता था जहां तक आवाज पहुंच पाती थी या धुएं या आग की लपटों को आंखें देख पाती थीं अथवा झंडियों द्वारा संकेतों को समझा जा सकता था। परंतु अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति से संदेश पहुंचाने की दूरियां क्रमशः बढ़ती गयीं। एक ओर देखने, सुनने तथा बोलने की क्षमताओं में माइक्रोफोन, लाउडस्पीकर, सूक्ष्मदर्शी, दूरदर्शी (दूरबीन) इत्यादि उपकरणों द्वारा बढ़ोतरी हुई तथा दूसरी ओर लिखने-पढ़ने से संबंधित कलाओं के लिए टाइपराइटर, प्रिंटिंग मशीन, टेली प्रिंटर इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर, कंप्यूटर इत्यादि यंत्रों का आविष्कार हुआ। फलस्वरूप आज की स्थिति में हम न केवल एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक, एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र तक बल्कि अंतरिक्ष तक संदेशों को कुछ क्षणों में पहुंचाने में समर्थ हो गये हैं। आधुनिक दूर संचार की दिशा में दो पद्धतियों के विकास का विशेष महत्व है; इनमें से एक है मार्गदर्शित पद्धति जिसमें सिगनल-संकेतों को धातु के तार या कांच के तंतुओं में प्रवाहित कर गंतव्य स्थान पर पहुंचाने का कार्य किया जाता है तथा दूसरी अमार्गदर्शित पद्धति जिसमें संकेतों को वायुमंडल में विद्युत-चुंबकीय तरंगों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से टेलीग्राफ यानी तार (मार्गदर्शित) द्वारा संदेश भेजने का काम 1787 में प्रारंभ हुआ। इसके बाद अलेक्जेंडर ग्राहम बेल ने 10 मार्च 1876 को टेलीफोन का पहला प्रदर्शन किया।

संचार के क्षेत्र में बेतार तकनीक (अमार्गदर्शित) का महत्व किसी से छुपा नहीं है। 19वीं शताब्दी के आरंभ में इंग्लैंड के माइकल फैराडे ने विद्युत-चुंबकीय तरंगों की खोज की और जर्मनी के हेनरिच हर्ज ने इन तरंगों पर अध्ययन करते हुए अधिक तरंग दैर्ध्य वाली रेडियो तरंगों की पहचान की। अपने अथक प्रयासों से इटली के गुग्लीलमों मारकोनी ने 1896-97 में विद्युत चुंबकीय तरंगों का उपयोग करके बेतार यानी वायरलेस टेलीग्राफी में सफलता हासिल की। इसके उपरांत 1926 में बेयर्ड ने टेलीविजन का आविष्कार किया। उपग्रह संचार व्यवस्था जिसने आज सारे विश्व को एक साथ जोड़ दिया, की परिकल्पना 1945 में आर्थर

क्लार्क ने की थी । उपग्रह संचार में लेसर के प्रयोग से लगभग 1-16 गीगाबाइट की दर से सूचनाओं का आदान प्रदान संभव हो गया है । इस क्षेत्र में प्रकाश संचरण द्वारा और भी अधिक परिशुद्धता आयी है । और अब कंप्यूटरों के उपयोग ने संचार को लगभग नया मोड़ दे दिया है । रेलवे तथा हवाई यात्राओं के आरक्षण में कंप्यूटरीकरण द्वारा हमें काफी सुविधा एवं सरलता मिली हुई है । आज का बहुचर्चित इंटरनेट उपग्रह एवं कंप्यूटरों द्वारा होने वाले संचार का प्रतिफल है । कंप्यूटरों द्वारा लोकल एरिया नेटवर्क से इंटरनेट तक का विकास वस्तुतः वर्तमान इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है । **[इंटरनेट के बारे में कुछ जानकारी इस अंक में अलग से दी गयी है ।]** अंतर्राष्ट्रीय जाल क्रम यानी इंटरनेट के स्थापित हो जाने से संसार के तमाम कंप्यूटर आपस में जुड़ से गये हैं । फलस्वरूप बंबई में बैठा वैज्ञानिक या व्यापारी न्यूयार्क या टोक्यो के वैज्ञानिक या व्यापारी के कंप्यूटर तक अपनी पहुंच बना पा रहा है । इलेक्ट्रॉनिक ट्रेड एवं टेक्नोलॉजी विकास, कार्पोरेशन (ET&T) ने अभी हाल में ऐसा इंटरनेट कंप्यूटर विकसित किया है जिसके उपयोग से लगभग एक लोकल कॉल की कीमत पर इंटरनेट से सूचना प्राप्त की जा सकेगी । जहां एक ओर बहुमाध्यम टेलीविजन प्रसारण द्वारा दुनिया के किसी कोने में होने वाली घटनाओं का तत्काल देखा जाना संभव हो गया है वहीं घर बैठे कंप्यूटर को निर्देश देकर मीलों दूर प्रयोगशाला, या फैक्टरी में उपकरणों को स्टार्ट भी किया जा सकता है । सेल्यूलर फोन द्वारा आवश्यक निर्देश एवं जानकारी को समय पर पहुंचाना भी संभव है । देखा जाय तो आज की संचार व्यवस्था ने हमारी जीवन शैली में कई बदलाव लाये हैं । जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में सूचनाओं और विचारों के मुक्त प्रवाह की सुविधा उपलब्ध हो गयी है तो राष्ट्रीय सुरक्षा तथा सामाजिक जीवन से संबंधित कुछ प्रश्न भी उठने लगे हैं । इससे व्यक्तिगत तथा निजी जीवन पर भी हस्तक्षेप होने का खतरा लगता है । इसके द्वारा अश्लील साहित्य तक पहुंच आसान हो गयी है जिसका हमारी संस्कृति एवं पारिवारिक जीवन पर कुप्रभाव की संभावना अधिक है । क्राइम की दुनियां को भी इस माध्यम से लाभ मिल रहा है क्योंकि पुलिस की खुफिया सूचनाओं एवं योजनाओं को वे आसानी से जान जाते हैं, अतः इस ओर विशेष सचेत रहने की आवश्यकता है । यही नहीं इसकी बहुतायत से एक वैचारिक शून्यता पनप रही है । बहु माध्यम, बहुराष्ट्रीय टेलीविजन ने तो जन सामान्य का सारा समय ही ले लिया है । बच्चे तथा भावी प्रतिभाओं में चिंतन की प्रवृति कम होती जा रही है क्योंकि इतनी अधिक पकी पकाई सामग्री टेलीविजन पर मिल जाती है की वे उस भ्रष्ट दायरे (vicious circle) से बाहर नहीं निकल पाते । गंभीर लेखन एवं पढ़न पाठन की आदत एकदम घटती जा रही है जो निसंदेह, एक विचारणीय प्रश्न है ।

लॉर्ड रीथ के अनुसार 'माध्यम' ही संदेश है (Medium is the message), हमें इस ओर सचेत करता है कि सूचना प्रसार में हमें विशेष सावधानी बरतनी चाहिए अन्यथा उसके दुरुपयोग की संभावना बढ़ जाती है । आज यह देखते को मिलता है कि, रेडियो, टेलीविजन, पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग विभिन्न वर्ग, चाहे वह व्यापारी हों अथवा राजनैतिक शक्तियां अपने-अपने स्वार्थ को मद्देनजर रखकर करने का प्रयास कर रहे हैं । आज स्थिति यह है कि यदि कोई राजनैतिक दल या व्यापारी वर्ग किसी टेलीविजन चैनल को खरीद लेता है तो उसके माध्यम से वह राष्ट्र की सत्ता, अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन पर भरपूर प्रभाव डाल सकता है । लंदन विश्वविद्यालय में कार्यरत भारतीय दार्शनिक प्रो. ए. जे. अय्यर ने कहा है कि बुरा प्रसार अच्छाई को भी भ्रष्ट कर देता है । विकास की प्रक्रिया को जारी रखते हुए जिन नवीनतम तकनीकों को विज्ञान सामने ला रहा है, उन्हें रोका तो नहीं जा सकता है परंतु उनके दुरुपयोग से जन साधारण पर पड़ने वाले प्रभाव को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है । अतः मानवता की भलाई तथा राष्ट्रीय हित में यह नितांत आवश्यक है कि प्रसारण में विशेष संयम एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण रखा जाय ।

●

प्रस्तुत अंक वर्ष 1996 का जनवरी-जून सयुक्तांक है । इसमें अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) में पुरस्कृत लेखों के अतिरिक्त कई अन्य लेखों / टिप्पणियों का समावेश है । इस अंक से 'मानव स्वास्थ्य' से संबंधित एक नये स्तंभ की शुरुआत की जा रही है जिसके अंतर्गत प्रतिष्ठित एवं दक्ष चिकित्सकों द्वारा लिखित लेख प्रस्तुत करने का प्रयास किया जायेगा । कृपया अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें लाभान्वित करते रहें । आशा है पाठकों / लेखकों का सहयोग बना रहेगा ।

डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

# क्राउन ईथर-रसायन विज्ञान में क्रांतिकारी खोज

**डॉ. अनिल कुमार**

प्रीफ्री संयंत्र, बी. ए. आर. सी.,
तारापुर (थाने), पो. ओ. धिवली-401 502.

**रसायनशास्त्र में ईथर (एक कार्बनिक ऑक्साइड) तथा पॉलीईथर की विलेय क्षमता के बारे में आपने पढ़ा होगा। इन्हें जब किसी कार्बनिक विलायक में मिलाया जाता है तो विलायक में धातु आयन को विलेय करने की क्षमता आ जाती है। इन पॉलीईथरों की एक विशिष्ट चक्रीय संरचना होती है जिसमें ऑक्सीजन की भूमिका अहम है। नोबेल पुरस्कार विजेता डॉ. पेडरसन ने इसे क्रॉउन ईथर का नाम दिया। इन्हें मैक्रोसाइकलिक यौगिक भी कहा जाता है। ये अणु विभिन्न प्रकार के धनायनों (अमोनिया सहित) तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में ऋणायनों के साथ बंधन का निर्माण करते हैं। समस्थानिक विलगीकरण, एक्टिनाइड विलायक निष्कर्षण, द्रव मेंबरेन वाहक इत्यादि क्षेत्रों में क्रॉउन ईथर का उपयोग हो रहा है। इन यौगिकों के बारे कुछ जानकारी इस लेख में दी जा रही है।**

वर्ष 1987 का रसायन-विज्ञान का नोबेल पुरस्कार तीन व्यक्तियों को संयुकत रूप से दिया गया था, जिनमें डॉ. चार्ल्स पेडरसन और डॉ. डोनाल्ड क्रेम अमेरिका के निवासी तथा डॉ. जीन मेरी लेहन फ्रेंचवासी थे। इन्हें यह पुरस्कार रसायन विज्ञान में "आण्विक पहचान" या "होस्ट - गेस्ट" रसायन पर उल्लेखनीय कार्य के लिए प्रदान किया गया था। इस विषय से यह जानकारी प्राप्त होती है कि अणु पहचान कैसे करते हैं। उदाहरणस्वरूप एक प्रोटीन अणु दूसरे प्रोटीन अणु को कैसे पहचानता है और उसकी प्रतिक्रियात्मक अभिक्रिया क्या होती है या एक एन्टीबॉडी एक एन्टीजन को कैसे पहचानता है। आण्विक पहचान के द्वारा औषधीय-विज्ञान ने दवाओं की खोज में क्रांतिकारी सफलता प्राप्त की है। वातावरण में उपस्थित घातक रसायनों की खोज अब "आण्विक पहचान" पर आधारित नयी अभिकल्पना से निर्मित संवेदनशील यंत्रों द्वारा की जा सकती है।

नार्वे दंपति के पुत्र एवं कोरिया में जन्मे डॉ. पेडरसन ने, जो अब अवकाशप्राप्त जीवन बिता रहे हैं, वर्ष 1953 में अमेरिका की नागरिकता प्राप्त की थी। विलमिंग्टन स्थित डयू-पॉन्ट संस्थान में, पेडरसन जब एक संदूषित रसायन से एक यौगिक का संश्लेषण कर रहे थे, तो उन्हें इच्छित यौगिक के साथ-साथ एक उपोत्पाद की प्राप्ति हुई। इस उपोत्पाद को उन्होंने संरक्षित करके भविष्य में अध्ययन के लिए रख दिया। बाद में अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि इस उपोत्पाद की यौगिक संरचना अदभुत है - इसमें कार्बन के बारह और ऑक्सीजन के छः परमाणु हैं। प्रत्येक ऑक्सीजन के बीच में दो कार्बन हैं। रसायन शास्त्र के अनुसार यह वलय ईथर का अणु है। चौबीस वर्ष पूर्व पेडरसन को इसका किंचित आभास भी न था कि यह उपोत्पाद उन्हें नोबेल पुरस्कार दिलवायेगा। प्रश्न यह है कि इस ईथर वलय में ऐसा अदभुत क्या है ? यदि इसे किसी कार्बनिक विलायक में मिलाया जाय तो यह उस विलायक को, अपने में धातु आयन विलेय करने की क्षमता प्रदान कर सकता है। उदाहरणार्थ कास्टिक-सोडा जल में विलीन हो जाता है पर ईथर या बेंजीन में विलीन नहीं होता है, यदि बेंजीन में

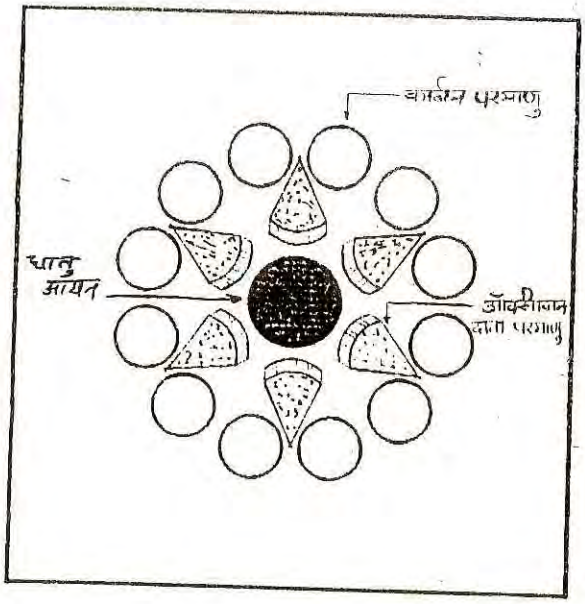


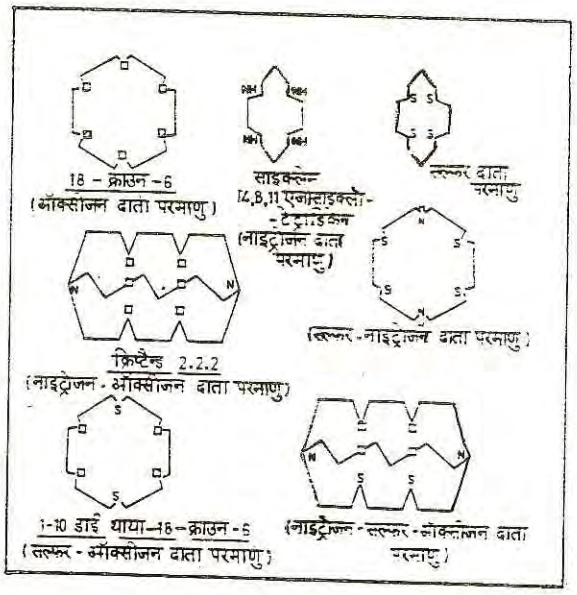


**चित्र-2 : संश्लेषित मैक्रोसाइकलिक यौगिक**

थोड़ा पॉलीईथर मिला दिया जाय तो यह घोल कास्टिक सोडे को अपने में विलीन कर लेता है।

जैसे कि जलीय विलयन में जल के छः अणु सोडियम आयन को बांधते हैं उसी तरह ऑक्सीजन के छः परमाणु पॉलीईथर को बांधकर एक मुकुट की विशिष्ट आकृति प्रदान करते हैं। पेडरसन ने इसलिए इनका नामकरण किया "क्राउन ईथर"। आजकल इन यौगिकों को अन्य नामों से भी पुकारते हैं जैसे - मैक्रोसाइकल्स, मैक्रोहेट्रोसाइकल्स या मल्टीडेन्टेड मैक्रो-साइक्लिक यौगिक।

डोनाल्ड क्रेम, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय लॉस एन्जलेस में रसायन विज्ञान के प्राध्यापक हैं। वह तब ड्यूपॉन्ट कंपनी के सलाहकार थे जब पेडरसन क्रॉउन-ईथर के आविष्कार में व्यस्त थे। क्रेम ने देखा कि क्रॉउन-ईथर को इस तरह से रूपांतरित किया जा सकता है कि अणुओं के दर्पण प्रतिबिंब में अंतर की पहचान की जा सके जो अन्यथा कठिन है। मनुष्य के शरीर में एन्जाइमों की वरण क्षमता इसी गुण पर निर्भर करती है। यदि क्रॉउन ईथर एन्जाइमों का अनुकरण कर सके तो परिष्कृत रसायनों एवं कृषि रसायनों का उत्पादन सरलता एवं शीघ्रता से किया जा सकेगा। वास्तव में क्रेम ने यही सफलतापूर्वक किया। उन्होंने 'होस्ट' अणुओं की अभिकल्पना की एवं उनका संश्लेषण किया जो कि खोखले गोले या अर्धगोले के रूप में थे और जो 'गेस्ट' अणुओं को प्रभावी रूप से बांध सकते हैं।

जीन मेरी लेहन ने क्रॉउन ईथर के दो ऑक्सीजन परमाणुओं को नाइट्रोजन के परमाणुओं से प्रतिस्थापित किया। वे क्रॉउन-ईथर के अणु में दूसरे पॉलीईथर वलय को जोड़ सके, जिसके फलस्वरूप क्रॉउन-ईथर द्वारा धातु के धनायनों व जैविक-सक्रिय पदार्थों जैसे एसिटल कोलाइन का बांधना/पहचानना संभव हो गया।

मैक्रोसाइकलिक अणु विभिन्न प्रकार के धनायनों (अमोनिया सहित) के साथ बंधन का निर्माण करते हैं तथा कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में ऋणायनों के साथ भी। इन आयनों एवं मैक्रोसाइकलिक यौगिकों का निर्माण एवं ऊष्मागतिक स्थायित्व निम्न कारकों द्वारा प्रभावित होता है :

(क) वलय में बंधन-स्थान का प्रकार।

(ख) वलय में बंधनों की संख्या।

(ग) आयन और मैक्रोसाइकलिक कोटर की सापेक्षिक आकृति।

(घ) बंधन-स्थान की भौतिक-स्थिति।

(ड) वलय में त्रिविम विन्यासी बाधा ।

(च) विलायक एवं विलायक संकरण की सीमा तथा बंधन स्थान ।

(छ) आयन पर वैद्युत आवेश ।

अत: मैक्रोसाइकलिक अणुओं के संश्लेषण की काफी संभावनाएं हैं, जो कि धातुओं के साथ बंधन निर्माण करने में अत्यधिक वरण क्षमता प्रदर्शित करते हैं । उदाहरणस्वरूप कुछ चक्रीय पॉलीईथर न केवल कुछ विशेष क्षार और क्षारीय मृदा धातु के साथ बंधन निर्माण करते हैं बल्कि कुछ आयनों को मृदा-धातु श्रेणी के अन्य आयनों से बंधन निर्माण करने में सहायता प्रदान करते हैं ।

कुछ संश्लेषण माइक्रोसाइकलिक यौगिक चित्र-2 में प्रदर्शित किये गये हैं ।

सर्वप्रथम चक्रीय पॉलीईथर यौगिक (डाईबेंजो-18-क्राउन - 6) का निर्माण अप्रत्याशित रूप से एक उपोत्पाद के रूप में हुआ था जब बिस [2-(O-हाइड्रोक्सी फिनाक्सी) ईथर] का संश्लेषण बिस (2 - क्लोरोईथाइल) ईथर और [2 (हाइड्रोक्सी फिनाक्सी) टेट्राहाइड्रोपाइरान] के सोडियम लवण जिसमें थोड़ी मात्रा में कैटेकोल होता है, की अभिक्रिया के द्वारा कराया गया था । तब से अब तक साठ से ज्यादा पॉलीईथरों का संश्लेषण हो चुका है । (क्रॉउन-ईथर के कोटरों के व्यास के लिए तालिका-1 देखें)

## क्रॉउन-ईथर का वर्गीकरण :

सांस्थितिक दृष्टिकोण से उदासीन कार्बनिक मैक्रोसाइकल्स का निम्न वर्गों में विभाजन किया गया हैं :-

**(1) कोरोनेन्डस :** बहुदंती मोनोसाइकलिक लिजेन्ड जब किसी भी दाता हेटरोएटम के साथ होता है तब कोरोनेन्डस कहलाता है । परंतु क्रॉउन ईथर उन आलिगोईथर को ही कहते हैं जिसमें ऑक्सीजन दाता परमाणु के रूप में होता है ।

**(2) क्रिप्टैन्डस :** जब द्वि या बहु मैक्रोसाइकलिक लिजेन्ड किसी भी हेटरोएटम के साथ होता है तो क्रिप्टैन्डस कहलाता है । ये बहुचक्रीय पॉलीईथर या पॉलीअमीन होते है जिनमें दो अमीन वर्ग पुल के समान होते है और नाइट्रोजन और / या ऑक्सीजन दाता परमाणु के रूप में होते हैं । क्रिप्टैन्डस, (पिंजड़ें के सदृश यौगिक) की त्रिआयामी ढांचे के रूप में वरण क्षमता बहुत अधिक होती है तथा ये धातु संकर बनाते हैं ।

**(3) पोडेन्डस :** ये चक्रीय रूप में कोरोनेन्डस या क्रिप्टैन्डस के सदृश्य होते हैं । ये सरल एवं अपेक्षाकृत सस्ते क्राउन ईथर होते हैं ।

**(4) स्फीरिन्डस :** इसमें एक मजबूत ढांचे के अंत: वलय स्थान पर दाता परमाणु वर्ग जुड़े होते हैं जो कि वलयाकार संकर रचना बनाते हैं ।

## क्रॉउन-ईथर के उपयोग :

आज क्रॉउन-ईथर का उपयोग विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में हो रहा है । इनमें से कुछ उपयोग नीचे दिये गये हैं –

**(1) समस्थानिकों के विलगीकरण में मैक्रोसाइकल्स का उपयोग :-** कैल्शियम के भारी समस्थानिकों का, $DC_{18}C_6$ के प्रयोग द्वारा समृद्धिकरण, तकनीकी रूप से संभव है । उन समस्थानिकों का, जिनके द्रव्यमान में एक यूनिट का अंतर है, सिंगल स्टेज सेपरेशन फैक्टर ($K_s F$) इन मैक्रोसाइक्ल्स के साथ 1.001 पाया । विभिन्न मैक्रोसाइक्लों का प्रभाव रासायनिक विनिमयीकरण द्वारा

**तालिका - 1 : क्रॉउन ईथर के कोटरों का व्यास**

| क्राउन ईथर | व्यास (एंगस्ट्रॉम में) |
|---|---|
| 14 - क्राउन - 4 | 1.2 - 1.5 |
| 15 - क्राउन - 5 | 1.7 - 2.2 |
| 18 - क्राउन - 6 | 2.6 - 3.2 |
| 21 - क्राउन - 7 | 3.4 - 4.2 |
| **क्रिप्टैन्ड** | |
| क्रिप्टैन्ड [2.1.1] | 1.6 |
| क्रिप्टैन्ड [2.2.1] | 2.2 |
| क्रिप्टैन्ड [2.2.2] | 2.8 |
| क्रिप्टैन्ड [3.2.2] | 3.6 |

समस्थानिक विलगीकरण पर भिन्न-भिन्न होता है। लिथियम धातु संबंधित कुछ चुनिंदा परिणाम तालिका - 2 में दिये गये हैं।

**तालिका - 2 : मैक्रोसाइकल्स एवं उनके एकल चरणीय पृथकीकरण कारक**

| मैक्रोसाइकल | ऋणायन | सिंगल स्टेज सेपरेशन फैक्टर ($K_sF$) |
|---|---|---|
| $DC_{18}C_6$ | $Br^-$ | 1.0086 |
| क्रिप्टैन्ड [2.2.2] | $Br^-$ | 1.0106 |
| टेट्राब्यूटाइल साइक्लो | $Br^-$ | 1.02 |
| हेक्सेनो -15-क्राउन -5 | $TFA^-$ | 1.02 |
| क्रिप्टैन्ड [2.2.1] | TFA+HFTA | 1.04 |

**(2) एक्टिनाइड के विलायक-निष्कर्षण अध्ययन में मैक्रोसाइक्लिक यौगिकों का उपयोग :-**

क्रॉउन-ईथर का एक महत्वपूर्ण गुण है कि ये उच्च रेडियो एक्टिव क्षेत्र में स्थायी रहते हैं, जिससे इनका उपयोग एक्टिनाइडों के पृथक्करण में किया जाता है। $DC_{18}C_6$ और $DCH_{24}C_8$, लेन्थेनाइड्स या एक्टिनाइड्स के पोलर माध्यम (जैसे बेन्जोनाइट्रेट या नाइट्रोबेंजीन) में निष्कर्षण के लिए अति उपयोगी हैं। $DC_{18}C_6$ का उपयोग यूरेनियम (VI) और प्लूटोनियम के निष्कर्षण के लिए किया जा सकता है। इसका उपयोग इनके एक्टिनाइड्स की पुनः प्राप्ति एवं शुद्धिकरण के लिए किया जा सकता है।

**(3) क्रॉउन-ईथर का द्रव मेंबरेन वाहक के रूप में उपयोग :-**

क्रॉउन ईथर या क्रिप्टैन्ड के प्रयोग के संदर्भ में धनायनों के एक फेज से दूसरे फेज में परिवहन के संबंध में पर्याप्त अध्ययन किया गया है। मैक्रोसाइक्लिक लिजैन्ड को जल विरोधी द्रव मेंबरेन में धनायन वाहक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। ये वाहक विशेष कार्यविधि अपारगम्य मेंबरेन को भी भेद सकते हैं। लिजैन्ड का का धनायन चयन, मेंबरेन चयन के रूप में बदल जाता है। (चित्र- 3 देखें)।

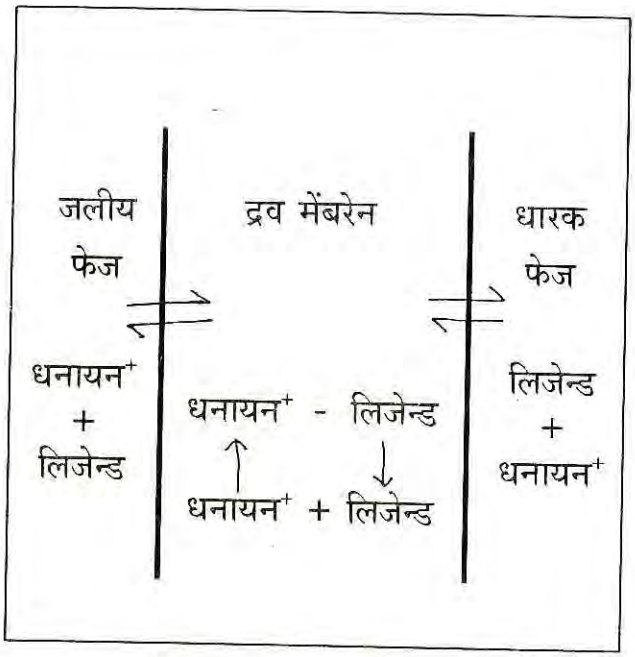


**चित्र-3**

क्रॉउन ईथर को धातु आयन के आकार के अनुरूप संश्लेषित किया जा सकता है और उसे धातु आयन को मिश्रण से सफलतापूर्वक अलग करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इन यौगिकों एवं इनके सम्मिश्र के विशिष्ट सम्मिश्रित एवं विलायक संकरण गुणों के आविष्कार के पश्चात, इन्होंने विज्ञान एवं तकनीकी के दक्ष क्षेत्रों जैसे उत्प्रेरक, निष्कर्षण धनायन वाहक, औषधि जैविकी - सक्रिय आधार, विश्लेषात्मक अभिकर्मक और समस्थानिकों के पृथक्कीकरण में प्रयोग का एक नया मार्ग खोल दिया है।

इस क्षेत्र का भविष्य साधारण ईथर व क्रिप्टैन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि भविष्य के सुपर अणु का संश्लेषित होना अभी शेष है। क्रॉउन व क्रिप्टैन नये रसायनों की संरचना को परिभाषित करने में अत्यंत सहायक हैं। इसमें दो राय नहीं हैं कि भविष्य का कार्य विशिष्ट साधनों द्वारा धनायनों, अणुओं व सुपर अणुओं की पहचान करना है जिसमें क्रॉउन-ईथर अत्यंत सहायक है।

❑❑❑

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

# अंतर्राष्ट्रीय जालक्रम (इंटरनेट) की भूमिका

**एस. वेंकटाचलम**
विभागाध्यक्ष, धातुकी अभियांत्रिकी एवं पदार्थ विज्ञान विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई - 400 076

**अंतर्राष्ट्रीय जालक्रम (इंटरनेट) संचार प्रौद्योगिकी की नवीनतम क्रांतिकारी देन है। दुनिया भर के तमाम कंप्यूटरों को जोड़कर बनाये गये इस जालक्रम के उपयोगों की जानकारी से आप विस्मय-विमुग्ध हो उठेंगे। इसकी उपलब्ध सेवाओं में शामिल हैं – ई-मेल, एफ टी पी, टॉक, इंटरनेट फोन, न्यूज, वर्ल्ड-वाइड वेब, टेलनेट इत्यादि। इंटरनेट के विकास से देशों की दूरियां सचमुच सिमट गयी हैं। इन्हीं पहलुओं पर इस लेख में सर्वोपयोगी जानकारी दी गयी है।**

मानव सभ्यता ने संचार प्रौद्योगिकी में अनेक क्रांतियां देखी हैं। इंटरनेट इस श्रृंखला की नवीनतम कड़ी है। अखबारों में और पत्रिकाओं में इंटरनेट इन्फॉर्मेशन हायवे, सायबर स्पेस जैसे शब्द छपते रहते हैं। इंटरनेट को अंतर्राष्ट्रीय जालक्रम कह सकते हैं। जिसमें दुनिया भर के तमाम कंप्यूटरों को आपस में जोड़ा गया है।

शुरू में कंप्यूटरों से केवल गणितीय परिगणना का ही कार्य लिया जाता था, किंतु आज कंप्यूटर के लगभग 80% प्रतिशत उपयोग को असांख्यिकीय कहा जा सकता है। अब यह एक बेहतर सूचना संसाधन यंत्र सिद्ध हो रहा है।

कंप्यूटर कैसे काम करता है ? यह जानना बहुत आसान है। कंप्यूटर एक ही भाषा - द्विआधारी (बायनरी) भाषा जानता है। इस भाषा में सिर्फ दो संख्याओं (0 और 1) उपयोग होता है। आप कल्पना कीजिए कि कंप्यूटर के अंदर एक स्विच है। यदि यह चालू रहेगा तो संख्या एक (1) और बंद रहेगा तो संख्या शून्य (0) होगी। किसी भी आंकड़े को कंप्यूटर ज्यादा और कम वोल्टेज द्वारा ही समझता है। कंप्यूटर की दुनिया के शब्दों में इन्हें बिट्स कहते हैं। आठ बिटों को एक बाइट माना जाता है। सभी सूचनाओं को कंप्यूटर बाइटों के रूप में संचित करता है

अनेक कंप्यूटरों को एक साथ जोड़ने से कंप्यूटर नेटवर्क अथवा कंप्यूटर जालक्रम बनता है। नेटवर्क की सहायता से कंप्यूटर संबंधी उपकरणों को आपस में बांटकर उपयोग किया जा सकता है। मान लीजिए आपके कार्यालय में 20 असंयुक्त कंप्यूटर हैं। उनमें से कुछ पहली मंजिल पर और कुछ तीसरी मंजिल पर हैं। ऐसी अवस्था में यदि एक कंप्यूटर में कुछ ऐसी सूचना है जिसे दूसरे कंप्यूटर में उपयोग करना है तो उस सूचना की एक फ्लॉपी में प्रतिलिपि बनानी पड़ेगी फिर स्वयं ले जाकर दूसरे कंप्यूटर में फ्लॉपी लोड करनी होगी। अगर नेटवर्क होगा तो यही काम तुरंत हो जायेगा। कुंजीपटल (की-बोर्ड) में कुछ कुंजियां दबाने से एक ही जगह बैठे-बैठे आपका काम हो जायेगा।

जानकारी या सूचना के मुद्रण (प्रिंटिग) करने के लिए भी जालक्रम लाभदायक होगा। दफ्तर में सामान्यतः सभी कंप्यूटरों के लिए अलग-अलग प्रिंटर (मुद्रित्र) खरीदना है तो संभवतः सभी प्रिंटर अत्यंत सस्ते किस्म के हो सकते हैं। यदि कंप्यूटरों का एक जालक्रम निर्माण कर दें तो हम थोड़े सस्ते और थोड़े लेज़र प्रिंटर भी खरीद सकते हैं। इससे सभी उपभोक्ता विभिन्न प्रिंटरों का उपयोग कर सकते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने कंप्यूटर से किसी भी प्रिंटर पर मुद्रण कार्य कर सकता है।

एक कंप्यूटर की प्रक्रियासामग्री (सॉफ्ट वेयर) को नेटवर्क द्वारा सभी कंप्यूटरों में उपयोग किया जा सकता है। यदि कोई क्रमादेश (प्रोगाम) आपके कंप्यूटर में चलाने

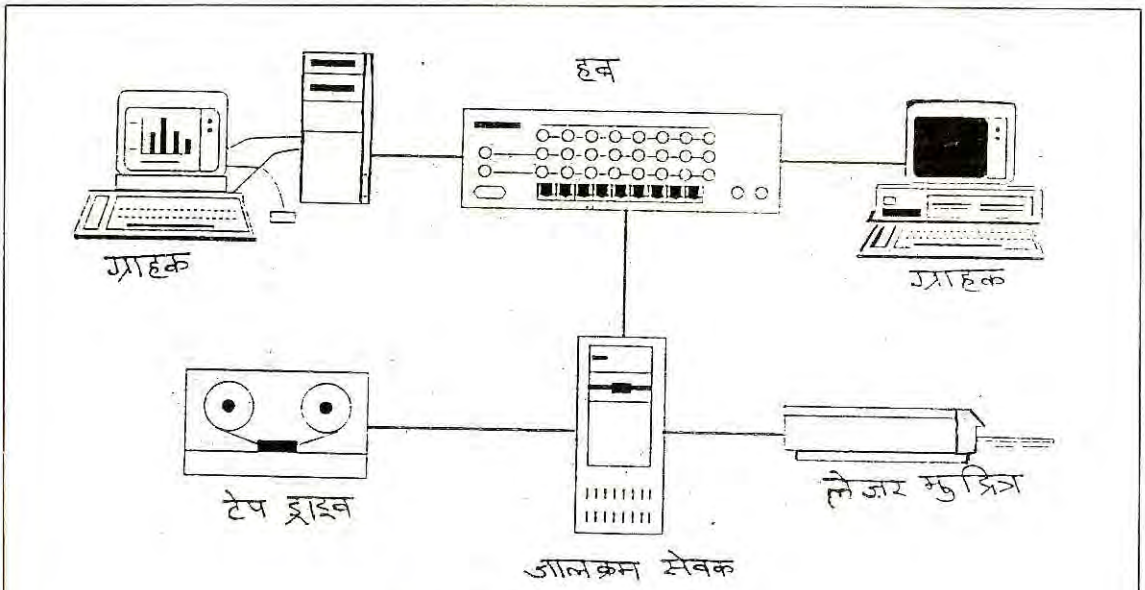


*चित्र - 1 : एक साधारण जालक्रम*

के लिए बहुत बड़ा है अथवा बहुत मंद गति से कार्य करता है तो उसे अनेक जालक्रमित कंप्यूटरों पर समानांतर संसाधन (पैरेलल प्रोसेसिंग) के लिए आसानी से वितरित किया जा सकता है। एक साधारण नेटवर्क चित्र-1 में प्रदर्शित है।

किसी भवन अथवा पास-पास स्थित कई भवनों के कंप्यूटरों को जोड़ने से जो जालक्रम बनता है उसे हम लोकल एरिया नेटवर्क (LAN - लैन) कहते हैं। एक महाविद्यालय परिसर अथवा एक कार्यालय भवन में कंप्यूटरों एवं अन्य युक्तियों को केबलों के माध्यम से एक दूसरे से जोड़ दिया जाता है। लैन के द्वारा जिन कंप्यूटरों को जोड़ा जाता है, उन सब में एक कार्ड होना जरूरी है। उस कार्ड को इथरनेट (ethernet) कार्ड कहते हैं। इसके अलावा ब्रिज रूटर (router) आदि भी आवश्यक हैं।

अनेक लैनों को एक साथ जोड़ा जा सकता है। इसके लिए एक द्वार (gateway) की आवश्यकता होती है। इस तरह एक जिले में स्थित अनेकानेक लैनों को जोड़ा जा सकता है। फिर अनेक जिलों के लैनों को राज्य के लैनों से जोड़ सकते हैं। इस प्रकार सारे देश के कंप्यूटरों को और सारे संसार के कंप्यूटरों को जोड़ सकते हैं। इसे वाइड एरिया नेटवर्क (WAN) कहते हैं। इसको बृहत् क्षेत्र जालक्रम भी कहा जा सकता है। यदि दो स्थानों के बीच की दूरी अधिक है तो ऐसी स्थिति में सूक्ष्मतरंग संचरण अथवा संचार उपग्रहों का उपयोग किया जाता है।

सामान्यतः लैन का विस्तार एक छोटे से ही क्षेत्र में होता है। केबलों की लंबाई की सीमाएं उनको अधिक फैलने से रोकती हैं। इसलिए पैकेट स्विच टेलीफोन नेटवर्क (PSTN) लाइनों का उपयोग किया जा सकता है जो कि पूरी दुनिया में फैली हुई हैं। टेलीफोन तारों का उपयोग मोडेम नामक एक युक्ति का उपयोग कर के किया जा सकता है। कंप्यूटर का संचालन द्वि आधारी 'बंद-चालू' इलेक्ट्रॉनिकी संकेतों पर निर्भर करता है अर्थात कंप्यूटर अंकीय (डिजीटल) संकेतों पर कार्य करता है। इसके विपरीत टेलीफोन अनुरूप (एनालॉग) संकेतों का उपयोग करता है। मोडेम अंकीय संकेतों को अनुरूप संकेतों में रूपांतरित कर उन्हें टेलीफोन तारों के माध्यम से प्रेषित करता है। मोडेम कंप्यूटर और टेलीफोन के बीच लगाया जाता है। 'माडुलेटर' और 'डीमाडुलेटर'

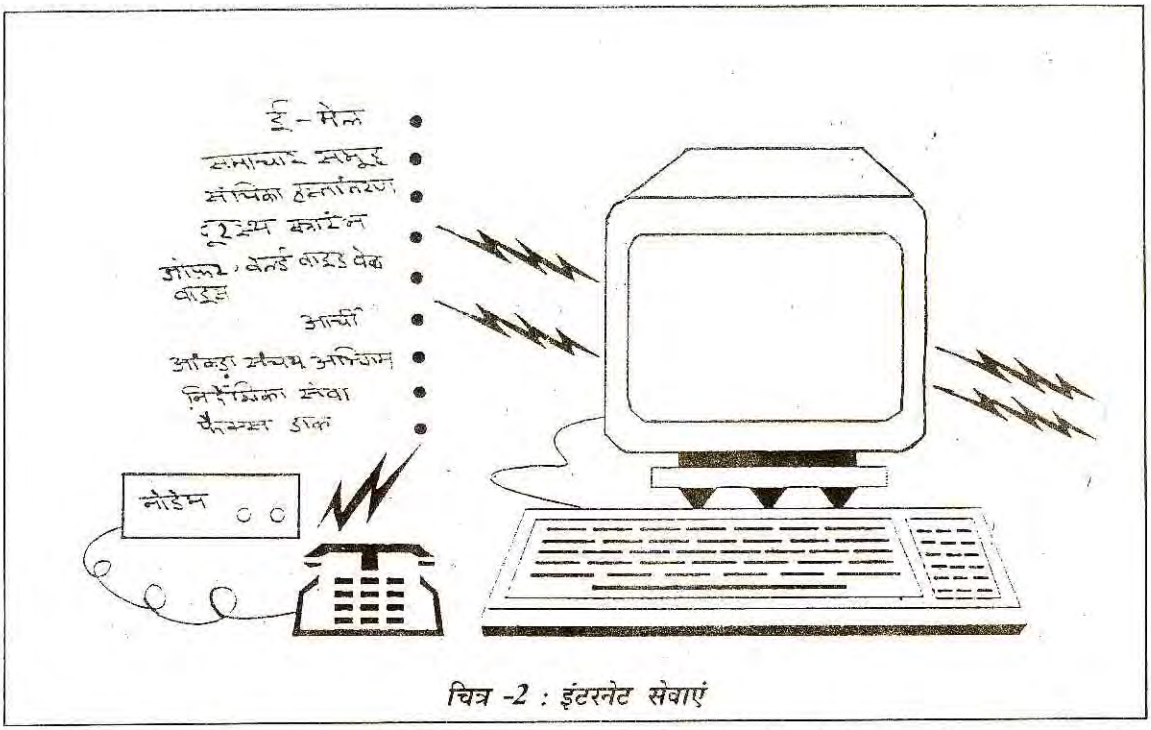


*चित्र -2 : इंटरनेट सेवाएं*

शब्दों को मिलाने से मोडेम (MO-DEM) शब्द बना है। आजकल फाइबर प्रकाशिकी केबल द्वारा टेलीफोन जोड़े जाते हैं। परंतु यह बहुत महंगा है। दूरदर्शन के सिग्नल द्वारा आंकड़े भेजने की दिशा में अनुसंधान जारी हैं।

## भारत का राष्ट्रीय जालक्रम

देश के निरंतर विकास और देश की शीघ्र तथा कुशल संचार व्यवस्था की दृष्टि से राष्ट्रीय जालक्रम अत्यंत महत्वपूर्ण है। आजकल प्रत्येक देश में बड़ी संख्या में जालक्रम उपलब्ध हैं। सभी जालक्रम एक दूसरे से संबद्ध हैं। हमारे देश में अनेक जालक्रम हैं। 'राष्ट्रीय सूचना केंद्र जालक्रम' (NICNET) 'शिक्षा एवं अनुसंधान जालक्रम' (ERNET) तथा 'वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान जालक्रम' (SIRNET) आदि हमारे देश के महत्वपूर्ण जालक्रम हैं।

'निकनेट' हमारे देश का सबसे बड़ा जालक्रम है। दिल्ली में एक विशाल कंप्यूटर स्थापित किया गया है। इससे देश के सभी राज्यों और जिलों को जोड़ दिया गया है। आरंभ में इसके लिए इंटलसेट नामक एक विदेशी उपग्रह का उपयोग किया गया था, लेकिन अब अपने देश का ही उपग्रह इनसेट-1D विभिन्न जिलों से दिल्ली में सूचनाएं भेजने के लिए प्रयुक्त होता है। यह 'निकनेट' की ही महिमा है कि देश के विभिन्न कोनों से चुनाव संबंधी सूचनाएं पलक झपकते ही दिल्ली दूरदर्शन केंद्र में पहुंच जाती हैं।

'इरनेट' केवल शैक्षिक और अनुसंधान कार्य संबंधी समुदाय के लिए ही है। इलेक्ट्रॉनिकी विभाग मुंबई, दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर तथा मद्रास में स्थित पांच भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों, भारतीय राष्ट्रीय सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी केंद्र, मुंबई सहित यह जालक्रम भारत, बंगलादेश और नेपाल के 300 से भी अधिक संगठनों के लगभग 15,000 से 20,000 उपभोक्ताओं को अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है। 'इरनेट' अन्य देशों के लगभग 120 जालक्रमों को भी अभिगम प्रदान करता है।

'सिरनेट' अत्यंत तेज़ी से फैलता हुआ जालक्रम है। इसका उद्देश्य देश भर के सभी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा व्यवसायिक प्रतिष्ठानों को एक दूसरे से जोड़ना है। इसका

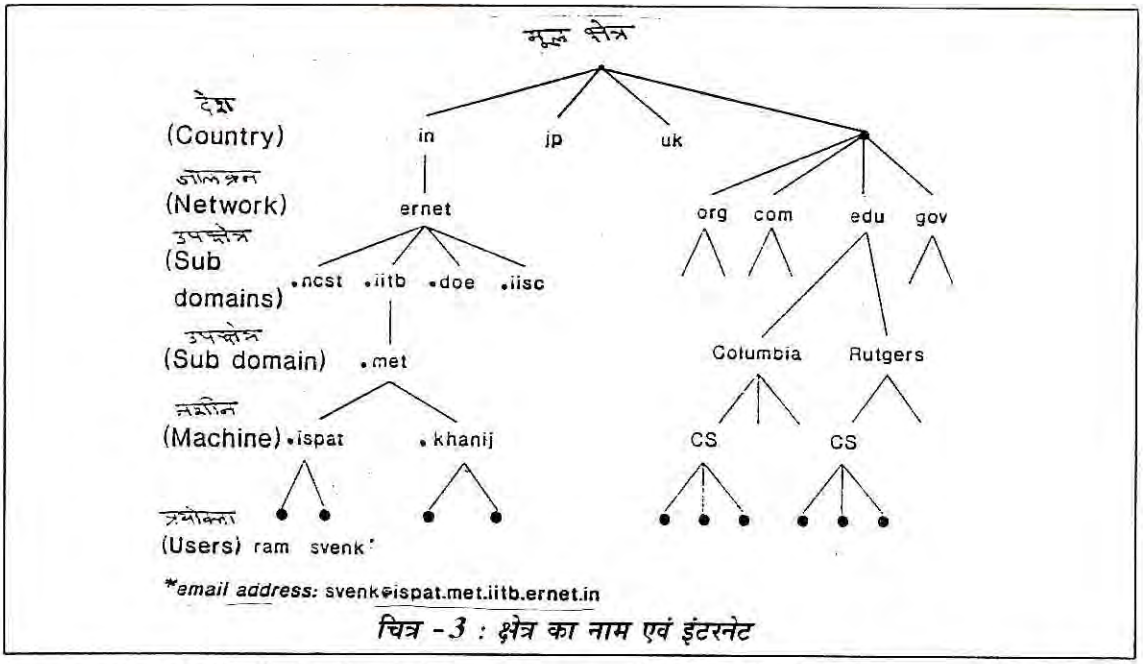


*चित्र - 3 : क्षेत्र का नाम एवं इंटरनेट*

जालक्रम प्रबंधन केंद्र दिल्ली, बैंगलोर, मुंबई, कलकत्ता तथा मद्रास में स्थित है। इसके उपभोक्ताओं की सूची में केवल वैज्ञानिक एवं औद्योगिकी अनुसंधान परिषद की प्रयोगशालाएं ही नहीं अपितु अन्य अनेक अनुसंधान संगठन और विश्वविद्यालयों का भी समावेश है।

'इंटरनेट' दुनिया का सबसे बड़ा कंप्यूटर जालक्रम है। यह हज़ारों छोटे बड़े विश्वविद्यालयों, सरकारी एवं निगमित जालक्रमों को जोड़ने वाले जालक्रमों का बड़ा जालक्रम है। इंटरनेट का उद्भव अमरीकी रक्षा विभाग द्वारा आज से लगभग 25 वर्ष पूर्व हुआ था। पेन्टागन ने एडवान्स्ड रिसर्च प्रोजेक्ट एजेन्सी (ARPA) को एक नेटवर्क निर्माण करने के लिए निर्देशित किया ताकि दुर्भाग्यवश यदि नाभिकीय युद्ध हो जाय और कंप्यूटर तंत्र का कोई हिस्सा क्षतिग्रस्त भी हो जाय तो भी सरकारी शैक्षिक और अनुसंधान कार्य में कोई रुकावट न आये और वे जारी रहें। इस नेट को अर्पानेट (ARPANET) कहा गया। इसके लिए पैकेट स्विचिंग नामक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया गया। समाचार को अनेक भागों में विभाजित कर टेलीफोन तारों द्वारा विभिन्न स्थानों पर भेजा गया और गंतव्य स्थान पर उन भागों को जोड़ा गया। इसी कंप्यूटर तंत्र ने आगे चलकर अमरीका के सभी विश्वविद्यालयों, सरकारी प्रतिष्ठानों और निगमों को एक साथ जोड़ दिया। अब यह संपूर्ण विश्व में फैल गया है।

इंटरनेट लोगों को एक साथ जोड़ने और एकत्रित करने का मार्ग प्रदर्शित करता है। यदि आप किसी कंपनी के प्रबंध निदेशक हैं, प्रशासक हैं, अनुसंधान कर्मी हैं या प्रक्रियासामग्री का विकास करने वाले हैं, आप इंटरनेट का समुचित उपयोग कर सकते हैं। यदि आप एक व्यापारी हैं तो इसकी सहायता से आप अपना सामान बेचने और निर्यात करने की योजनाएं भी बना सकेंगे। एक प्रशासक होने के नाते विश्व के हिस्सों में अपने सहकर्मियों से इंटरनेट के माध्यम से विचार विनिमय कर सकते हैं। एक शोधकर्ता को शोधकार्य के संबंध में अपने विषय के विशेषज्ञों से विचार विमर्श करने की अत्यंत आवश्यकता होती है। इंटरनेट द्वारा यह किया जा सकता है। सहयोगी रूप में परियोजनाओं पर कार्य करने वाले वैज्ञानिकों के लिए तो यह वरदान ही है। इंटरनेट पर संपर्क स्थापित कर सहयोगी लेखन, प्रकाशन आदि किया जा सकता है।

## इंटरनेट पर उपलब्ध उपयोगी सेवाएं

इंटरनेट पर उपलब्ध विभिन्न सेवाएं चित्र-2 के माध्यम से दिखायी गयी हैं ।

**इलेक्ट्रॉनिकी पत्र-व्यवहार (ई. मेल) :**

हम सभी डाकघर और डाक वितरण प्रणाली से अच्छी तरह परिचित हैं । इस प्रणाली से पत्र को अपने गंतव्य तक पहुंचने में कई दिन लग जाते हैं । इसके विपरीत ई-मेल द्वारा पत्र पांच सेकंड के भीतर पहुंच सकता है । यदि प्रेषिती प्रेषक को तुंरत उत्तर भेजना चाहता है तो वह भी तुरंत कुछ सेकंड में भेज सकता है ।

पारंपरिक डाक प्रणाली से आप विश्व में किसी को भी पत्र भेज सकते हैं बशर्ते उसका उचित पता-ज्ञात हो। इसके लिए किसी अन्य चीज की आवश्यकता नहीं है । ई-मेल टेलीफोन से मिलती-जुलती एक प्रणाली है । जैसे कि आप किसी से टेलीफोन पर बात करना चाहें तो यह जरूरी है कि सामने वाले के पास भी टेलीफोन होना चाहिए । उसी प्रकार ई-मेल के संबंध में दोनों प्रेषक और प्रेषिती के पास कंप्यूटर होना चाहिए । कंप्यूटर के साथ-साथ दोनों के पास मोडेम और टेलीफोन लाइन अथवा इंटरनेट से संबद्धता होनी चाहिए ।

इंटरनेट पर प्रयुक्त विभिन्न क्षेत्रों के नाम चित्र-3 में प्रदर्शित हैं । इसमें प्रयोक्ता के संक्षिप्त नाम का उपयोग किया जाता है । क्षेत्रों के उपक्षेत्र भी बताये गये हैं । देशों के नाम के लिए भी संक्षिप्त रूपों का इस्तेमाल किया गया है । उदाहरणार्थ भारत यानी इंडिया के लिए - in का उपयोग किया गया है । इसी प्रकार -uk तथा - jp का उपयोग क्रमशः युनाइटेड किंगडम और जापान के लिए किया गया है । एकदम दाहिनी ओर अमरीका के विभिन्न क्षेत्रों को भी दिखाया गया है । उनके पास संगठन, व्यापार, शिक्षा, सरकार आदि के लिए अलग-अलग क्षेत्र हैं । अमरीका के लिए देश का नाम नहीं देना पड़ता है।

ई-मेल कोरियर, फैक्स और टेलेक्स की अपेक्षा काफी सस्ता है । आप आंकड़े, पाठ, छवि एवं ध्वनि इत्यादि सभी कुछ ई-मेल द्वारा प्रेषित कर सकते हैं । आइए ई-मेल और टेलीफोन की तुलना करते हैं । टेलीफोन एक द्विमार्गी तंत्र है । टेलीफोन पर संदेश भेजने वाला व्यक्ति प्रत्यक्ष वार्ता के माध्यम से तुरंत उत्तर चाहता है । यदि आपके पास अपेक्षित उत्तर उपलब्ध नहीं है तो आप कह सकते हैं कि बाद में उसे फोन कर लेंगे । जब आप अपने कार्य में व्यस्त हों तो टेलीफोन की घंटी बजकर आपके कार्य में बाधा डाल सकती है । इसके विपरीत ई-मेल केवल एक-मार्गी है । आपको अपनी डाक तुरंत पढ़ने की आवश्यकता नहीं है । कंप्यूटर इसे अपनी स्मृति में सुरक्षित रखेगा । इसे बाद में कंप्यूटर स्क्रीन पर देख सकते हैं । ई-मेल का लाभ यह है कि दोनों प्रेषक और प्रेषिती इसके माध्यम से संदेश भेजने अथवा पढ़ने के लिए अपना समय चुन सकते हैं । आप आवश्यक और अपेक्षित डाक संदेश का मुद्रण भी कर सकते हैं

यदि आपका ई-मेल खाता मुंबई में है फिर भी आप किसी दूसरे शहर में जैसे कलकत्ता या मद्रास या किसी दूसरे शहर में जहां यह सेवा उपलब्ध है अपनी डाक देख सकते हैं । उस डाक का उत्तर वहीं से दे सकते हैं । आपका देश में ही उपस्थित रहना जरूरी नहीं है । आप विदेश से भी यह डाक देखने और उत्तर देने का काम कर सकते हैं । इसका मतलब यह है कि आप जहां कहीं भी हों, आपको ऐसा महसूस होगा कि आप अपने घर में या कार्यालय में ही बैठे हैं । यही ई-मेल का फायदा है ।

**फिंगर :**

इस सुविधा की सहायता से यह पता लगाया जा सकता है कि किसी कंप्यूटर में किस व्यक्ति विशेष ने कब सत्र-आरंभ (log in) किया । आप यह भी पता लगा सकते हैं कि उसके लिए कोई अपठित डाक है अथवा नहीं और अपने कंप्यूटर में कब उसने सत्रांत (log out) किया था ।

**पिंग :**

पिंग का उपयोग कर आप यह पता लगा सकते हैं कि नेटवर्क का कोई विशिष्ट कंप्यूटर कार्य कर रहा है अथवा नहीं । अर्थात वह नेटवर्क जुड़ा हुआ है या नहीं ।

**एफ़. टी. पी. ( F. T. P.) :**

इसका संपूर्ण नाम 'फाइल ट्रांस्फर प्रोटोकाल' है।

यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण सुविधा है। इस सुविधा का उपयोग कर एक कंप्यूटर से दूसरे कंप्यूटर में संचिका (file) हस्तांतरित कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि हमें इंटरनेट का अभिगम प्राप्त हो।

**टॉक ( Talk) :**

इस सुविधा का उपयोग कर दो व्यक्ति वार्ता कर सकते हैं। इसके लिए कंप्यूटर की स्क्रीन दो भागों में विभाजित हो जाती है। जो हम टाइप करते हैं वह स्क्रीन के एक भाग में दिखायी पड़ता है और स्क्रीन के दूसरे भाग में प्रेषिती की सूचना दिखाई पड़ती है। हां, हम सूचना को केवल पढ़ सकते हैं, सुन नहीं सकते।

**इंटरनेट फोन :**

अगर आपको दोस्त से संपर्क करना है और वह विदेश में है तो आप टेलीफोन मत उठाइए। अपने कंप्यूटर के सामने बैठिए एक हेडसेट लगा लीजिए और एक माइक्रोफोन लेकर बात कीजिए। आप घंटों बात कर सकते हैं। अगर आप टेलीफोन का इस्तेमाल करेंगे तो हज़ारों रुपये खर्च हो जायेंगे। लेकिन इंटरनेट द्वारा सिर्फ एक स्थानीय फोन का खर्च लगेगा। इसके लिए एक सॉफ्टवेयर, साउंड बोर्ड और माइक्रोफोन ही चाहिए। कंप्यूटर पर विंडोज़ ऑपरेटिंग सिस्टम लगा होना अनिवार्य है। लेकिन इस में वार्ता एक ही दिशा में होगी जैसा कि वाकी टॉकी में होता है।

**समाचार :**

इस समय इंटरनेट पर 4000 से अधिक समाचार समूह हैं जहां समान रुचि के लोग आपस में विभिन्न विषयों जैसे - धातुकी तथा पुरातत्व विज्ञान से लेकर रसायन शास्त्र और भौतिकी तक के तमाम विषयों पर आपस में विचार विमर्श कर सकते हैं। इसके अंतर्गत रोजगार समाचार नामक विभाग है जिसमें रोज 400 विज्ञापन प्रदर्शित होते हैं। इन विज्ञापनों को तीन लाख से भी अधिक लोग देखते हैं और इसका उपयोग करते हैं। हम अपना नाम किसी डाक सूची (mailing list) में शामिल कर सकते हैं ताकि उस विषय में हमें निरंतर सूचना मिलती रहे।

**वर्ल्ड वाइड वेब :**

इसे विश्वव्यापी जाल कह सकते हैं। यह हज़ारों स्वतंत्र कंप्यूटरों का एक समूह है जो एक साथ मिलकर एक कंप्यूटर के रूप में कार्य करता है। ये कंप्यूटर जिन्हें वेब सर्विसेस कहते हैं, सारी दुनिया में फैले हुए हैं। संभवतः इनमें सभी आंकड़े उपलब्ध हैं। एक नेटवर्क कंप्यूटर में दूसरे नेटवर्क कंप्यूटर तक उछलकर जाने में एक खास सॉफ्टवेयर मदद करता है। विश्वव्यापी जाल के माध्यम से हम केवल पाठ पढ़ ही नहीं अपितु उसे सुन और छवि के रूप में देख भी सकते हैं। बहुत सारे आंकड़ों का संचय (data base) कई जगहों में हो सकता है। वेब द्वारा इन सब को एक साथ इस्तेमाल किया जा सकता है।

आप अपने कमरे में बैठकर अमरीका में किसी भी प्रौद्योगिकी संस्थान के बारे में सब कुछ जान सकते हैं। अमरीका के मैसाचुसेट्स प्रौद्योगिकी संस्थान (M.I.T.) नामक एक बहुत प्रसिद्ध प्रौद्योगिकी संस्थान ने एक 'होम पेज' बनाकर अपने कंप्यूटर में रखा है। हम संसार में कहीं से भी उसे पढ़ सकते हैं। आप किसी प्राध्यापक की तस्वीर भी देख सकते हैं। इसके लिए केवल एक यूनिक्स मशीन और नेटस्केप सॉफ्टवेयर होना जरूरी है।

इंडिया वर्ल्ड नामक एक ऑन लाइन सर्विस है। उनका होम पेज देखेंगे तो पहले स्क्रीन पर "नमस्ते ! इंडिया वर्ल्ड में स्वागत है" दिखाई पड़ेगा। यहां आप मुख्य समाचार देख सकते हैं। मुंबई के शेयर बाज़ार की खबरें या सिनेमा के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आप अमरीका से अपने सगे संबंधियों को या दोस्तों को भेंट भी भेज सकते हैं। उनके होम पेज में बहुत सारी भेंट देने योग्य वस्तुओं की सूची दिखाई पड़ती है। अपेक्षित वस्तु का चयन कर आप उसकी तस्वीर भी देख सकते हैं। आपकी 'भेंट' मुंबई स्थित उनके कार्यालय द्वारा पहुंचा दी जायेगी। साल भर, हर रोज चौबीस घंटे आप होम पेज देख सकते हैं।

**टेलनेट (Telnet) :**

इस सुविधा से हम दूसरे कंप्यूटरों में काम कर सकते हैं और उन कंप्यूटरों में उपलब्ध सारी सुविधाओं का

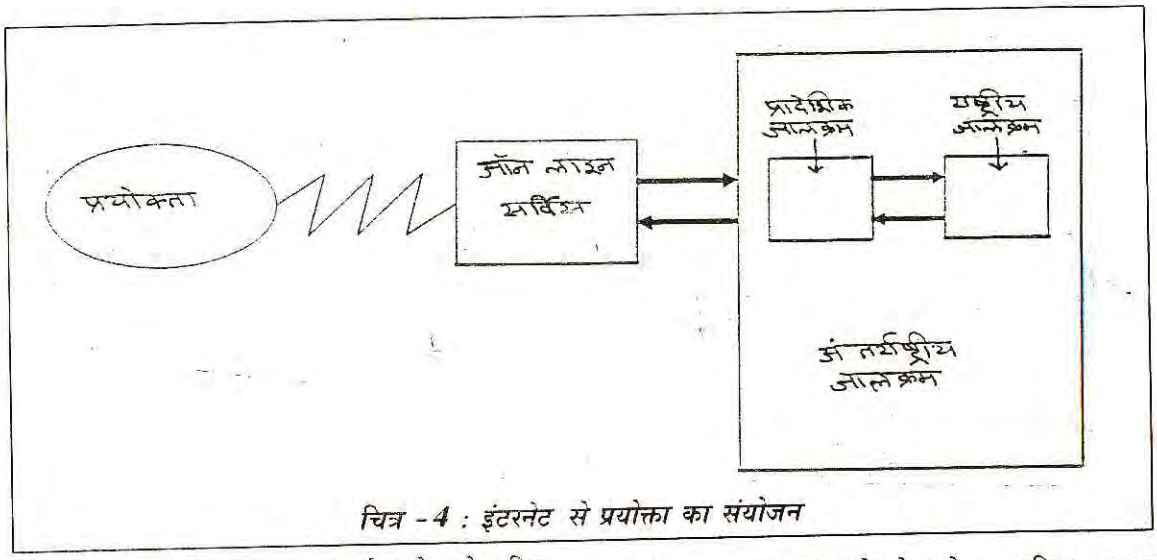


*चित्र - 4 : इंटरनेट से प्रयोक्ता का संयोजन*

उपयोग कर सकते हैं। कंप्यूटर पर कार्य करने वाले व्यक्ति को ऐसा महसूस होगा कि उसका कंप्यूटर होस्ट कंप्यूटर से सीधा जुड़ा हुआ है।

## इंटरनेट, वर्तमान और भावी परिदृश्य :

आज इंटरनेट बहुत विशाल बन गया है जिसमें 50,000 कंप्यूटर नेटवर्क शामिल हैं। इस समय इंटरनेट 180 देशों में फैलकर 45 लाख कंप्यूटरों को आपस में जोड़े हुए है। आजकल वेब का इस्तेमाल करनेवाले करीब 90 लाख लोग हैं। 1997 तथा 1999 में इनकी संख्या क्रमश: 2.5 करोड़ और 20 करोड़ तक जाने की संभावना है। ख़बरें पहुंचाने के लिए इंटरनेट सबसे सस्ता है। एक स्थानीय फोनकाल के खर्च से हम संसार के किसी भी कोने में लाखों लोगों तक पहुंच सकते हैं। जिस पत्रिका के बारे में आपने सुना भी नहीं होगा आप उसे भी पढ़ सकते हैं। जिस आदमी को कभी देखा नहीं उससे भी बातचीत कर सकते हैं।

इंटरनेट पत्रकारिता को भी व्यापक स्वतंत्रता प्रदान करता है। नेटवर्क पर कोई भी व्यक्ति स्वयं संवाददाता, संपादक और प्रकाशक हो सकता है। पारंपरिक पत्रकारिता में संपादक यह तय करता है कि किस बात को महत्व देना और छापना है जब कि संवाददाता समाचार एकत्रित करता है और उसे कहानी के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत इंटरनेट में समाचारों का आरंभ समाचार समूह से होता है। इसलिए अक्सर अधिकांश सामग्री मिथ्यापूर्ण और त्रुटिपूर्ण होती है।

इसमें शंका नहीं है कि इंटरनेट पर सूचनाओं और विचारों के मुक्त प्रवाह की सारी सुविधाएं उपलब्ध हैं। किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि इसमें कोई कमी नहीं हैं। अश्लील साहित्य इंटरनेट में भी प्रवेश कर गया है। अश्लील साहित्य संबंधी सेवाएं प्रदान करने वाले समाचार समूह काफी लोकप्रिय हैं। वास्तव में अश्लील साहित्य में रुचि रखनेवाले लोगों के लिए इंटरनेट पर बहुत कुछ उपलब्ध है।

इंटरनेट का उपयोग करना दिन-ब-दिन अधिक सहज और सरल होता जा रहा है। कोई प्रयोक्ता इंटरनेट से किस प्रकार जुड़ता है यह चित्र -4 में दिखाया गया है। आम आदमी भी इसका उपयोग कर सकता है। विभिन्न वर्ग इंटरनेट को अपनी-अपनी ओर खींच रहे हैं। व्यापारी वर्ग इसके माध्यम से पैसा कमाना चाहता है। सरकार इस पर अपना नियंत्रण चाहती है। अश्लील साहित्य वाले इसकी स्वतंत्रता को भुनाना चाहते हैं। शिक्षक इसे बच्चों के लिए उपयोगी और सुरक्षित बनाना चाहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इंटरनेट की व्यापकता और उपयोगिता को देखते हुए सभी इसे अपने ढंग से प्रयोग में लाने को आतुर हैं।

भविष्य में होम शॉपिग के लिए इंटरनेट का प्रयोग बढ़ेगा। आप कंप्यूटर में पूरा डिपार्टमेंटल स्टोर देख सकते हैं और सामान का भी चयन कर सकते हैं। क्रेडिट कार्ड द्वारा पैसे भी चुकाये जा सकते हैं और सामान घर पर पहुंच जायेगा। भविष्य में टेलीकंप्यूटिंग भी सामान्य हो जायेगी। टेलीफोन संयोजन के माध्यम से किसी दूसरे कंप्यूटर से आंकड़ा प्राप्त करना टेलीकंप्यूटिंग कहा जाता है। इस क्षेत्र में एक क्रांति होने की संभावना है। कर्मचारियों को कार्यालय गये बिना अपने घर से ही कार्य करने की सुविधा प्रदान की जा सकती है। इसका फायदा यह होगा कि सड़कों पर भीड़ कम हो जायेगी।

मुंबई में एक इंटरनेट प्रयोगकर्ताओं का क्लब बनाया गया है। इस क्लब का उद्देश्य है कि आम आदमी भी इंटरनेट के बारे में जानकारी प्राप्त करे। यह क्लब मुंबई के विभिन्न भागों में टेलीफोन बूथों के समान ही इंटरनेट बूथ भी स्थापित करना चाहता है।

250 लाख से भी अधिक प्रयोगकर्ताओं को अपनी सेवाएं प्रदान करनेवाले इस विशाल कंप्यूटर जालक्रम को कौन चलाता है ? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह बिना किसी प्रशासनिक कार्यालय के ही चल रहा है। इसका न ही कोई मालिक है और न ही कोई इसे चलाता है। किसी भी कारण से किसी को इसमें से निकाल बाहर करने का भी हक किसी को नहीं है। किसी आपात्कालीन स्थिति में इसे बंद कर देने के लिए कोई मुख्य स्विच भी नहीं हैं।

कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि इंटरनेट हमारा जीवन बर्बाद कर सकता है क्योंकि इससे हमारे निजी जीवन की गोपनीयता समाप्त हो जायेगी। लेकिन हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि नयी प्रौद्योगिकी में मूल रूप से ये त्रुटियां नहीं होती है। किंतु मुनष्य सदा से इसका दुरुपयोग करता रहा है और शायद ऐसा ही करता भी रहेगा। इसके फायदे और नुकसान लोगों द्वारा इसके समुचित उपयोग करने की बुद्धिमत्ता पर निर्भर होंगे।

❐❐❐

## लेखकों से निवेदन

"वैज्ञानिक" हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- ❐ लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये,
- ❐ लेख मौलिक और पठनीय हो, भाषा सरल और बोधगम्य,
- ❐ कृपया अनुवादित लेख न भेजें,
- ❐ लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर काग़ज के एक ओर ही लिखें,
- ❐ विषय वस्तु समझाने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद काग़ज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें,
- ❐ अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी।

**- संपादक**

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

# टॉप क्वार्क की खोज

**कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी**

157, बाघंबरी योजना, इलाहाबाद-211 006

**इस वर्ष टॉप क्वार्क की खोज की घोषणा से पदार्थ के मूल अवयवों और बलों के बारे में मरे गेलमान और जॉर्ज ज्वेइग द्वारा 1965 में प्रस्तावित 'स्टैंडर्ड मॉडल' की पुष्टि हो गयी है। इसके अनुसार उपनाभिकीय कण (यथा, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि) क्वार्कों के विभिन्न संयोजनों से बने होते हैं। बिंदुवत (संभवत: विमाहीन) कण माने जाने वाले क्वार्क छह प्रकार के होते हैं – अप, डाउन, स्ट्रेंज, चार्म, बॉटम और टॉप। इस लेख में टॉप क्वार्क की खोज के परिप्रेक्ष्य में पदार्थ के मूल अवयवों के बारे में अद्यतन जानकारी प्रस्तुत है।**

विश्व का निर्माण करने वाला मूलभूत पदार्थ और पदार्थ को विविध संरचनाओं में व्यवस्थित करने वाले मूलभूत बल जैसे कई मूलभूत प्रश्न मानव के शाश्वत जिज्ञासु मन को प्राचीन काल से चुनौती देते रहे हैं। ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए मूलभूत पदार्थ के बारे में ऋषि, विचारक, दार्शनिक और वैज्ञानिक दीर्घकाल से चिंतन मनन करते रहे हैं। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता कणाद ऋषि ने पहली बार पदार्थ के मूल अवयव के रूप में परमाणु की अवधारणा की। पश्चिम में यूनानी दार्शनिक डेमोक्रिटस ने विचार रखा कि पदार्थ छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। ये कण (परमाणु) अविभाज्य हैं और रिक्त स्थान द्वारा परस्पर पृथक हैं जिसमें ये विचरण कर सकते हैं। इनका निर्माण नहीं किया जा सकता और न ही इन्हें नष्ट किया जा सकता है। परंतु इनकी स्थिति और व्यवस्था को परिवर्तित किया जा सकता है।

इस प्रकार मूलभूत पदार्थ की खोज की लंबी कहानी में कई उतार-चढ़ाव आते रहे। कभी कुछ प्रश्नों के उत्तर मिले तो कभी प्रश्नों की नयी श्रृंखला बनती गयी है। हाल के वर्षों में परमाणु संरचना के बारे में हमारी जानकारी में क्रांतिकारी वृद्धि हुई है। 1930 के दशक तक केवल प्रोटॉन, न्यूट्रॉन और इलेक्ट्रॉन को ही मूलकण माना जाता था। उच्च ऊर्जा कण त्वरकों की अभूतपूर्व प्रगति होने से कई नाभिकीय कणों की खोज हुई और अब अनेक मूलकण ज्ञात हैं। प्रत्येक मूल कण के ही समान किंतु किसी विशेष गुण के विपरीत गुण वाला अन्य मूल कण भी पाया जाता है। इसे प्रतिकण कहते हैं। कण और प्रतिकण आपस में मिलने पर एक दूसरे का पूर्ण विनाश कर देते हैं और इस प्रक्रिया में ऊर्जा की बहुत अधिक मात्रा मुक्त होती है। यदि कण आवेशित है तो प्रतिकण पर विपरीत आवेश होता है। यदि आवेशरहित हो तो एक ही दिशा में चक्रण करने पर उनके चुंबकीय आघूर्ण परस्पर विपरीत होते हैं। अब तक लगभग सभी कणों के प्रतिकण खोजे जा चुके हैं। कुछ कण ऐसे भी हैं जो स्वयं ही अपने प्रतिकण हैं। उदाहरण के लिए फोटॉन ($\gamma$) तथा आवेशरहित पाइ मेसॉन ($\pi^0$).

कण भौतिकी में कणों के द्रव्यमान को पारंपरिक रूप से ऊर्जा के मात्रक इलेक्ट्रॉन-वोल्ट (eV) में ही नापा जाता है। कणों के निर्माण में खर्च होने वाली ऊर्जा से ही उनके द्रव्यमान का मापन किया जाता है। द्रव्यमान और ऊर्जा का संबंध आइन्स्टीन के समीकरण E (ऊर्जा) = m (द्रव्यमान) x $c^2$ (प्रकाश का वेग)$^2$ द्वारा व्यक्त किया जाता है।

**मूलकणों का वर्गीकरण** : आजकल ज्ञात मूलकणों को द्रव्यमान और भ्रमि (स्पिन) के परिमाण केआधार पर वर्गीकृत करना सुविधाजनक है। (तालिका-1 (अ) व (ब) देखें।)

## तालिका - 1 (अ) : मूलकणों का वर्गीकरण

| वर्ग | संक्रिया | भ्रमि ($h/2\pi$ के गुणक) | सांख्यिकी |
|---|---|---|---|
| फोटॉन | विद्युत चुंबकीय क्वांटा | 1 | बोस-आइन्स्टीन |
| ग्रेविटॉन | गुरुत्वीय क्वांटा | 2 | बोस-आइन्स्टीन |
| लेप्टॉन | क्षीण और विद्युत चुंबकीय | 1/2, 3/2, 5/2, . . . | फर्मी-डिराक |
| मेसॉन | प्रबल व अन्य | 0 | बोस-आइन्स्टीन |
| बेरियॉन | प्रबल व अन्य | 1/2, 3/2, 5/2, . . . | फर्मी - डिराक |

## तालिका - 1 (ब) : मूलकणों की एक झलक

| वर्ग | | | कण | संकेत | आवेश | द्रव्यमान | आयु (सेकंड) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| लेप्टॉन | | | इलेक्ट्रॉन | $e^-$ | -1 | 0.511 MeV | स्थायी |
| | | | पॉजिट्रॉन | $e^+$ | +1 | 0.511 MeV | स्थायी |
| | | | म्यू ऑन | $\mu^- / \mu^+$ | -1 / +1 | 105.66 MeV/105.66 MeV | $2.2 \times 10^{-6} / 2.2 \times 10^{-6}$ |
| | | | न्यूट्रिनो | $\nu_\mu / \nu_e$ | 0 | 0 | स्थायी |
| हेड्रॉन | बेरियॉन | न्यूक्लिऑन | प्रोट्रॉन | p | +1 | 938.26 MeV | विवादित $>10^{32}$ वर्ष |
| | | | न्यूट्रॉन | n | 0 | 939.55 MeV | 887 |
| | | हाइपेरॉन | जाइ | $\Xi^0$ | 0 | 1314.9 MeV | $2.9 \times 10^{-10}$ |
| | | | | $\Xi^-$ | -1 | 1321.3 MeV | $1.6 \times 10^{-10}$ |
| | | | सिग्मा | $\Sigma^+$ | +1 | 1189.4 MeV | $0.8 \times 10^{-10}$ |
| | | | | $\Sigma^0$ | 0 | 1192.5 MeV | $7.4 \times 10^{-20}$ |
| | | | | $\Sigma^-$ | -1 | 1197.4 MeV | $4.5 \times 10^{-10}$ |
| | | | लैम्डा | $\Lambda^0$ | 0 | 1115.7 MeV | $2.6 \times 10^{-10}$ |
| | | | ओमेगा | $\Omega^-$ | -1 | 1672.5 MeV | $0.8 \times 10^{-10}$ |
| | मेसॉन | | ईटा | $\eta^0$ | 0 | 547.5 MeV | $5.5 \times 10^{-19}$ |
| | | | केऑन | $K^-$ | -1 | 493.7 MeV | $1.2 \times 10^{-8}$ |
| | | | | $K^+$ | +1 | 493.7 MeV | $1.2 \times 10^{-8}$ |
| | | | पाइऑन | $\pi^+$ | +1 | 139.6 MeV | $2.6 \times 10^{-8}$ |
| | | | | $\pi^0$ | 0 | 135.0 MeV | $0.8 \times 10^{-16}$ |
| | | | | $\pi^-$ | -1 | 139.6 MeV | $2.6 \times 10^{-8}$ |
| | | | फाइ | $\Phi$ | 0 | 1020 MeV | $1.5 \times 10^{-22}$ |
| | | | साइ | $\psi$ | 0 | 3097 MeV | $0.7 \times 10^{-20}$ |
| | | | वेक्टर बोसॉन | $W^+$ | +1 | 80.2 GeV | $3.2 \times 10^{-25}$ |
| | | | | $W^-$ | -1 | 80.2 GeV | $3.2 \times 10^{-25}$ |
| | | | | $Z^0$ | 0 | 91.2 GeV | $2.6 \times 10^{-25}$ |

## तालिका - 2 : स्टैंडर्ड मॉडल

| क्वार्क | | | |
|---|---|---|---|
| आवेश | प्रथम पीढ़ी | द्वितीय पीढ़ी | तृतीय पीढ़ी |
| +2/3<br>-1/3 | अप (u)<br>डाउन (d) | चार्म (c)<br>स्ट्रैंज (s) | टॉप (t)<br>बॉटम (b) |
| **लेप्टॉन** | | | |
| 0 | इलेक्ट्रॉन न्यूट्रिनो ($\nu_e$) | म्यूऑन न्यूट्रिनो ($\nu_\mu$) | टाव न्यूट्रिनो ($\nu_\tau$) |
| -1 | इलेक्ट्रॉन ($e^-$) | म्यूऑन ($\mu^-$) | टाव ($\tau^-$) |
| | सामान्य पदार्थ की रचना करते हैं। | केवल उच्च ऊर्जा पर कार्यरत कण त्वरकों अथवा कॉस्मिक संक्रियाओं में उत्पन्न होते हैं। | |

### द्रव्यमान आधारित वर्गीकरण :

(i) फोटॉन व ग्रेविटॉन : प्रकाश के क्वाटंम 'फोटॉन' ($\gamma$) को मूल कण माना जाता है। इसका द्रव्यमान शून्य तथा वेग प्रकाश के वेग के बराबर होता है।

गुरुत्वीय बल का क्वाटंम 'ग्रेविटॉन' भी मूल कण है। इसका भी द्रव्यमान शून्य तथा वेग प्रकाश के वेग के बराबर होता है।

(ii) लेप्टॉन : यह ग्रीक शब्द 'लेप्टॉस' से निष्पन्न है जिसका अर्थ है हल्का, उदाहरण-इलेक्ट्रॉन, म्यूऑन, न्यूट्रिनो आदि 8 कण.

(iii) मेसॉन : यह ग्रीक शब्द 'मेसॉस' से निष्पन्न है जिसका अर्थ है मध्य या बीच का। इसका द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन व प्रोटॉन के बीच का माना जाता है। उदाहरण-केऑन, पाइऑन, वेक्टर बोसॉन।

(iv) बेरियॉन - यह ग्रीक शब्द 'बेरीस' से निष्पन्न जिसका अर्थ है भारी। इसके अंतर्गत दोनों न्यूक्लियॉन (प्रोटॉन व न्यूट्रॉन) तथा 6 हाइपेरॉन (जाइ, सिग्मा, लैम्डा, ओमेगा, डेल्टा) आते हैं।

(V) हेड्रॉन - इसके अंतर्गत बेरियॉन और मेसॉन आते हैं।

### भ्रमि आधारित वर्गीकरण :

मूलकणों को भ्रमि के परिमाण के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया गया है -

(i) फर्मियॉन - जिनकी भ्रमि विषम अर्ध पूर्णांक (1/2, 3/2, 5/2, . . .) में होती हैं, उन्हें फर्मियॉन कहते हैं। ये फर्मी-डिराक सांख्यिकी का पालन करते हैं यथा--बेरियॉन, प्रति बेरियॉन, लेप्टॉन, प्रति लेप्टॉन।

(ii) बोसॉन - जिनकी भ्रमि पूर्णांक (0, 1, 2, .) में होती है, उन्हें बोसॉन कहते हैं। ये कण बोस-आइन्स्टीन सांख्यिकी का पालन करते हैं। यथा-मेसॉन, फोटॉन, ग्रेविटॉन।

### मानक प्रतिरूपण (स्टैंडर्ड मॉडल) :

**क्वार्क सिद्धांत :** मूल कणों और बलों की बेहतर व्याख्या के लिए प्रस्तावित इस मॉडल में सभी मूल कणों को दो परिवारों - क्वार्क और लेप्टॉन में विभाजित किया गया है। (तालिका-2)

इस सिद्धांत में छह क्वार्कों और छह लेप्टॉनों की भविष्यवाणी की गयी थी। क्वार्कों के नाम हैं – अप, डाउन, चार्म, स्ट्रैंज, बॉटम और टॉप। लेप्टॉनों को इलेक्टॉन न्यूट्रिनो, इलेट्रॉन, म्यूऑन न्यूट्रिनो, म्यूऑन, टाव न्यूट्रिनो और टाव कहा जाता है। इनकी तीन पीढ़ियां

## तालिका - 3 : क्वार्कों की क्वांटम संख्याएं

| नाम | प्रतीक | भ्रमि (J) | विद्युत आवेश | बेरियॉन संख्या (B) | स्ट्रैंजनेस (S) | चार्म (C) | टॉप (T) | बॉटम (B) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अप | u | 1/2 | +2/3 | +1/3 | 0 | 0 | 0 | 0 |
| प्रति अप | $\bar{u}$ | 1/2 | -2/3 | -1/3 | 0 | 0 | 0 | 0 |
| डाउन | d | 1/2 | -1/3 | +1/3 | 0 | 0 | 0 | 0 |
| प्रति डाउन | $\bar{d}$ | 1/2 | +1/3 | -1/3 | 0 | 0 | 0 | 0 |
| चार्म | c | 1/2 | +2/3 | +1/3 | 0 | +1 | 0 | 0 |
| प्रति चार्म | $\bar{c}$ | 1/2 | -2/3 | -1/3 | 0 | -1 | 0 | 0 |
| स्ट्रैंज | s | 1/2 | -1/3 | +1/3 | +1 | 0 | 0 | 0 |
| प्रति स्ट्रैंज | $\bar{s}$ | 1/2 | +1/3 | -1/3 | -1 | 0 | 0 | 0 |
| टॉप | t | 1/2 | +2/3 | +1/3 | 0 | 0 | +1 | 0 |
| प्रति टॉप | $\bar{t}$ | 1/2 | -2/3 | -1/3 | 0 | 0 | -1 | 0 |
| बॉटम | b | 1/2 | -1/3 | +1/3 | 0 | 0 | 0 | +1 |
| प्रति बॉटम | $\bar{b}$ | 1/2 | +1/3 | -1/3 | 0 | 0 | 0 | -1 |

हैं। पहली में अप व डाउन क्वार्क तथा इलेक्ट्रॉन न्यूट्रिनो व इलेक्ट्रॉन आते हैं जिनसे संपूर्ण पदार्थ का निर्माण होता है। शेष दोनों पीढ़ियों में अन्य चार क्वार्क और शेष लेप्टॉन मूल कणों की टक्कर अथवा कॉस्मिक संक्रियाओं में उत्पन्न होते हैं। मुक्त अवस्था में क्वार्कों का अस्तित्व संभव नहीं है। इसलिए इनकी उपस्थिति का अनुमान परोक्ष रूप से ही लगाया जा सकता है अर्थात कण त्वरकों में उच्च ऊर्जा पर संपन्न संक्रियाओं के उत्पादों के आधार पर। क्वार्कों के प्रतिकणों को प्रतिक्वार्क कहा गया है ; इनकी भी संख्या 6 है। इस प्रकार क्वार्क सिद्धांत से 12 मूल कण उपलब्ध होते हैं। इनमें से प्रत्येक कण की विभिन्न विशेषताओं के अनुरूप क्वांटम संख्याएं पायी जाती हैं। (तालिका -3)

कक्षीय इलेक्ट्रानों पर लागू पॉली के अपवर्जन नियम (पॉलीज एक्सक्लूज़न प्रिंसिपल) के अनुरूप हेड्रॉन के अंदर किन्हीं दो क्वार्कों की क्वांटम संख्याओं का समुच्चय एक समान नहीं हो सकता। भ्रमि क्वांटम संख्या के अतिरिक्त अन्य क्वांटम संख्याओं के मान आपस में जोड़े जा सकते हैं और इनका योग हेड्रॉन के क्वाटंम मानों के बराबर होता है। उदाहरण के लिए –

(1) प्रोटॉन 2 अप क्वार्कों तथा 1 डाउन क्वार्क से मिलकर बनता है। इसलिए प्रोटॉन का वैद्युत आवेश

$= 2/3 + 2/3 - 1/3 = 1$

तथा बेरियॉन क्वांटम संख्या $= +1/3+1/3+1/3 = 1$

(2) न्यूट्रॉन 2 डाउन क्वार्कों तथा 1 अप क्वार्क से मिलकर बनता है। इसलिए न्यूटॉन का वैद्युत आवेश

$= - 1/3 - 1/3 + 2/3 = 0$

तथा बेरियॉन क्वांटम संख्या $= +1/3+1/3+1/3 = 1$

(चित्र-1)

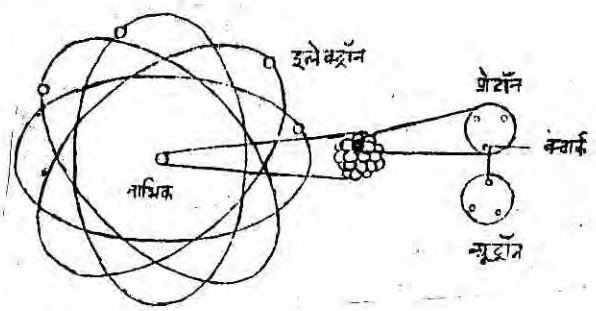


**चित्र-1 : परमाणु की संरचना**

तालिका - 4 : हेड्रॉन और उनके क्वार्क घटक

| नाम | | क्वार्क संरचना | आवेश |
|---|---|---|---|
| बेरियॉन | प्रोटॉन (p) | u u d | +1 |
| | न्यूटॉन (n) | u d d | 0 |
| | लैम्डा ($\Lambda$) | u d s | 0 |
| | ओमेगा ($\Omega$) | s s s | -1 |
| | चार्म्ड लैम्डा | u d c | 0 |
| प्रति बेरियॉन | प्रति प्रोटॉन ($\bar{p}$) | $\bar{u}\,\bar{u}\,\bar{d}$ | -1 |
| | प्रति न्यूटॉन ($\bar{n}$) | $\bar{u}\,\bar{d}\,\bar{d}$ | 0 |
| | प्रति लैम्डा ($\bar{\Lambda}$) | $\bar{u}\,\bar{d}\,\bar{s}$ | 0 |
| | चार्म्ड प्रति लैम्डा | $\bar{u}\,\bar{d}\,\bar{c}$ | 0 |
| मेसॉन | पाइऑन ($\pi^+$) | $u\,\bar{d}$ | +1 |
| | केऑन ($K^+$) | $u\,\bar{s}$ | +1 |
| | अपसाइलन ($\varepsilon$) | $b\,\bar{b}$ | 0 |
| | फाइ ($\Phi$) | $s\,\bar{s}$ | 0 |
| | साइ ($\psi$) | $c\,\bar{c}$ | 0 |
| | डी-मेसॉन ( ($D^+$) | $c\,\bar{d}$ | +1 |
| | न्यूट्रल डी-मेसॉन ( ($D^0$) | $c\,\bar{u}$ | 0 |

इस प्रकार स्पष्ट है कि क्वार्कों के प्रत्येक संभव संयोजन के लिए एक हेड्रॉन का अस्तित्व होना चाहिए। क्वार्क संघटन के आधार पर हेड्रॉनों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है -1. बेरियॉन (3 क्वार्क), 2. मेसॉन (1 क्वार्क व 1 प्रति क्वार्क), 3. प्रति बेरियॉन (3 प्रति क्वार्क), (तालिका-4)।

अनेक हेड्रॉनों जैसे प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि के बारे में संकल्पना की गयी है कि इनमें एक ही प्रकार के दो क्वार्क पाये जाते हैं। यह पॉली के अपवर्जन नियम के विरुद्ध है। इसकी व्याख्या करने के लिए एक नयी क्वांटम विशेषता 'कलर' (रंग) का विचार रखा गया। क्वार्क का रंग क्वार्कों को आपस में बांधे रखने के लिए आवश्यक बल को निरूपित करता है। क्वार्कों के तीन प्राथमिक रंग होते हैं – लाल, हरा और नीला। प्रति क्वार्कों में पूरक प्रतिरंग (प्रति लाल, प्रति हरा, प्रति नीला) पाये जाते हैं। रंगीन होने के बाद भी क्वार्क सामूहिक रूप के रंगहीन हेड्रॉन ही उत्पन्न करते हैं; रंगीन हेड्रॉन का अस्तित्व संभव नहीं है। किसी भी रंगीन क्वार्क को हेड्रॉन से बाहर निकाला नहीं जा सकता है क्योंकि दो रंगीन क्वाकों के बीच बढ़ते अंतर के साथ आकर्षण बढ़ता है (colour confinement)।

हेड्रॉन के अंदर क्वार्कों को बांधे रखने वाला बल वैद्युत आवेशित कणों के बीच लगने वाले बल के समान ही लेकिन अधिक प्रबल होता है और रंगों के बीच प्रबल संक्रिया से उत्पन्न होता है। रंग भिन्न प्रकार का आवेश है। वैद्युत आवेश की तरह यह भी प्रकृति में संरक्षित प्रतीत होता है अर्थात जब कण परस्पर क्रिया करते हैं और टक्करों में अपनी पहचान बदल लेते हैं तो रंगीन आवेश का पुनर्वितरण संभव है लेकिन इसकी कुल मात्रा को बदल देना (परिवर्तन) संभव नहीं। वैद्युत आवेशित कणों द्वारा वैद्युत चुंबकीय आकर्षण / प्रतिकर्षण के अनुभव की तरह रंगीन आवेश युक्त कण भी परस्पर बल लगाते हैं, नाभिकीय कणों के अवयव क्वार्कों के बीच लगने वाले इस रंगीन बल से ही नाभिक में उपस्थित कणों के बीच

नाभिकीय बल की उत्पत्ति उसी तरह होती है जैसे प्रोटॉनों व इलेक्ट्रॉनों के बीच लगने वाला वैद्युत चुंबकीय बल अणुओं तथा यौगिकों के बीच द्वितीयक रासायनिक बलों को उत्पन्न करता है ।

रंगीन बल ब्रह्मांड की अन्य वास्तविक वस्तुओं की तरह ही वास्तविक है लेकिन इसमें एक विशेषता है । गुरुत्वीय, वैद्युत, चुंबकीय आदि बल कणों के बीच की दूरी बढ़ने पर दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपात (Inverse Proportion) में घटते हैं जबकि रंगीन बल क्वार्कों के बीच की दूरी बढ़ने पर बढ़ते हैं । यह प्रत्यास्थ बल की तरह है और क्वार्कों को बेरियॉनों व मेसॉनों के अंदर बांधे रखता है । इसलिए क्वार्क एक दूसरे से अलग होने में असमर्थ हैं ।

रंगीन संक्रियाओं का सिद्धांत 'क्वांटम क्रोमो-डायनामिक्स' कहलाता है । इसमें 8 प्रकार के द्रव्यमान रहित कणों का अस्तित्व माना गया है । इन्हें 'ग्लूऑन' कहते हैं । ये विनिमय कण हैं जो रंगीन बल का वहन करते हैं । एक क्वार्क से दूसरे में इनका पार करना ही क्वार्क को आपस में बांधे रखता है । यह भी माना जाता है कि रंगीन आवेश के चारों ओर क्वांटम क्षेत्र उत्पन्न होता है जो ग्लूऑनों का बादल बनाता है । इन ग्लूऑनों की प्रचुरता क्वार्क के पथ से बढ़ती दूरी के साथ घटती जाती है । यह उसी प्रकार संभव होता है जैसे प्रकाश के वेग के किसी अंश से गतिमान किसी इलेक्ट्रॉन का वैद्युत आवेश, वैद्युत क्षेत्र उत्पन्न करता है जिससे फोटॉनों का बादल बन जाता है । ग्लूऑन ही प्रबल संक्रिया के कवांटा हैं । क्वार्कों को आपस में बांधे रखने के लिए ये ग्लू (गोंद) का काम करते हैं और इस प्रक्रिया में क्वार्कों का रंग बदल देते हैं ।

यह परिकल्पना की गयी है कि ब्रह्मांड की बहुत आरंभिक अवस्था में पदार्थ मुक्त क्वार्कों और ग्लूऑनों से बनी गैस के रूप में था जिनसे प्रोटॉन और न्यूट्रॉन बने ।

**मूलभूत बल :**

स्टैंडर्ड मॉडल में क्वार्क व प्रति क्वार्क की तरह लेप्टॉन व प्रति लेप्टॉन भी मूलकण माने जाते हैं । क्वार्क

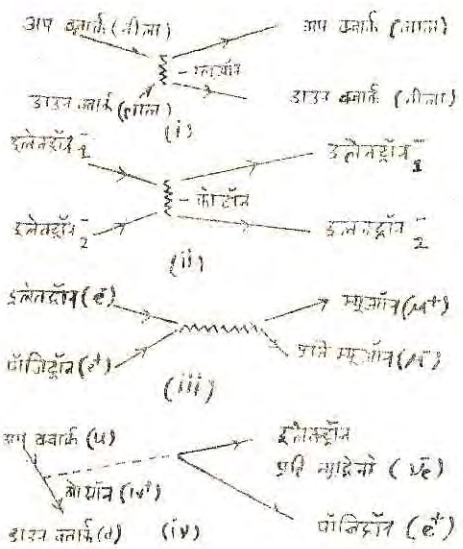

चित्र-2 : मूलभूत संक्रियाओं के फाइनमैन चित्र

की तरह लेप्टॉनों को लघुतर अवयवों में नहीं तोड़ा जा सकता लेकिन क्वार्कों के विपरीत लेप्टॉनों में इकाई आवेश होता है और वे हेड्रॉन जैसे अधिक जटिल कण बनाने के लिए संयोग नहीं करते । उप परमाण्वीय कणों के बीच लगने वाले बलों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । (तालिका-5) कणों की संक्रियाओं को फाइनमैन चित्रों से प्रदर्शित किया जा सकता है ।

**(i) प्रबल बल** - ज्ञात बलों में यह सबसे अधिक प्रबल है और प्रोटॉन को न्यूट्रॉन से तथा क्वार्कों को आपस में बांधे रखने के लिए उत्तरदायी है ।

क्वार्कों के बीच प्रबल रंगीन बल लगने पर संक्रिया बहुत अधिक भिन्न हो जाती है । द्रव्यमानरहित बोसॉन 'ग्लूऑन' एक क्वार्क से दूसरे क्वार्क तक प्रबल रंग प्रेषित करता है और इस प्रकार दोनों क्वार्कों को परस्पर बांधे रखता है । प्रबल संक्रिया के दौरान क्वार्कों के बीच रंग का केवल विनियम होता है । इस प्रकार हेड्रॉनों की संरचनाएं अनुरक्षित (मेन्टेन्ड) रहती हैं । (चित्र-2 (i))

**(ii) विद्युत चुंबकीय बल** - यह किन्हीं दो आवेशित कणों के बीच लगने वाला अपेक्षाकृत प्रबल बल है । यह बड़े पिंडों और उपपरमाण्वीय कणों पर प्रभावी है ।

## तालिका - 5 : मूलभूत बल

| नाम | परास | प्रबल बल की तुलना में $10^{-13}$ सेमी पर सक्षमता | वाहक कण | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | नाम | विराम द्रव्यमान GeV/$c^2$ | भ्रमि | आवेश | टिप्पणी |
| गुरुत्वीय | $\infty$ | $10^{-38}$ | ग्रेविटॉन | 0 | 2 | 0 | अनुमानित |
| विद्युत चुंबकीय | $\infty$ | $10^{-2}$ | फोटॉन | 0 | 1 | 0 | प्रत्यक्ष प्रेक्षित |
| क्षीण | $10^{-6}$ सेमी से कम | $10^{-13}$ | इन्टरमीडिरट बोसॉन | | | | |
| | | | $W^+$ | 80 | 1 | +1 | प्रत्यक्ष प्रेक्षित |
| | | | $W^-$ | 80 | 1 | -1 | प्रत्यक्ष प्रेक्षित |
| | | | $Z^0$ | 91 | 1 | 0 | प्रत्यक्ष प्रेक्षित |
| प्रबल | $10^{-13}$ सेमी से कम | 1 | ग्लूऑन | 0 | 1 | 0 | स्थायी रूप से आबद्ध |

जब दो इलेक्ट्रॉन संक्रिया करते हैं तो समान आवेश उन्हें प्रतिकर्षित करता है। इनका प्रतिकर्षण फोटॉन द्वारा वैद्युत बल के वहन के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। (चित्र-2 (ii))

कण और प्रतिकण में संक्रिया होने पर दोनों नष्ट हो जाते हैं तथा फोटॉन में रूपांतरित हो जाते हैं (जिसमें वैद्युत आवेश होता है) और तब किसी अन्य कण व उसके प्रतिकण युग्म में रूपांतरित हो जाता है। (चित्र- 2 (iii))

**(iii) क्षीण बल** - विद्युत चुंबकीय बल की तुलना में यह $10^{-11}$ गुना अधिक क्षीण होता है। यह क्वार्कों और लेप्टॉनों पर कार्य पर सकता है तथा कण क्षय के रूप में अन्य कण उत्पन्न करता है।

एक अप क्वार्क $W^+$ बोसॉन उत्पन्न कर डाउन क्वार्क में क्षय हो सकता है जो तुरंत ($10^{-20}$ सेकंड में) इलेक्ट्रॉन, प्रति न्यूट्रिनो तथा पॉजिट्रॉन में बदल जाता है। ( चित्र-2 (iv))

**(iv) गुरुत्वीय बल** - यह सभी बलों में सबसे अधिक क्षीण होता है। अधिक द्रव्यमान वाले बड़े पिंडों पर कार्य करने के कारण उप-परमाण्वीय स्तर पर नगण्य है।

### टॉप क्वार्क की खोज

क्वार्क परिवार के इस छठे सदस्य की खोज में सफलता अमेरिका के इलिनॉय प्रदेश में स्थित फर्मी राष्ट्रीय कण त्वरक प्रयोगशाला (फर्मीलैब) में कार्यरत वैज्ञानिकों के दो दलों (डी-जीरों और सी. डी. एफ.) को मिली जिसकी घोषणा मार्च 1995 में की गयी। इसके संसूचन के लिए फर्मीलैब के शक्तिशाली कणत्वरक 'टेवाट्रॉन' का उपयोग करते समय उक्त दलों ने अलग-अलग संसूचक निकायों का प्रयोग किया। टॉप क्वार्क प्रोटॉन से लगभग 2 लाख गुना भारी है। सी. डी. एफ. दल के अनुसार इसका द्रव्यमान लगभग 176 अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट तथा डी-जीरो दल के अनुसार लगभग 199 अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट हैं।

### तालिका-6 : विभिन्न क्वार्कों का द्रव्यमान

| क्वार्क का प्रकार | द्रव्यमान ऊर्जा (GeV में) |
|---|---|
| अप / डाउन | 0.338 |
| स्ट्रैंज | 0.5 |
| चार्म | 1.55 |
| बाटम | 4.3 |
| टॉप | 199 |

टॉप क्वार्क की खोज में प्रयुक्त विशाल कण त्वरक 'टेवाट्रॉन' अपने तरह का संसार का सबसे अधिक शक्तिशाली यंत्र है। इससे 1800 अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा वाले कणों का निर्माण किया जा सकता है। प्रबल

चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए इसमें अतिचालक चुंबक लगे रहते हैं। लगभग 6 किलोमीटर की परिधि में स्थित इस वलयाकार त्वरक द्वारा टॉप क्वार्क की खोज के लिए प्रबल चुंबकीय क्षेत्रों का उपयोग कर विपरीत दिशाओं में गतिमान प्रोटॉन व प्रतिप्रोटॉन को 900 अरब इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा तक त्वरित किया गया। इनकी टक्कर से लगभग 1.8 ट्रिलियन इलेक्ट्रॉन वोल्ट (TeV) ऊर्जा उत्पन्न हुई जिससे दोनों कण विखंडित हो गये और टॉप समेत अन्य कई नये कणों का निर्माण हुआ अर्थात ऊर्जा द्रव्यमान (कणों) में बदल गयी। लगभग डेढ़ करोड़ टक्करों में कभी-कभार कोई टॉप क्वार्क अस्तित्व में आता है।

उक्त प्रक्रिया को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है। प्रोटॉन में क्वार्क और प्रतिप्रोटॉन में प्रतिक्वार्क पाये जाते हैं। प्रोटॉन और प्रति प्रोटॉन की टक्करों में क्वार्क और प्रतिक्वार्क की टक्कर हो जाती है और ग्लूऑन फोटॉन/W बोसॉन के रूप में इनका विनाश हो जाता है जो नये कण जैसे टॉप क्वार्क तथा प्रति टॉप क्वार्क उत्पन्न करता है। इसके बदले में प्रत्येक क्वार्क एक W बोसॉन, एक बॉटम क्वार्क और एक प्रति बॉटम क्वार्क में क्षय हो जाता है। W बोसॉन का क्षय एक आवेशित लेप्टॉन, एक न्यूट्रिनो अथवा एक हल्के क्वार्क और एक हल्के प्रतिक्वार्क के रूप में हो सकता है (चित्र-3)।

अधिक द्रव्यमान के कारण टॉप क्वार्क इतना अस्थायी होता है कि यह लगभग $10^{-25}$ सेकंड तक ही अस्तित्व में रहता है। इसके बाद अपेक्षाकृत कम द्रव्यमान के अन्य कणों में विघटित हो जाता है जो पुनः अन्य छोटे कणों में विघटित हो जाते हैं। इन घटनाओं से कणों की जेट रूपी धारा निकलकर छितरा जाती है। इस प्रकार निर्मित जेटों के प्रतिमानों और कणों के गुणों के अध्ययन से ही टॉप क्वार्क के अस्तित्व की जानकारी मिली। अत्यंत क्षणभंगुर होने के कारण यह किसी संसूचक यंत्र की पकड़ में नहीं आता। डी-जीरो दल के वैज्ञानिकों ने अपने संसूचक निकाय में प्रयुक्त विशालकाय आर्गन-यूरेनियम हैड्रॉन कैलोरीमीटर की डिजाइन स्वयं बनायी थी। कणों की टक्कर से उत्पन्न ऊर्जा के कैलोरीमीटर द्वारा मापे गये स्तरों में परिवर्तन के आधार पर उन्होंने टॉप क्वार्क की पहचान की।

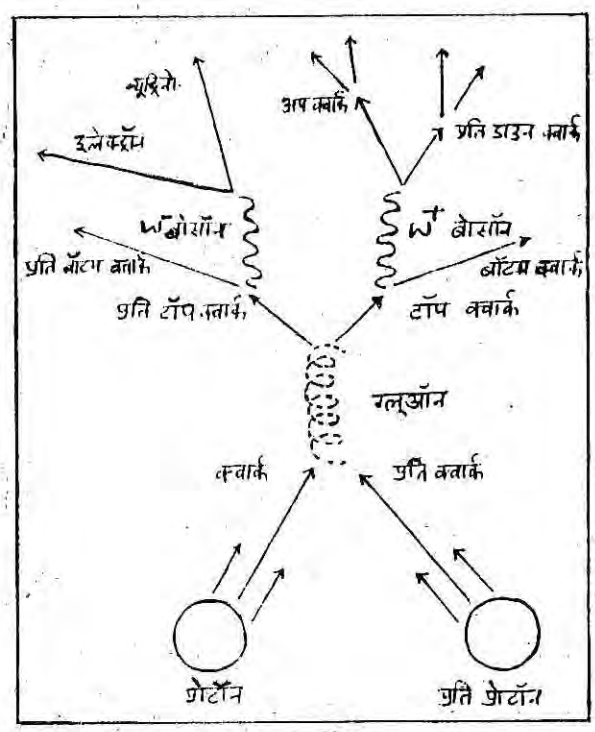


**चित्र-3 : प्रोटॉन-प्रति प्रोटॉन टक्कर में टॉप क्वार्क और प्रति टॉप क्वार्क की उत्पत्ति**

इस खोज में भारतीय वैज्ञानिकों ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया। मुंबई स्थित टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने डी-जीरो दल के साथ सहयोग किया उन्होंने उन उप-निकायों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जिनमें 120 विशाल प्रस्फुरण संसूचकों का विकास सम्मिलित है। आवश्यक कंप्यूटर सॉफ्ट वेयर के विकास में इनका योगदान विशिष्ट रहा। संसूचकों में प्रयुक्त आर्गन-यूरेनियम हैड्रॉन कैलोरीमीटर का निर्माण हमारे वैज्ञानिकों ने ही किया।

**भावी समस्याएं :** इस खोज से मानक प्रतिरूपण की पुष्टि तो हो गयी है लेकिन कई अन्य चुनौतियां उत्पन्न हो गयी हैं।

क्वार्कों के भिन्नात्मक आवेश और उनके द्रव्यमानों में अधिक भिन्नता की व्याख्या मूल समस्या है।

*(कृपया शेष पृष्ठ - 39 पर देखें)*

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता (1995) में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

# पानी एक मूलभूत आवश्यकता एवं निर्लवणीकरण तकनीक

**विनय कुमार श्रीवास्तव**

वैज्ञानिक अधिकारी, निर्लवणीकरण प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400 085

**'पानी जीवन है' क्योंकि यह सभी प्राणियों की एक मूलभूत आवश्यकता है। आज के संदर्भ में इसकी महत्ता और भी बढ़ गयी है। जनसंख्या वृद्धि, बढ़ते हुए उद्योगों एवं आधुनिक रहन-सहन के तरीकों से जहां एक ओर पानी की मांग बढ़ी है वहीं दूसरी ओर जल-प्रदूषणों के कारण पानी के उपलब्ध साधनों की वास्तविक मात्रा में कमी आयी है। निर्लवणीकरण तकनीक द्वारा न केवल हम उपलब्ध प्राकृतिक जल को विशिष्ट जल में बदलकर विभिन्न प्रयोगों में लाते हैं, अपितु जल-प्रदूषण को भी कम करके जल को पुनः उपयोग में ला सकते हैं। इसके अलावा, इस तकनीक द्वारा खारे-पानी एवं समुद्री-पानी को भी शुद्ध करके पेय-जल एवं अन्य औद्योगिक आवश्यकताओं की बढ़ती मांग को पूरा कर सकते हैं। इस लेख में पानी की मूलभूत आवश्यकताओं एवं निर्लवणीकरण तकनीक के विषय में संक्षिप्त चर्चा की गयी है।**

प्राकृतिक रूप से प्राप्त पानी इस धरा की बहुमूल्य धरोहर है। इसके बिना जीवन के बारे में सोच पाना असंभव है। कुछ उदाहरणों को छोड़कर हमें उपलब्ध अधिकांश पानी पीने या पेय-योग्य नहीं कहा जा सकता है। पेय-जल की आवश्यकता हो अथवा उद्योगों में काम आने वाले पानी की बात हो, इसे बिना किसी न किसी उपचार के हम प्रयोग में नहीं ला सकते। इसका मुख्य कारण विभिन्न प्रकार की गैसों, रसायनों एवं लवणों के घोलने की पानी की असीमित क्षमता तथा पानी में पाये जाने वाले व पनपने वाले तरह-तरह के जीवाणु हैं। चूंकि पानी की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए हमें तरह -तरह के उपचार करने पड़ते हैं अतः हर किस्म के पानी को विशेष पानी कहा गया तो गलत न होगा।

**तालिका - 1 : भारत में पानी की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए वार्षिक खपत (घन कि मी.)**

| | 1985 | 2000 | 2025 |
|---|---|---|---|
| सिंचाई | 470 | 630 | 770 |
| घरेलू | 16.7 | 24.2 | 40 |
| औद्योगिक | 10 | 30 | 120 |
| ऊर्जा | 4.3 | 5.8 | 15 |
| अन्य | 39 | 60 | 105 |
| | 540.0 | 750.0 | 1050.0 |

कुल वर्षा : 4000 घन किमी.; उपयोगी राशि : 1050 घन किमी. (अ) सतही : 700 घन किमी. (ब) भूमिगत : 350 घन किमी.

पानी की हमारे जीवन में महत्ता का अनुमान तालिका-1 में दिये गये आंकड़ों से लगाया जा सकता है।

समुद्री जल व खारे पानी से पेय-जल तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विश्व में कई स्थानों पर निर्लवणीकरण संयंत्र लगाये गये हैं। इनमें प्रमुख साऊदी अरब, कुवैत एवं ओमान आदि देश हैं। क्षमता के आधार पर अमेरिका, साऊदी अरब के बाद दूसरा मुख्य देश है जहां इसी तरह के कई निर्लवणीकरण संयंत्र कार्यरत हैं। तालिका-2 में दिखाई गयी विश्व की कुल निर्लवणीकरण संयंत्रों की क्षमता का विश्लेषण करें तो यह निष्कर्ष

निकलता है कि शुरूआत में अधिकतर संयंत्र आसवन विधि पर आधारित थे । 1970 के पश्चात् विपरीत परासरण (Reverse osmosis) एवं विद्युत-अपोहन (electrodialysis) सिद्धांतों पर आधारित संयंत्र भी लगाये जाने लगे । विभिन्न निर्लवणीकरण विधियों का योगदान कितना है, इसे भी तालिका-2 में बताया गया है। इन विधियों की विस्तृत चर्चा आगे की गयी है। भारत के संदर्भ में 1988 के बाद विपरीत परासरण एवं विद्युत अपोहन सिद्धांतों पर आधारित कई संयंत्र लगाये गये हैं जो मुख्यतः पेय जल की आपूर्ति एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए जल की आपूर्ति करते हैं ।

**तालिका -2 : विश्व में निर्लवणीकरण संयंत्रों की कुल क्षमता**

| वर्ष | क्षमता ( x1000 घन मी. प्रतिदिन ) |
|---|---|
| 1955 | 22.0 (मुख्यतः आसवन विधि) |
| 1960 | 69.5 (मुख्यतः आसवन विधि) |
| 1968 | 918.0 (मुख्यतः आसवन विधि) |
| 1975 | 2000.0 (विपरीत परासरण केवल 2%, 1970 में) |
| 1980 | 8650.0 (विपरीत परासरण 20%) |
| 1985* | 11800.0 (विपरीत परासरण 23%) |
| 1990 | 17600.0 (विपरीत परासरण 28%) |
| 2000 | 27000.0 (अनुमानित) |

* आसवन : 69 % , विद्युत-अपोहन : 8 %

## उत्पत्ति एवं स्रोत

जल की उत्पत्ति भी उतनी ही पुरानी है जितनी कि पृथ्वी और जीव-प्राणियों की है। पृथ्वी की सतह का तीन-चौथाई भाग जलमग्न है वं केवल एक-चौथाई ही जमीन है, परंतु यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस जल का लगभग 97 प्रतिशत खारा जल है। शेष 3 प्रतिशत का तीन-चौथाई भाग पृथ्वी के उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवीय स्थानों पर बर्फ की चट्टानों या हिमनदी के रूप में विद्यमान है। इस तरह से तीन प्रतिशत का एक चौथाई भाग ही पेय जल या अच्छे पानी के रूप में उपलब्ध कहा जा सकता है। पूरे विश्व के सदंर्भ में यह मात्रा $4.3 \times 10^{12}$ लीटर के लगभग है। यदि विश्व की जनसंख्या 500 करोड़ मानें तो प्रति व्यक्ति के हिस्से में लगभग 860 लीटर मात्रा आती है। भारत की जनसंख्या (85 करोड़) एवं क्षेत्रफल (24 लाख वर्ग किमी.) के आधार पर यह मात्रा लगभग 130 लीटर प्रति व्यक्ति है (यहां यह माना गया है कि पानी, समान रूप से पृथ्वी के हर क्षेत्र में बंटा हुआ है) ।

भारत में पानी का मुख्य आधार वर्षा से प्राप्त जल ही है। वर्षा असमान रूप से विभिन्न स्थानों पर होती है। यह प्रति वर्ष लगभग 4000 घन किमी. है। इस वर्षा का एक चौथाई भाग (लगभग 1050 घन किमी.) सतही जल स्रोतों जैसे नदी, नहर, तालाबों इत्यादि एवं भूमिगत जल जैसे जलकूप, कुएं, बोरवेल इत्यादि स्रोतों में एकत्र हो जाता है और शेष तीन चौथाई बहकर वापस समुद्र में चला जाता है। वैसे तो यह जलस्रोत पर्याप्त लगते हैं परंतु कुछ भागों में असमान वर्षा एवं अपर्याप्त जलस्रोतों के कारण पानी का अभाव सदैव ही बना रहता है । जनसंख्या में वृद्धि एवं बढ़ते हुए औद्योगीकरण के कारण न केवल जल की आवश्यकता और बढ़ती जा रही है बल्कि इनसे जुड़े हुए जल-प्रदूषण की बढ़ती समस्या से अच्छे जल स्रोतों को भी नुकसान हो रहा है।

पानी की इस बढ़ती मांग की आपूर्ति के लिए विभिन्न निर्लवणीकरण तकनीकों का महत्व काफी बढ़ रहा है। खारे पानी एवं समुद्री पानी का शुद्धीकरण करके एवं दूषित जल को विभिन्न वैज्ञानिक विधियों से उपचार कर पुनः उपयोग हेतु बनाना आवश्यक है। 1970 से विश्व के निर्लवणीकरण संयंत्रों की कुल क्षमता (तालिका-2) में वृद्धि से इस तकनीक के विकास व प्रयोग को निरंतर बल मिला है ।

## जल शुद्धिकरण की साधारण एवं निर्लवणीकरण विधियां :

शुद्ध पानी वह पानी है जिसमें किसी भी तरह का कोई पदार्थ दृश्य अथवा अदृश्य रूप से न घुला हो । वैज्ञानिक इसे नगण्य विशिष्ट विद्युत चालकता अथवा कुल घुलित पदार्थ (Total dissolved solids) की शून्य मात्रा वाला जल कहते हैं। हम इसे ताजा बने आसवित

जल अथवा ओस की बूंद के रूप में समझ सकते हैं। विभिन्न गैसों एवं पदार्थों के संपर्क में आकर यह जल अपनी शुद्धता खो देता है। वर्षा जल वायुमंडल में व्याप्त गैसों (कार्बन डाईऑक्साइड, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व सल्फर के ऑक्साइड्स आदि) के संपर्क में आकर थोड़ा दूषित हो जाता है परंतु पृथ्वी पर गिरने के बाद तरह-तरह के कार्बनिक, अकार्बनिक लवणों के संपर्क से इसकी अशुद्धता अधिक बढ़ जाती है। धीरे-धीरे इसमें तरह-तरह के जीवाणु पनपने लगते हैं जिससे रासायनिक अशुद्धता के साथ-साथ जैवकीय अशुद्धता भी पानी को अति-दूषित बना देती है। इस तरह से देखा जाय तो किसी भी प्रकार के उपयोग के लिए पानी का शुद्धिकरण आवश्यक हो जाता है चाहे वह पेयजल के लिए हो अथवा विभिन्न औद्योगिक आवश्यकताओं के लिए हो। सामान्यतः धरातलीय पानी में जीवाणु तथा अघुलनशील बाह्य पदार्थ अधिक मात्रा में होते हैं परंतु घुलित पदार्थ लगभग 100-200 मिग्रा. प्रति लीटर तक पाये जाते हैं। समुद्री पानी में घुलित पदार्थ लगभग 35,000 मिग्रा. प्रति लीटर या उससे ज्यादा मात्रा में पाये जाते हैं। भूमिगत पानी में जैविक व गैसीय अशुद्धता कम मात्रा में पायी जाती है तथा अन्य अशुद्धियां स्रोत की भौगोलिक व भौमिक (Geological) स्थिति पर निर्भर करती हैं। समुद्र के किनारे बसे कस्बों व गांवों में नदी के किनारे बसे शहरों की अपेक्षा, भूमिगत पानी में खारापन ज्यादा मात्रा में पाया जाता है। अरब देशों में पानी की अपेक्षा तेल अधिक पाया गया है। पेय-जल की अपेक्षित गुणवत्ता की चर्चा आगे की गयी है।

जीवाणु-अशुद्धता को दूर करने की विधि को रोगाणुनाशन कहते हैं। सामान्यतः पानी को कुछ समय तक उबालने से ज्यादातर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं परंतु इसके लिए कुछ रसायनों का भी प्रयोग किया जाता है। रोगाणुनाशक रसायनों में सोडियम हाइपोक्लोराइड, कैल्शियम हाइपोक्लोराइड, क्लोरीन गैस व क्लोरीन टिकियां तथा ओजोन आदि मुख्य हैं। छोटे पैमाने पर पराबैंगनी तरंगों का प्रयोग भी किया जाता है यद्यपि यह विधि थोड़ी महंगी है पर बिना किसी दुष्प्रभाव वाली विधि है। जल के शुद्धीकरण में रसायनों की नियंत्रित व निश्चित मात्रा जैसे क्लोरीन आयन की 1-2 मिग्रा. प्रति लीटर ही डाली जानी चाहिए। 'जीरो-बी' नामक प्रचलित वाटर फिल्टर जो सीधे नल से लगाये जा सकते हैं, जीवाणुओं को मारकर जल को शुद्ध करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। यह आयोडीन रसायन की गुणवत्ता पर निर्भर हैं एवं निर्धारित मात्रा में ही इनमें आयोडीन होने के कारण हानिकारक नहीं हैं। आजकल 'क्रिस्टल क्लीयर' व 'सिम्पोनी' नाम से प्रचलित वाटर फिल्टर भी बाजारों में उपलब्ध हैं जो कि मेम्ब्रेन (झिल्ली) तकनीक पर आधारित हैं तथा इससे पानी में उपस्थित बैक्टीरिया, वायरस आदि जीवाणुओं को दूर किया जा सकता है। जल शुद्धीकरण में रसायनों के प्रयोग से जहां एक ओर स्वाद पर असर पाया गया है वहीं ट्राईहैलोमीथेन जैसे कैंसर रोगजनक यौगिकों के बनने की संभावना रहती है। इस यौगिक का बनना पानी में उपस्थित कुल कार्बनिक यौगिकों की मात्रा पर निर्भर करता है तथा पेय-जल की गुणवत्ता में इसकी मात्रा अधिकतम $100 \times 10^{-6}$ ग्रा. प्रति लीटर निर्धारित की गयी है।

जल के अघुलनशील पदार्थों को दूर करने के लिए साधारण फिल्टर व बड़े पैमाने पर बड़े-बड़े फिल्टरों का प्रयोग किया जाता है। तीन घंटों में विभिन्न आकार के मोटे-महीन पत्थर व बालू डालकर पानी को छानने की विधि बहुत प्राचीन है। बालू के साथ-साथ लकड़ी-कोयले के कुछ टुकड़ों के प्रयोग से अघुलनशील पदार्थ के अलावा, पानी में घुलित कार्बनिक तत्व यौगिक एवं तेल आदि जैसी सूक्ष्म अशुद्धियों को भी दूर किया जा सकता है। इससे पानी के रंग, सुगंध व स्वाद पर भी फर्क पड़ता है। इसमें मृतिका को एक वेलनाकार रूप देकर स्टैनलेस स्टील अथवा एल्यूमिनियम के बर्तनों में फिट करते हैं जिससे छनने पर पानी में उपस्थित मिट्टी, बालू व अन्य बाह्य पदार्थ छन जाते हैं। समय-समय पर इन कैंडलों को उबलते पानी में डालकर साफ व निर्जीवीकरण करना अच्छा रहता है। औद्योगिक स्तर पर सैंड फिल्टर क्लैरिफायर्स (clarifiers), एक्टीवेटेड कार्बन फिल्टरों एवं माइक्रोन कार्ट्रिज फिल्टरों का प्रयोग होता है।

जल निर्लवणीकरण की प्राथमिक आधुनिक विधियां मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं :-

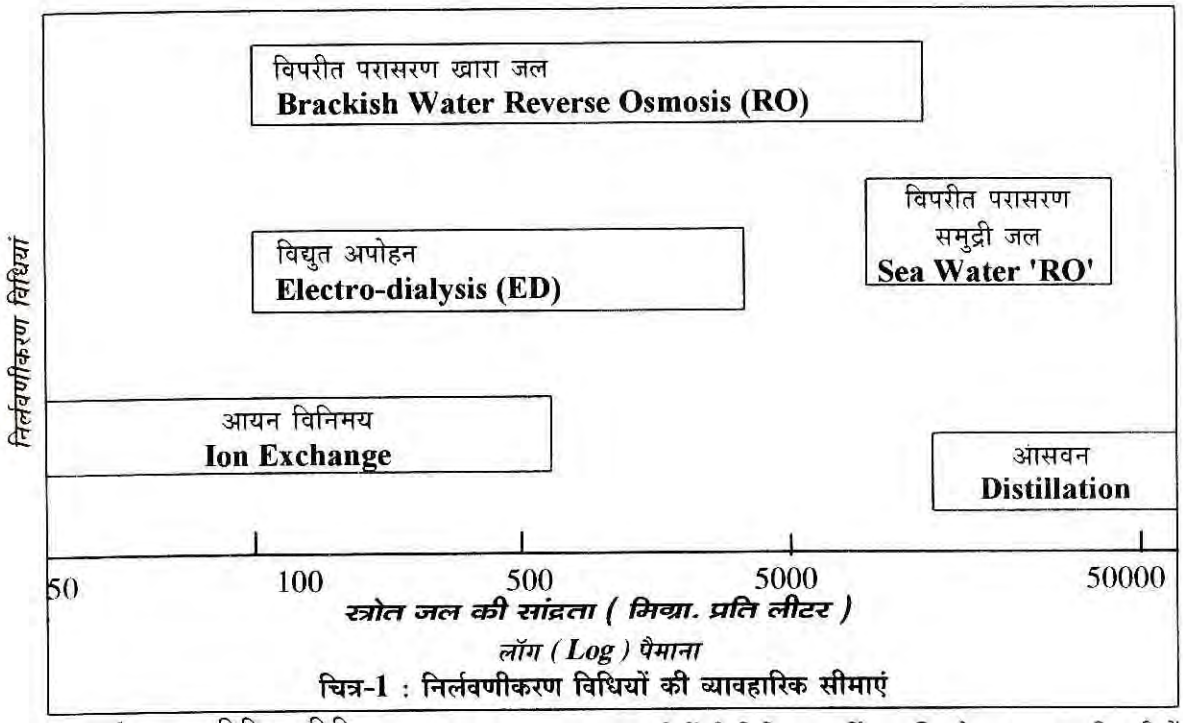


**चित्र-1 : निर्लवणीकरण विधियों की व्यावहारिक सीमाएं**

1. आयन विनिमय विधि,
2. आसवन विधि,
3. विपरीत परासरण विधि,
4. विद्युत अपोहन विधि ।

## आयन विनिमय विधि :

पानी में घुलित कुल पदार्थों की सांद्रता के आधार पर विभिन्न निर्लवणीकरण विधियों के प्रयोग हेतु निर्धारित सीमा को चित्र-1 में बताया गया है। यह विधियां तकनीकी दृष्टि से प्रयोग के लिए उपयुक्त आंकी गयी हैं परंतु आर्थिक दृष्टि से हर विधि की अच्छाइयों व बुराइयों का विश्लेषण करना आवश्यक है । इन निर्लवणीकरण विधियों की मुख्य तकनीकी विशिष्टता को तालिका-3 में बताया गया है। विभिन्न विशिष्टताओं में जल स्रोत, प्राप्त शुद्ध जल की गुणवत्ता, बिजली की खपत, आंतरायिक प्रयोग के लिए उपयुक्तता, रख-रखाव तथा व्यापारिक दृष्टि से उपयुक्त क्षमता महत्वपूर्ण है । खारे पानी से मतलब वह जल जो पेय-योग्य नहीं है फिर भी उसमें लवणों की सांद्रता समुद्री पानी से कम है। इस खारे पानी के संशोधन के लिए विपरीत परासरण तथा विद्युत अपोहन दोनों ही विधियां आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त पायी गयी हैं परंतु जैसे-जैसे पानी में घुलित लवणों की सांद्रता अधिक होती जाती है वैसे-वैसे विद्युत अपोहन विधि से संशोधन करना महंगा होता जाता है । इन्हीं कारणों से विपरीत परासरण विधि का प्रयोग समुद्री पानी सहित अन्य कम सांद्रता वाले जल स्रोतों के लिए भी उपयुक्त पाया गया है। आसवन विधि मुख्य रूप से समुद्री पानी के संशोधन के लिए उपयुक्त पायी गयी है तथा इसी ताप सिद्धांत पर आधारित अन्य विधियां मल्टी स्टेज फ्लैश, मल्टी इफेक्ट डिस्टीलेशन व वाष्प कॅम्प्रेशन नाम से जानी जाती हैं। विपरीत परासरण एवं विद्युत अपोहन विधियों के सिद्धांतों को क्रमशः चित्र 2 व 3 में बताया गया है ।

केवल ताप आधारित आसवन विधि में अवशिष्ट ऊष्मा का प्रयोग किया जाता है अतः यह समुद्री जहाजों एवं ताप विद्युत संयंत्रों के साथ विशेष रूप से उपयुक्त पायी गयी है। इस तरह के संयंत्र ज्यादातर अरब देशों में लगाये गये हैं। आज विभिन्न विधियों पर आधारित निर्लवणीकरण संयंत्रों की क्षमता लगभग 1900 करोड़ लीटर प्रतिदिन की है जिसमें भारत का केवल 0.3 प्रतिशत भाग है ।

वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार प्रत्येक 100 लीटर प्रयोग किये गये जल से कम से कम 4 लीटर जल को अवशेष जल उपचार संयंत्रों में संशोधन के लिए भेजा जाता है। कुछ मुख्य उद्योगों के प्रति यूनिट उत्पाद से अवशिष्ट जल उत्पादन तथा संभावित पुनः उपयोगी जल की मात्रा (प्रतिशत) जैसे विशिष्ट आकड़ों (तालिका-4) से अवशिष्ट जल की पुनः प्रयोग कीआवश्यकता बतायी गयी है। मद्रास में 20-30 लाख गैलन प्रति दिन क्षमता वाले विपरीत परासरण विधि पर आधारित दो संयंत्र इसी उद्देश्य से लगाये गये हैं क्योंकि पिछले दशक में महानगर पालिकाओं ने जल की दरों में लगभग 8-10 गुना वृद्धि कर दी है तथा अतिरिक्त मांग को पूरा करने में असमर्थ हैं।

## पेय जल की गुणवत्ता

पेय-जल या पीने योग्य पानी की सही गुणवत्ता की संक्षिप्त परिभाषा मेरे विचार से-वही पानी पीने-योग्य है जिसके लगातार एवं लंबे समय के प्रयोग से कोई विपरीत प्रभाव मनुष्य या प्राणी पर न हो। विशुद्ध पानी व पेय-जल में एक विशेष अंतर है। पेय-जल में बहुत सारे तत्व व यौगिक उपस्थित रहते हैं जिसके प्रयोग से कोई विपरीत

**तालिका -3 : विभिन्न निर्लवणीकरण विधियों की मुख्य तकनीकी विशिष्टताएं**

| विशिष्टता | विधियां | | | |
|---|---|---|---|---|
| | आयन विनिमय | आसवन | विद्युत अपोहन | विपरीत परासरण |
| जल स्रोत | साधारण जल | समुद्री जल | साधारण जल, खाराजल, समुद्री जल, अशुद्ध जल, | साधारण जल, खाराजल, समुद्री जल, अशुद्ध जल, |
| तापमान सीमा (से. ग्रेड) | परिवेश (ambient) | 65-120 | 15-45 | 20-45 |
| प्रारंभिक उपचार की आवश्यकता | संयत (moderate) | कम से कम, संयत | महत्वपूर्ण | महत्वपूर्ण |
| प्राप्त जल की शुद्धता, घुलित पदार्थ (मिग्रा. प्रति लीटर) | खनिज रहित अति शुद्ध | 10 - 50 | 300 - 500 | 50 - 500 |
| प्रतिप्राप्ति ( % ) | ~ 100 | 20 - 50 | 30 - 95 | 25 - 98 |
| बिजली ख़पत (यूनिट प्रति घन मी.) | नगण्य | 8 - 16 | 2 - 3 | 0.2 - 9 |
| संयंत्र शुरु के लिए समय (घंटो में) | नगण्य | 12 | 1 | 1 |
| अंतरायिक प्रयोग हेत उपयुक्तता | उचित | उचित नहीं | उचित | उचित |
| बड़ी क्षमता संयंत्रों से लाभ (Scale-up Advantage) | उपांतीय (marginal) | महत्वपूर्ण | उपांतीय | उपांतीय |
| रख-रखाव व संक्षारण | कम | महत्वपूर्ण | संयत | संयत |
| व्यापारिक दृष्टि से उपयुक्त क्षमता | सभी क्षमताओं के लिए | 100 घन मी. प्रति घंटा या उससे अधिक | सभी क्षमताओं के लिए | सभी क्षमताओं के लिए |

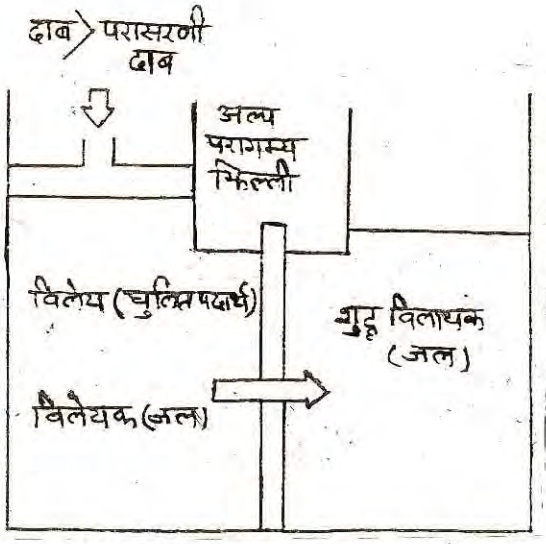


*चित्र-2 : विपरीत परासरण विधि का सिद्धांत*

गया है । इस मानक के अनुसार पानी में घुलित कुल पदार्थों की अधिकतम वांछनीय सीमा 500 मिग्रा. प्रति लीटर है । पानी की समस्यायों से प्रभावित क्षेत्रों में यह सीमा 1500 मिग्रा. प्रति लीटर तक उचित बतायी गयी है । इसमें फ्लोराइड व नाइट्रेट गैसें आयनों की निर्धारित सीमा का विशेष महत्व है जो क्रमशः 1.5 व 45 मिग्रा प्रति लीटर हैं । अन्य वांछनीय गुणवत्ताओं में रंग, स्वाद के अतिरिक्त गंदलापनः 5 यूनिट JTU; अम्लीयता / क्षारीयता(pH): 6.50-8.5, कैल्शियमः 70; मैग्नीशीयमः 50; लौह आयन : 0.1; क्लोराइड : 200; सल्फेट : 150; मैंगनीज तथा अन्य धातु आयन 0.05 से कम; मुक्त क्लोरीन 0.5-1 मिग्रा. प्रति लीटर के लगभग तथा रेडियोधर्मिता $10^{-7}$ माइक्रोक्यूरी प्रति मिली. से कम होना प्रमुख है । जीवाणुओं की संख्या (मुख्य रूप से कॉलीफॉर्म नामक जीवाणु) शून्य तथा कीटनाशक दवाइयां आदि नगण्य बतायी गयी हैं ।

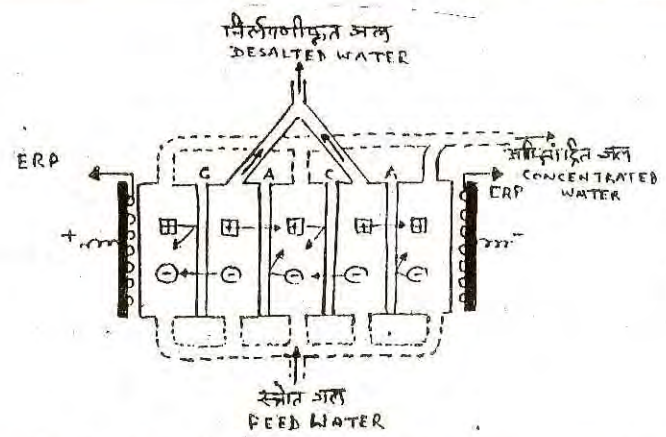


**A = धनायन परागम्य झिल्ली, C = ऋणायन परागम्य झिल्ली, ERP = इलेक्ट्रोड अभिक्रिया उत्पाद**

*चित्र-3 : विद्युत अपोहन विधि का आरेखीय चित्रण*

प्रभाव नहीं होता परंतु यह शरीर को सारे पोषण तत्व प्रदान करते हैं; जब कि विशुद्ध जल में पेय-जल की अपेक्षा संक्षारण गुण अधिक होते हैं व शरीर को नुकसान पहुंचाते हैं । पेय-जल की गुणवत्ता के बारे में 'विश्व स्वास्थ्य सगंठन' व कई देशों ने मानक बनाये हैं । भारतीय मानक संख्या IS: 10500 (1983) में इसे विस्तार से बताया

पेय-जल की समस्या पूरे विश्व की समस्या बन रही है । हमारे देश में भी समुद्र के किनारों पर बसे गांवों व शहरों में इस समस्या की अधिक चर्चा है । इसमें प्रमुख गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु हैं । सरकार द्वारा बनाये गये तकनीकी मिशन (राजीव गांधी राष्ट्रीय

*(कृपया शेष पृष्ठ -39 पर देखें)*

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

# प्रकाशीय प्रौद्योगिकी के बढ़ते चरण

**गोपाल कृष्ण शर्मा एवं गजेंद्र प्रसाद डिमरी**

वैज्ञानिक, प्रकाशीय प्रौद्योगिकी अनुभाग,
यंत्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान, देहरादून - 248 008

**यदि विश्व में प्रकाश ही न हो तो हमारा क्या होगा ? जीवन अंधकारमय हो जायेगा। क्या है यह प्रकाश जिसकी अनुपस्थिति हमें इतना बेचैन कर देती है। प्रकाशिकी ने प्रकृति के रहस्यों को समझने में विशिष्ट योगदान दिया है। प्रकाशीय प्रौद्योगिकी का क्षेत्र बहुत विशाल है जिसमें यंत्रों का अभिकल्पन, निर्माण परीक्षण आदि प्रमुख हैं। परिशुद्धता की सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए आजकल प्रकाशीय घटकों के निर्माण की नयी-नयी विधियों को प्रयोग में लाया जा रहा है। इन सभी पहलुओं पर प्रस्तुत लेख में प्रकाश डाला गया है।**

जब हम कहते हैं कि हम अमुक वस्तु को देख रहे हैं तो उसका अर्थ प्राय: यह है कि हम उस वस्तु के आकार, रूप तथा स्थिति का संतोषजनक विवरण दे सकते हैं। वह विज्ञान जो हमको अपनी आंखों की सहायता से अथवा किसी यंत्र की सहायता से किसी वस्तु अथवा दृश्य की विस्तृत जानकारी देता है, 'प्रकाशिकी' कहलाता है। यूं कहें कि प्रकाशिकी 'दृष्टि का विज्ञान' है तो अनुचित न होगा। इस विज्ञान को समझने में सबसे बड़ा योगदान प्रकृति की उस बहुमूल्य देन को है जिसको आंख कहते हैं। यह हमारा वह चमत्कारिक अंग है जो हमको इस सृष्टि के विभिन्न दृश्यों की सूचना देता है। दूसरे शब्दों में आंख प्रकृति का बनाया हुआ एक अद्भुत प्रकाशीय यंत्र है। लेकिन इसकी भी अपनी कुछ सीमाएं हैं जैसे कि अति सूक्ष्म वस्तुओं को ठीक प्रकार से न देख पाना, अति दूर की वस्तुओं को संपूर्णता से न देख पाना अथवा प्रकाश के स्तर के कम होने पर स्पष्ट या बिल्कुल न देख पाना। इन परिस्थितियों में आंख की क्षमता को बढ़ाने के लिए प्रकाशीय यंत्र सहायता करते हैं।

## प्रकाश क्या है ?

सृष्टि में पदार्थ और ऊर्जा का आपस में गहरा संबंध है। पदार्थ को ऊर्जा में भी परिवर्तित किया जा सकता है। विज्ञान के अनुसार प्रत्येक परमाणु के केंद्र में एक नाभिक होता है जिस पर धन विद्युत आवेश होता है। इसे प्रोटॉन कहते हैं। इसके चारों ओर इलेक्ट्रॉन भिन्न-भिन्न कक्षाओं में घूमते रहते हैं जिन पर ऋण आवेश होता है। यह परमाणु की सामान्य अवस्था कहलाती है। जब परमाणु को बाहर से ऊर्जा देकर उत्तेजित किया जाता है तो इलेक्ट्रॉन अपनी सामान्य कक्षा को छोड़कर अन्य कक्षाओं में घूमने लगते हैं। परंतु यह इलेक्ट्रॉन की अस्थायी अवस्था है इसलिए इलेक्ट्रॉन अपनी प्रारंभिक कक्षा में वापस लौट आता है। इस क्रिया में यह अपनी ऊर्जा का कुछ भाग माध्यम में क्वांटम के रूप में निकाल देता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न कक्षाओं से भिन्न-भिन्न आवृति के क्वांटम निकलते हैं। यह ऊर्जा जो भिन्न-भिन्न प्रकार के क्वांटम पुंजों के रूप में निकलती है अलग-अलग तरंगदैर्ध्य की विद्युत चुंबकीय वर्णक्रम की पट्टियों के स्रोत बन जाते हैं। इनमें ही ऐसी तरंगें भी होती हैं जो हमको दिखाई देती हैं या कहें कि जिनके लिए हमारी आंख सुग्राही है। इन्हीं तरंगों को 'प्रकाश' या 'दृश्य प्रकाश' कहते हैं।

दृश्य प्रकाश के अतिरिक्त अन्य अदृश्य पट्टियां जैसे पराबैंगनी, एक्स, गामा, अवरक्त आदि भी होती हैं जो आंख द्वारा दिखाई नहीं देती हैं। इसी प्रकार की प्रक्रिया सूर्य में भी होती है और प्राय: हर प्रकार की

किरणें सूर्य से भी निकलती रहती है परंतु पृथ्वी के चारों ओर वायुमंडल होने के कारण धरातल पर सभी प्रकार की किरणें नहीं पहुंच पाती हैं। जो प्रकाश हमें दिखाई पड़ता है वह दृश्य वर्णक्रम का प्रकाश है। इसका विस्तार बहुत सीमित है-चार हजार से आठ हजार ऑन्गस्ट्राम तक। इसमें विभिन्न रंगों की तरंग पटिट्यां होती हैं - ये पट्टियां इंद्रधनुष में दिखने वाले रंगों के क्रम में होती हैं।

दृश्य वर्णक्रम के लाल रंग के ऊपर तथा बैंगनी रंग के नीचे भी स्पेक्ट्रम या वर्णक्रम काफी विस्तार में फैला हुआ है। इन तरंगों का आंख के रेटिना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अतः ये वर्णक्रम के अदृश्य भाग कहलाते हैं। लाल रंग के ऊपर अधिक तरंग्दैर्ध्य की ओर अवरक्त किरणें तथा बैंगनी रंग के नीचे छोटी तरंग दैर्ध्य की ओर पराबैंगनी आदि किरणें होती हैं।

## प्रकाशिकी का विस्तार

यद्यपि प्रकाश स्वयं नहीं दिखाई देता परंतु प्रकाश जब किसी पदार्थ से टकराता है तो परावर्तन, अपवर्तन और विवर्तन इत्यादि के कारण आंख को इसका ज्ञान होता है तथा वस्तुओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। प्रकाश की एक किरण अंतरिक्ष में बिना किसी सूचना के लाखों वर्षों तक चलती रह सकती है लेकिन उस प्रकाश किरण का ज्ञान तभी होगा जब वह किसी पदार्थ से टकरायेगी और हमारी आंख तक पहुंचेगी। जब प्रकाश की यह किरण आंख पर पड़ती है तो आंख की प्रकाशीय तंत्रिकाएं उद्दीप्त हो जाती हैं और तुरंत ही मस्तिष्क को क्रियाशील कर देती हैं। प्रकाश के परावर्तन या अपवर्तन के कारण ही हम विश्व के विभिन्न आश्चर्यों, सौंदर्य और वस्तुओं की विशेषता के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं। यहां तक कि हमारी दृष्टि भी फोटॉन के रेटिना से टकराने तथा इलेक्ट्रॉन के अवस्था बदलने के कारण ही होती है। वस्तुओं के विभिन्न रंगों का आभास भी इसी प्रक्रिया का परिणाम है। जिस रंग की किरणें हमारी आंख तक पहुंचने में समर्थ होती हैं उसी रंग की वस्तु दिखाई पड़ती है।

प्रकाश के विषय में जानने की जिज्ञासा वैज्ञानिकों में बहुत पहले से रही है। पाइथागोरस के अनुसार वस्तुओं से प्रकाश कण प्रसारित होते हैं जबकि अरस्तू का कहना था कि वस्तुओं से निकला हुआ प्रकाश एक विशिष्ट माध्यम द्वारा आंखों तक पहुंचता है। यूनानी ज्यामितिकार यूक्लिड तथा अधिकांश प्राचीन भारतीय विचारकों के अनुसार प्रकाश के तंतु आंखों से निकलकर वस्तुओं तक पहुंचते हैं तभी वे हमें दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि ये सारे विचार गलत थे लेकिन सत्रहवीं शताब्दी तक यही मान्यताएं प्रचलित रहीं। सत्रहवीं शताब्दी मध्यकाल तक वैज्ञानिकों के पास इसका कोई उत्तर नहीं था कि वस्तुतः प्रकाश क्या है और किस रंग का है।

चौदहवीं शताब्दी के प्रारंभ में खिड़कियों में प्रयोग आने वाले शीशों के बनाने की नयी तकनीक का विकास फ्रांस में हुआ तथा चांदी की परावर्ती सतहों का दर्पणों के लिए प्रयोग किया गया। इसी काल के आस-पास आधुनिक प्रकाशीय विज्ञान की शुरूआत हुई। 17 वीं सदी के आरंभ में लैंस बनाने का कार्य शुरू हुआ। उस समय आज की तरह की मशीनें नहीं थीं। लैंस पूर्ण रूप से हाथ से ही बनाये जाते थे। लियोनार्डो-डा-विन्सी पहला व्यक्ति था जिसने संभवतः पहली ग्राइंडिंग, पॉलिशिंग व एडिंग मशीनें बनायीं। ये मशीनें हाथ से ही चलायी जाती थीं तथा कार्य करने वाला व्यक्ति एक हाथ में लैंस पकड़ता था तथा दूसरे हाथ से मशीन चलाता था। वैज्ञानिक गैलीलियो उस समय लैंसों तथा कांच के गुणों से संतुष्ट नहीं था। 1618 के आसपास कांच बनाने के संयंत्र दो-तीन स्थानों पर लगाये गये तथा इसमें बने कांच का प्रयोग गैलीलियो ने दूरदर्शी बनाने में किया। प्रारंभ में लैंस एक-एक करके बनते थे। 1647 में हेवीलिनियस ने ब्लॉक करके लैंस बनाने की विधि का आविष्कार किया।

1668 में न्यूटन ने धातु का परावर्ती (रिफ्लैक्टिंग) दर्पण बनाया तथा उसका प्रयोग दूरदर्शी बनाने में किया। प्रकाशीय कंपोनेंटस (अवयवों) को पॉलिश करने के लिए पिच पॉलिश तथा सतहों के निरीक्षण के लिए टैस्ट प्लेटों का प्रयोग भी इसी समय के आस-पास प्रारंभ हुआ। बाद में कांच की परावर्ती सतहों को दूरदर्शी बनाने में प्रयोग किया गया। डेसकार्टिस, हाइजीन्स, हुक, हैवीलीनियक आदि वैज्ञानिकों ने सत्रहवीं शताब्दी में

ग्राइंडिंग तथा पॉलिशिंग मशीनों का आविष्कार किया। इसके बाद प्रकाशीय यंत्रों तथा कांच की गुणवत्ता में काफी सुधार आया।

प्रकाश के इतिहास में सबसे क्रांतिकारी खोज आइजेक न्यूटन ने की। 1666 में न्यूटन ने बताया कि यदि एक प्रिज्म से सफेद प्रकाश की किरण पुंज को गुजारा जाय तो प्रिज्म से बाहर निकलने वाला प्रकाश कई रंगों में विभाजित हो जाता है और प्रत्येक रंग का प्रकाश अलग-अलग कोणों से मुड़ा होता है। बैंगनी प्रकाश सबसे ज्यादा झुका होता है और लाल सबसे कम। 1704 में न्यूटन ने एक और सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसमें उन्होंने बताया कि प्रकाश सूक्ष्म कणिकाओं से बना है। इसके विपरीत न्यूटन के समकालीन वैज्ञानिक हाइजीन्स के मतानुसार प्रकाश तरंगों से बना हुआ था।

1865 में पहली बार मैक्सवेल ने बताया कि प्रकाश एक विद्युत चुंबकीय तरंग है। मैक्सवेल द्वारा विद्युत-चुंबकीय तरंगों के प्रसारण के लिए जो समीकरण तैयार किये गये वे ऊष्मा व प्रकाश दोनों के प्रसारण को स्पष्ट करते हैं। विद्युत चुंबकीय तरंगें अलग-अलग तरंग लंबाई की होती हैं व प्रत्येक का एक विशिष्ट रंग होता है।

बीसवीं सदी में एक महान भौतिक शास्त्री मैक्स प्लैंक ने अपना विख्यात 'क्वांटम सिद्धांत' प्रतिपादित किया। मैक्स प्लैंक के अनुसार तापित वस्तुएं प्रकाश को छोटे-छोटे कणों में फेंकती हैं। इन कणों को 'क्वांटम' कहते हैं। लेकिन इस समय तक यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि प्रकाश के फोटॉन कण कहां और कैसे पैदा होते हैं। 1913 में इन सवालों का उत्तर डेनमार्क के प्रख्यात भौतिकविद् नील्स बोर ने खोज निकाला। जैसा कि प्रारंभ में बताया गया है कि परमाणु के केंद्र में एक नाभिक और उसके चारों ओर अलग-अलग कक्षाओं में इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाते हैं। परमाणु के अंदर इलेक्ट्रॉन अपनी स्थायी कक्षा से दूसरी कक्षा में पहुंचता है तो वह फोटॉन कण को बाहर फेंक देता है। यह क्रिया चलती रहती है। और इसके दौरान जो फोटॉन कण बाहर निकलते हैं हमारी आंखों में पहुंचते हैं और तब ही हमें कोई वस्तु दिखाई देती है।

प्रकाशिकी के सिद्धांतों का उपयोग दृश्य प्रकाश के अतिरिक्त पराबैंगनी, अवरक्त तथा मिलीमीटर तरंगों में भी किया गया जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न सिद्धांतों तथा प्रकाशीय उपकरणों का आविष्कार हुआ। इसको हम प्रकाशिकी का प्रथम विस्तार कह सकते हैं। दूसरा विस्तार उस समय हुआ जब यह ज्ञात हुआ कि प्रकाशीय यंत्रों से बने प्रतिबिंबों को इलेक्ट्रॉनिक संकेतों में बदलकर शुद्ध किया जा सकता है तथा पुनः प्रकाशीय प्रतिबिंब में बदला जा सकता है। इस ज्ञान से दूरदर्शन आदि की खोज हुई। तीसरा प्रमुख विस्तार इस कारण से हुआ कि किसी आवृति (फ्रीक्वैंसी) पर उपलब्ध फोटॉनों को एक ही समय पर एक ही कला (फेज) में प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रकाश को 'लेजर' कहते हैं। अगर हम फोटॉनों को मनुष्यों की भांति समझें और उन मनुष्यों को एक साथ सैनिकों की भांति परेड में एक साथ चलाया जाय तब भीड़ से अलग प्रभाव पैदा होता है। लगभग यही सिद्धांत लेजर का आधार है। इस प्रकाश स्रोत के आने से विद्युतप्रकाशिकी (इलेक्ट्रोऑप्टिक्स) का आविष्कार हुआ और इस युग का नाम 'लेजर युग' पड़ गया।

प्रकाश के सिद्धांतों पर आधारित अनेक उपकरण बनाये गये और बनाये जा रहे हैं। इन उपकरणों से सिर्फ प्रकाश के बारे में ही सूचनाएं नहीं मिलती वरन् उनसे व्यवहारतः विज्ञान की सभी विधाओं के विकास में सहायता भी मिल रही है।

## प्रकाशीय यंत्र :

प्रकाशिकी ने प्रकृति के रहस्यों को समझने में विशिष्ट योगदान दिया है। प्रकाशीय यंत्र मानव दृष्टि की क्षमता को बढ़ाकर ऐसी वस्तुओं को भी दिखाने में सक्षम होते हैं जिनको कि नेत्र की सीमित दृष्टि के कारण देखना संभव नहीं है। ये यंत्र इन वस्तुओं का ऐसा प्रतिबिंब बनाते हैं कि नेत्र पटल पर 3 मिनट से अधिक का कोण अंतरित हो जिससे कि संवेदित प्रकाशीय तंत्रिकाएं प्रतिबिंब के विषय में सूचना मस्तिष्क को दे सकें।

कुछ दशक पहले तक लोग प्रकाशिकी और प्रकाशीय यंत्रों के विषय में बात करने पर उसका अर्थ किसी आवर्द्धक लैंस, किसी सूक्ष्मदर्शी, दूरदर्शी, द्विनेत्री

या सर्वे यंत्र या कहें कि एक ऐसे यंत्र से लगाते थे जिसमें लैंस आदि भाग किसी यांत्रिक उपकरण में लगा दिये गये हों। धीरे-धीरे इस धारणा में परिवर्तन आया। सर्वप्रथम दूरदर्शी और फिर उसके बाद सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार हुआ। सूक्ष्मदर्शी के कारण चिकित्सा विज्ञान में काफी परिवर्तन हुए तथा कई रोगों के कारणों का पता लग सका। दूरदर्शी विशेषकर सौर मंडल की खोज में प्रयोग किये गये। कैमरा आदि यंत्रों से चित्र खींचने की विधि भी विकसित की गयी। पहले दो-तीन दशकों में प्रकाशिकी ने उल्लेखनीय प्रगति की। इस सबका श्रेय लेजर, तंतु प्रकाशिकी होलोग्राफी, कंप्यूटर आदि तकनीकों के आगमन को जाता है।

इलेक्ट्रॉनिकी के साथ मिल कर विभिन्न विद्युत प्रकाशीय यंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। दृश्य प्रकाश के अतिरिक्त अन्य विकिरणों जैसे पराबैंगनी और एक्स-किरण के प्रतिबिंबों को दृश्य प्रतिबिंबों में बदलने के लिए स्फुरदीप्त पटल (फॉस्फोरेसेंट स्क्रीन) को बिंब परिवर्तक के रूप में प्रयुक्त किया गया। एक्स किरणों से तो मनुष्य के शरीर के आंतरिक भागों का चित्र भी स्फुरदीप्त पटल पर बनाना संभव हो सका। परंतु अधिक तरंग दैर्ध्य के विकिरणों से दृश्य चित्र बनाने में कई कठिनाइयां आयीं क्योंकि इन विकिरणों की ऊर्जा बहुत कम थी। उचित इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों का प्रयोग करके, अवरक्त विकिरण से दृश्य बिंब बनाने की विधि खोजी गयी और रात्रि दृष्टि भी संभव हो सकी जिसने रक्षा सेवाओं की महत्वपूर्ण सहायता की।

प्रकाशीय यंत्र लगभग पिछले 200 वर्षों से अधिक प्रचलन में हैं। इतिहास में लिखा है कि यूनानी सेना ने किसी लड़ाई में सूर्य की ऊर्जा को केंद्रित कर दुश्मनों के जहाजों को जलाया था। प्रकाशीय यंत्रों का रक्षा के साथ संबंध लगभग नैपोलियन के समय से ही है। शुरू में दिशा का ज्ञान देने वाले संयंत्र बने। ज्यों-ज्यों युद्ध में तोपों का प्रयोग बढ़ता गया यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि तोपों की मार को नियंत्रित करने के लिए प्रकाशीय यंत्रों की आवश्यकता है। धीरे-धीरे इन यंत्रों में ग्रेटिक्यूल का प्रयोग किया गया ताकि गोला सही स्थान पर गिरे। इसी समय थियोडोलाइट व अन्य कई प्रकार के सर्वेक्षण यंत्रों का भी विकास हुआ। वस्तुओं की सही दूरी नापने के यंत्र जो प्रकाशिकी के सिद्धांत पर आधारित थे, बनाये गये।

तीन-चार दशक पहले यह पता लग गया था कि अवरक्त तरंगों का प्रयोग रात में देखने में किया जा सकता है। प्रारंभ में इस सिद्धांत पर आधारित यंत्रों में अवरक्त तरंगों से दृश्य को प्रकाशमान किया जाता था तथा वहां से जो प्रकाश परावर्तन के कारण वापस आता था उसे प्रकाशीय यंत्र द्वारा केंद्रित किया जाता था और एक विशेष प्रकार की इलेक्ट्रॉन ट्यूब द्वारा इस प्रतिबिंब को दृष्टीय बिंब में बदल दिया जाता था। परंतु इस प्रकार के यंत्रों में क्योंकि एक अवरक्त स्रोत का प्रयोग होता था इस कारण दूसरे लोग अर्थात शत्रु भी इसको देख लेते थे, अतः इन यंत्रों की सफलता अधिक समय तक नहीं रहा।

इधर विज्ञान की खोज निरंतर जारी रही जिसके कारण दो नये सिद्धांत सामने आये। पहला सिद्धांत था कि पृथ्वी पर कभी पूर्ण अंधकार नहीं होता और तारों की जगमगाहट, बादलों से प्रकाश का परावर्तन या चंद्रमा के कारण कुछ न कुछ प्रकाश हमेशा रहता है। यह प्रकाश क्षीण होता है, जिस कारण मनुष्य अधिक दूरी तक नहीं देख पाता। इस प्रकाश को प्रयोग करने के लिए यह खोज की गयी कि यदि इस क्षीण प्रकाश को एक तीव्र प्रकाशीय यंत्र द्वारा एकत्र किया जाय और एक इलेक्ट्रॉन ट्यूब द्वारा इसको इलेक्ट्रॉन बिंब में बदला जाय तथा इलेक्ट्रॉन बिंबों को फिर एक विशेष पर्दे पर गिराया जाय तो 'रात्रि-दृष्टि' संभव हो सकेगी। इसके साथ ही इन नयी ट्यूबों पर आधारित रात्रि दृष्टि यंत्र बनने लगे जो विभिन्न प्रकार की तोपों और टैंकों पर लगाये जाते हैं। परंतु पूर्ण अंधकार में और कुछ परिस्थितियों में इन यंत्रों की क्षमता भी कम हो जाती है। इस कारण एक दूसरी प्रणाली खोज में आयी। यह पाया गया कि पृथ्वी का तापक्रम 27 डिग्री सें. के निकट है और इस तापक्रम पर 10 माइक्रोन तरंग लंबाई के फोटॉन अधिक निकलते हैं। इधर वायुमंडल 8 से 12 माइक्रोन की तरंगों के लिए पारदर्शी भी है। इस कारण यह सोचा गया कि यदि इस तरंग के फोटॉनों का प्रयोग किया जाय तो दृष्टि संभव हो सकेगी। इस सिद्धांत पर

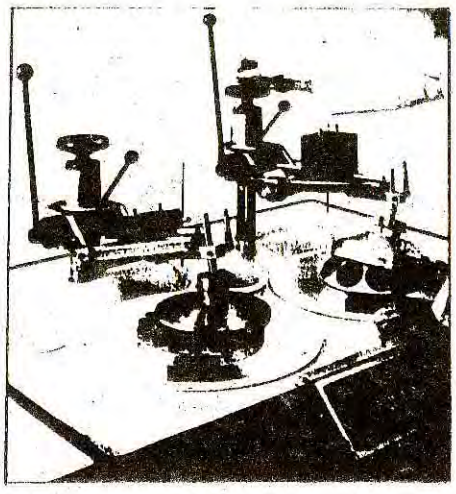

चित्र-1 : परंपरागत प्रकाशीय घटक निर्माण विधि

आधारित यंत्रों में चित्र तो अवश्य बनता है परंतु यह वस्तु के तापमान का ही चित्र होता है एवं साधारण चित्र से भिन्न होता है। इन प्रकाशीय यंत्रों को तापीय प्रतिबिंबन यंत्र के नाम से जाना जाता है। इन यंत्रों का उपयोग रक्षा विज्ञान के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी हो रहा है। चिकित्सा विज्ञान में इसका विशेष महत्व है। शरीर के भीतरी तापक्रम जानने में इनका उपयोग हो रहा है। इन यंत्रों से 0.01 डिग्री सें. तक का अंतर मापा जा सकता है तथा कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों का पूर्वानुमान भी किया जा सकता है क्योंकि कैंसर कोशिकाओं का तापक्रम शरीर के अन्य हिस्सों से ज्यादा होता है।

इसके साथ-साथ एक और दिशा में महत्वपूर्ण खोज हुई और यह पाया गया कि प्रकाश कांच के तंतुओं द्वारा कई किलोमीटर दूरी तक बिना किसी अड़चन के पहुंचाया जा सकता है। यह विज्ञान जिसे प्रकाशीय तंतु विज्ञान कहते हैं मनुष्य को प्रकाशीय संचार की ओर ले गया है। प्रकाशीय कांच के तंतुओं पर आधारित कई नये प्रकार के संवेदक बन रहे हैं जो जहाजों, रॉकेट व अंतरिक्ष में यानों को सही दिशा देने में प्रयोग हो सकते हैं। विशेष प्रकार की वीडियो डिस्क बनायी जा चुकी हैं जो ग्रामोफोन रिकॉर्ड की तरह की तस्वीरों का रिकॉर्ड है। नयी पीढ़ी के कंप्यूटरों व रोबट-दृष्टि में भी कांच के तंतुओं का प्रयोग किया जा रहा है। इन सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि प्रकाश जो पहले देखने से ही संबंध रखता था 21वीं सदी में अब इन नयी दिशाओं के कारण बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

## प्रकाशीय घटकों के निर्माण की विभिन्न विधियां

वास्तव में प्रकाशीय प्रौद्योगिकी का क्षेत्र बहुत विशाल है जिसमें प्रकाशीय पदार्थ, प्रकाशीय घटकों तथा यंत्रों का अभिकल्पन, निर्माण, परीक्षण तथा उन पर तनु फिल्म लेपन आदि प्रमुख हैं। इन क्षेत्रों में हाल ही में काफी प्रगति हुई है। प्रारंभ में धीमी शुरुआत के बाद प्रमुख विकास 19 वीं शताब्दी में हुआ। आज विभिन्न क्षेत्रों जैसे रक्षा, अंतरिक्ष, चिकित्सा, संचार आदि के लिए प्रयुक्त होने वाले यंत्रों की प्रणालियां अति उच्च स्तर की परिशुद्धता चाहती हैं। यह परिशुद्धता पदार्थ, अभिकल्पन, निर्माण और लेपन आदि सभी क्षेत्रों में चाहिए। प्रकाशीय यंत्रों में विभिन्न प्रकार के प्रकाशीय घटक प्रयोग में आते हैं, जैसे - लैंस, दर्पण, प्रिज्म, विन्डो प्लेट आदि। परिशुद्धता की सभी चुनौतियों का सामना करने के लिए इन प्रकाशीय घटकों के निर्माण की नयी-नयी विधियां प्रयोग में आ रही हैं।

आजकल निम्नलिखित निर्माण विधियां प्रयोग में हैं :-

(1) परंपरागत (कन्वेन्शनल) विधि,
(2) हीरक बटन (पैलेट) घिसाई (ग्राइंडिंग) और प्लास्टिक पैड पॉलिशिंग,
(3) प्रतिरूपण (रिप्लिकेशन) विधि,
(4) माइक्रोमशीनिंग या परिशुद्ध मशीनिंग,
(5) आयन पुंज मशीनिंग,
(6) कंप्यूटरीकृत निर्माण विधियां,
(7) विशिष्ट विधियां।

**परंपरागत विधि :**

प्रकाशीय घटक बनाने की यह सबसे प्राचीन विधि है। सामान्यतः इस विधि में मुक्त अपघर्षकों (एबरेसिव्स) के द्वारा ग्राइंडिंग तथा पिच पॉलिशर द्वारा पॉलिशिंग की

जाती है। कर्तन, ट्रिपेनिंग, बक्र-निर्माण, ग्राइंडिंग-स्मूदिंग तथा पॉलिशिंग आदि प्रक्रियाओं से गुजर कर एक प्रकाशीय घटकों का निर्माण होता है (चित्र-1)। यह विधि यद्यपि अधिक समय लेने वाली, श्रमसाध्य तथा अगोलीय घटकों को कुछ सीमाओं के अंदर बनाने में सक्षम है। परंतु जहां उच्चतम स्तर की सतह यथार्थता या कोणीय यथार्थता निर्माण करना होती है उतनी ही उच्च स्तर की टूलिंग, परीक्षण यंत्र, टेस्ट प्लेट्स और अधिक समय की भी आवश्यकता होती है। इस विधि की कुछ अपनी सीमाएं भी हैं जिस कारण से हर प्रकार के कंपोनेंट्स और सभी प्रकार के प्रकाशीय पदार्थों को इस विधि द्वारा निर्माण करना कठिन है।

## हीरक बटन घिसाई और प्लास्टिक पैड पॉलिशिंग :

यह विधि भी परंपरागत विधि का ही दूसरा रुप है जिसमें मुक्त अपघर्षक द्वारा ग्राइंडिंग के स्थान पर हीरक बटन लगे औजार द्वारा घिसाई की जाती है और पॉलिशिंग के लिए पिच पॉलिशर के स्थान पर पॉलियूरिथेन प्लास्टिक की शीट लगे पॉलिशर का प्रयोग किया जाता है (चित्र-2)। यह विधि तेज-गति की निर्माण विधि है इसलिए लैंसों को पकड़ने के लिए धातु के सपाट ब्लॉक्स का इस्तेमाल किया जाता है जिसमें लैंसों के व्यास के बराबर बने छिद्रों में लैंसों को पकड़ा जाता है। इस विधि में सबसे अधिक ध्यान बटन टूल्स और पैड पॉलिशर की यथार्थता पर रखना पड़ता है। जितनी यथार्थता इन औजारों की होगी उतनी ही यथार्थता घटकों की सतह पर प्राप्त होगी। इन औजारों को बनाने में समय और धन अवश्य लगता है परंतु यदि अधिक संख्या में घटकों का उत्पादन करना हो तो यह विधि कम खर्चीली होती है। इस विधि द्वारा सामान्यत: एक रिंग प्रति 50 मिमी. की सतह यथार्थता प्राप्त की जा सकती है और इसे प्राप्त करने में अधिकतम 5 मिनट प्रति 50 मिमी. व्यास के लैंस में लगते हैं।

## प्रतिरूपण (रिप्लीकेशन) विधि :

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस विधि में किसी भी सतह का प्रतिरूप दूसरी सतह पर आरोपित किया जाता है। रिप्लिकेशन विधि का प्रयोग सर्वप्रथम ग्रेटिंग्स (डिफ्रैक्शन ग्रेटिंग) बनाने में किया गया था। बाद में इस विधि का विस्तार लैंस, विशेषकर अगोलीय लैंस तथा परावर्ती सतहों को बनाने के लिए किया गया। इस विधि में विशेष महत्व संदर्भ सतह या मास्टर सतह का होता है क्योंकि उसी के द्वारा सतह का प्रतिरूपण किया जाता है। प्रतिरूपण का माध्यम एक विशेष इपॉक्सी की महीन परत होती है जो संदर्भ सतह और जिस सतह पर अपेक्षित वक्र का निर्माण करना है उन दोनों के बीच में लगायी जाती है। कुछ समय के पश्चात जब इस इपॉक्सी की परत की 'क्योरिंग' हो जाती है तब संदर्भ सतह को अलग कर दिया जाता है और उसका प्रतिरूप दूसरे घटक पर आ जाता है जिसे 'सब्सट्रेट' (आधार सतह) कहते हैं।

इपॉक्सी रिप्लिकेशन के अलावा उच्च शक्ति के प्रकाश स्रोतों के परावर्तक बनाने के लिए इलेक्ट्रोफॉर्मिंग विधि द्वारा प्रतिरूपण किया जाता है। इस विधि में स्टील की बनी उत्तल संदर्भ सतह से, जिस पर सचालक विमुक्तिकारक (रिलीज) परत लगी होती है, निकिल की प्लेटिंग करके परावर्तक का निर्माण किया जाता है। इस 10 माइक्रोन के लगभग मोटी निकिल की परावर्तक परत के बाद एक मोटी परत (इसे 6 मिमी.) तांबे की प्लेटिंग करके चढ़ाई जाती है जो निकिल की परत को मजबूती प्रदान करता है।

## माइक्रोमशीनिंग या परिशुद्ध मशीनिंग :

यह आजकल की बहुचर्चित विधि है जो प्रकाशीय घटकों को बनाने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इस विधि में एकल बिंदु हीरक औजारों (सिंगल प्वाइंट डायमंड टूल्स) और विशिष्ट मशीनों को प्रयोग करके कुछ प्रकाशीय पदार्थों पर से बहुत ही महीन परत मशीनिंग द्वारा निकाल कर उच्च श्रेणी की सतह यथार्थता तथा सतह परिसज्जनता प्राप्त की जाती है। इस विधि के द्वारा उन प्रकाशीय घटकों को ऐसे प्रकाशीय पदार्थों में भी बनाना संभव हो सका है जिन्हें परंपरागत विधि द्वारा बनाना लगभग असंभव था। वे सभी प्रकाशीय पदार्थ जो अवरक्त क्षेत्र तथा उच्च ऊर्जा लेजरों में प्रयोग किये जाते हैं इस

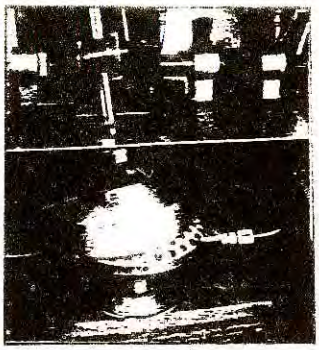

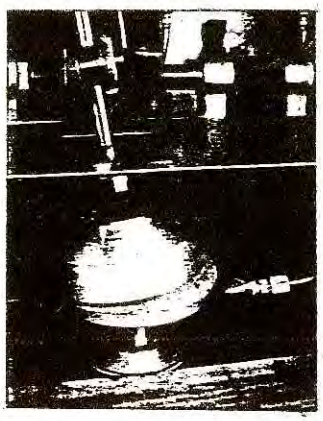

चित्र- 2 : हीरक बटन ग्राइंडिंग और प्लास्टिक पेड पॉलिशिंग विधि

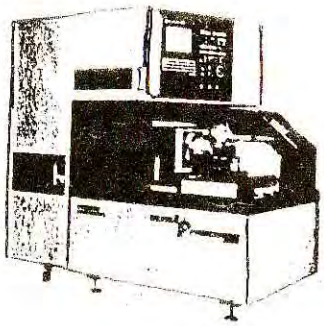

चित्र- 3 : माइक्रोमशीनिंग के लिए प्रयुक्त होने वाली एक मशीन

मशीनिंग द्वारा निर्मित किये जा सकते हैं। इस पदार्थों को सामान्य रूप से तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है। अलौह धातुएं, प्लास्टिक्स और क्रिस्टल्स। यह विधि विशेषकर अगोलीय सतहों या अन्य विशिष्ट प्रकार की सतहों का निर्माण करने में सक्षम है और उस सतह को बहुसंख्य घटकों पर एक जैसी सतह यथार्थता के साथ बना सकती है। निर्माण करने का समय भी अपेक्षाकृत बहुत कम है तथा साथ ही कम श्रमसाध्य भी है (चित्र-3)।

माइक्रोमशीनिंग के लिए दो प्रमुख एवं आवश्यक बातें हैं; (i) मशीनिंग के लिए बहुत ही मजबूत और तेज धार का होना जो केवल हीरे से प्राप्त है और (ii) अत्यंत परिशुद्ध मशीनों का होना जो सांख्यिकी नियंत्रित हों तथा गैस या तरल बीयरिंग की सुविधा वाली हों ताकि कंपन आदि की समस्या का सामना न करना पड़े। साथ ही ये मशीनें ताप और नमी नियंत्रित वातावरण में रखी जाती हैं ताकि उच्च श्रेणी की परिशुद्धता प्राप्त का जा सके। माइक्रोमशीनिंग द्वारा अत्यंत ही महीन माइक्रोग्रूव्ज बनाये जाते हैं जिनसे अपेक्षित सतह का निर्माण होता है। इस खांचों (ग्रूव्ज) की सामान्य गहराई जिसे शिखर-घाटी (पीक टू वैली) ऊंचाई कहते हैं, समतल सतह के लिए एक माइक्रोइंच (.025 माइक्रोन) या इससे कम और वक्र सतहों के लिए तीन माइक्रोइंच (.075 माइक्रोन) या इससे कम स्तर की होती है।

## आयन-पुंज मशीनिंग :

यह मशीनिंग की एक बहुत ही विशिष्ट विधि है जिसमें परमाणु-दर-परमाणु मशीनिंग की जाती है तथा सतह से बहुत ही सूक्ष्म परत निकाली जा सकती है। इसमें

उच्च गतिक ऊर्जा के आर्गन आयन या अन्य किसी निष्क्रिय गैस के आयनों का मशीनिंग के लिए प्रयोग किया जाता है। आयन जो कि एक कटिंग टूल का काम करते हैं, तेज गति से सतह पर प्रहार करते हैं और सतह से परमाणुओं को निष्कासित करते हैं। इस प्रक्रिया को स्पटरिंग के नाम से भी जाना जाता है। एक किलो इलेक्ट्रॉन वोल्ट के आयन लगभग 5 माइक्रॉन की गहराई तक जा सकते हैं। इस विशिष्ट विधि का उपयोग कुछ अगोलीय सतहों के निर्माण करने में किया गया है क्योंकि यह एक बहुत ही खर्चीली विधि है।

## कंप्यूटरीकृत निर्माण विधियां :

जैसे-जैसे आधुनिक प्रकाशीय यंत्रों में परिशुद्धता की मांग बढ़ी है वैसे-वैसे प्रकाशीय अभिकल्पन, निर्माण और परीक्षण तीनों को ही उन्नत होने की आवश्यकताएं भी बढ़ी हैं। कंप्यूटर की बढ़ती हुई गति ने डिजाइन सॉफ्टवेयरों में क्रांति ला दी है। प्रगति यहां तक हुई है कि अब ग्लोबल ऑप्टिमाइजेशन अर्थात, सर्वत्र इष्टतम परिणाम प्राप्त करना संभव हो सकेगा। कंप्यूटरीकृत निर्माण विधियों ने प्रकाशीय उद्योग को सस्ते और तीव्रगति उत्पादन में तथा अधिक स्वचालन व गुणता आश्वासन प्राप्त करने में सहायता की है।

कंप्यूटर द्वारा निर्माण में तीन क्षेत्रों के विकास से सुगमता आयी है। वे हैं 'कंप्यूटर द्वारा अभिकल्पन' जिसमें प्रकाशीय और यांत्रिक अभिकल्पन दोनों सम्मिलित हैं 'तकनीकी रेखाचित्रों और विनिर्दिशों (स्पेसिफिकेशन) का मानकीकरण और सांख्यिकी नियंत्रित मशीनों का निर्माण।' कंप्यूटरीकृत निर्माण विधि में विभिन्न प्रकार के सॉफ्टवेयरों का संयोजन करके स्वचालित निर्माण प्रक्रिया क्रियान्वित की जाती है। इस प्रक्रिया में सबसे प्रमुख है -'कैड' (CAD) यानी कंप्यूटर एडेड डिजाइन या कंप्यूटर ससहाय अभिकल्पन और 'सीएई' (CAE - कंप्यूटर एडेड इंजीनियरिंग) प्रणाली जो कि डिजाइन इंजीनियर का नित्य प्रयोग होने वाला अत्यावश्यक टूल या यंत्र है। इस टूल के द्वारा अपेक्षित मॉडल का अभिकल्पन करके 'कैम' (CAM - कंप्यूटर एडेड मैनुफैक्चरिंग) या कंप्यूटर ससहाय निर्माण को हस्तांतरित किया जाता है। यह कैम तंत्र अभिकल्पन से उत्पादन स्तर के हस्तांतरण समय को कम करता है और विभिन्न मशीनों को प्रोग्रामिंग के लिए तत्काल डिजाइन आंकड़े उपलब्ध कराकर संपूर्ण उत्पादन प्रक्रिया से इष्टतम परिणाम प्रदान करने में सहायता करता है। कंप्यूटर द्वारा निर्माण से मानवीय त्रुटियों के कारण होने वाली कमियां दूर हो जाती हैं तथा गुणता आश्वासन सुगम हो जाता है। श्रम और समय की भी बचत होती है। कंप्यूटरीकृत मशीनें जगह की भी बचत करती हैं क्योंकि एक ही मशीन से कई सामान्य मशीनों का काम किया जा सकता है। इन मशीनों में ग्लास ब्लैंक को केवल प्रारंभ में एक बार सेट करना पड़ता है जिससे बार-बार सेटिंग करने के कारण होने वाली त्रुटियां कम हो जाती हैं और घटकों को अपेक्षित टॉलरेंस के निकट निर्माण किया जा सकता है।

## कुछ विशिष्ट विधियां :

ऊपर बतायी गयी प्रकाशीय निर्माण विधियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी विधियां भी कार्य में लायी जाती हैं जो केवल विशिष्ट अनुसंधान कार्यों के लिए प्रयोग में हैं। इन विधियों में से कुछ हैं - रासायनिक पॉलिशिंग, हाइड्रोडाइनामिक पॉलिशिंग, लेजर उद्दीप्त रासायनिक उत्कीर्णन (लेजर स्टीमुलेटिड कैमिकल एचिंग), तानित दर्पण पॉलिशिंग (स्ट्रेस्ड मिरर पॉलिशिंग) आदि। इन सबका वर्णन करना तो इस लेख में संभव नहीं है लेकिन इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ये विधियां सतह से नियंत्रित मात्रा में पदार्थ की परत निकालने में सक्षम हैं -0.01 माइक्रोन स्तर तक की। सतह परिसज्जनता भी 1 नैनोमीटर आर एम एस (rms) तक की प्राप्त की जा सकती है।

अभी हाल ही में एक चमत्कारी नवीन पॉलिशिंग विधि की खोज की गयी है जो कि भविष्य में प्रकाशीय निर्माण में क्रांतिकारी प्रभाव डालेगी। यह नयी विधि है 'मैग्नेटीरियोलॉजिकल पॉलिशिंग' अर्थात चुंबकीय प्रवाही पॉलिशिंग। इस विधि में पॉलिशर के रूप में चुंबकीकृत द्रव का प्रयोग किया जाता है। चुंबकीकृत द्रव का

चिकनापन तथा लचीलापन चुंबकीय क्षेत्र में परिवर्तन करके बदला जा सकता है। प्रकाशीय निर्माण केंद्र, रौचेस्टर विश्वविद्यालय, अमेरिका के अनुसार चुंबकीय प्रवाही पॉलिशिंग प्रकाशीय निर्माण विधियों में कई वर्षों के अथक प्रयासों द्वारा की गयी एक क्रांतिकारी और चमत्कारी प्रगति है। इस विधि से आगामी वर्षों में किसी भी प्रकार की अगोलीय सतह का निर्माण संभव हो सकेगा।

प्रकाशिकी प्रौद्योगिकी में वस्तुतः इतने क्षेत्र सम्मिलित हैं कि उन पर अलग-अलग विस्तृत चर्चा की जा सकती है। खगोलीय प्रकाशिकी, माइक्रोलैंस, होलोग्राफिक प्रकाशीय घटक, ग्रेडिएंट इन्डैक्स ऑप्टिक्स, डिफ्रैक्टिव ऑप्टिक्स, बाइनरी ऑप्टिक्स आदि ऐसे कितने ही क्षेत्र हैं जो इस प्रौद्योगिकी के अंतर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त नये-नये क्षेत्रों का सृजन आवश्यकतानुसार वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा और प्रकाशिकी द्वारा मनुष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने की यात्रा हमेशा जारी रहेगी।

❑❑❑

## टॉप क्वार्क की खोज

*(पृष्ठ - 24 का शेष भाग)*

पदार्थ में द्रव्यमान की उत्पत्ति का स्रोत और उसकी प्रक्रिया को समझाने की आवश्यकता है। अभी वैज्ञानिक मानते हैं कि क्वार्क और उनसे निर्मित अन्य पदार्थों में द्रव्यमान की उत्पत्ति एक सार्वत्रिक क्षेत्र के साथ उनकी अन्योन्य क्रिया के कारण ही होती है और पदार्थ एक परिकल्पित कण 'हिग्स बोसॉन' के माध्यम से सार्वत्रिक क्षेत्र के साथ संक्रिया करता है। कणों का द्रव्यमान हिग्स क्षेत्र के साथ उनके युग्मन परिमाण के समानुपाती होता है। इसलिए क्वार्क का सटीक द्रव्यमान 'हिग्स बोसॉन' की प्रकृति और उसके गुणों के बारे में उपयोगी जानकारी दे सकता है। हिग्स बोसान का संसूचन रोमांचक विषय रहेगा।

टॉप क्वार्क के विघटन से उत्पन्न कणों के अध्ययन से उच्च सममिति वाले कणों के अस्तित्व की संभावना पर प्रकाश पड़ सकता है। यदि भविष्य में इनके अस्तित्व के ठोस प्रमाण मिल सकें तो गुरुत्वाकर्षण बल के अन्य तीन बलों से संबंध के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिल सकेगी।

प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों में स्थित क्वार्कों को बांधे रखने वाले बलों 'ग्लूऑनों' के बारे में तथ्यपरक जानकारी उपलब्ध होने पर ब्रह्मांड की उत्पत्ति विषयक महास्फोट सिद्धांत को अच्छी तरह समझने में सहायता मिलेगी।

❑❑❑

## पानी एक मूलभूत आवश्यकता एवं निर्लवणीकरण तकनीक

*(पृष्ठ - 30 का शेष भाग)*

पेयजल मिशन) के अंतर्गत 120 संयंत्र, 20-100 घन मी. प्रतिदिन क्षमता वाले रखे गये हैं जो कि विपरीत परासरण तथा विद्युत अपोहन सिद्धांतों पर आधारित हैं। अशुद्ध पानी से फैलने वाली बीमारियों की जानकारी का प्रचार-प्रसार, जल संरक्षण तथा महानगरपालिकाओं द्वारा भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुए, इन विधियों पर आधारित संयंत्र लगाने के लिए निर्देश आदि जहां एक ओर जल की महत्ता को बताते हैं वहीं दूसरी ओर निर्लवणीकरण विधियों की निरंतर बढ़ती उपयोगिता को भी इंगित करते हैं। आज देश में कई सरकारी, गैर-सरकारी तकनीकी संस्थान और विश्वविद्यालय आदि इस तकनीकी के विकास, सुधार तथा व्यवहारिकता के लिए अनुसंधान में प्रयत्नशील हैं।

❑❑❑

**तालिका - 4 : प्रति यूनिट उत्पाद से अवशिष्ट जल उत्पादन तथा संभावित पुनः उपयोगी मात्रा**

| उद्योग | अवशिष्ट जल उत्पादन (लीटर प्रति) | | पुनः उपयोगी मात्रा (%) |
|---|---|---|---|
| ताप बिजली घर | $155 \times 10^3$ | यूनिट | 98 |
| कागज | $250 \times 10^3$ | टन | 50 |
| स्टील | $150 \times 10^3$ | टन | 40 |
| औषधि | $4.5 \times 10^3$ | किग्रा. | 40 |
| कपड़ा | 250 | किग्रा. कपड़ा | 15 |
| चमड़ा | 34 | किग्रा. कच्चा चमड़ा | 12 |

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

# निम्नतापीय (क्रायोजनिक) इंजन

डॉ. ए. के. शर्मा
प्रधान, ऊष्मीय प्रक्रम अनुभाग,
इसरो उपग्रह केंद्र, बेंगलोर - 560 017

**क्रायोजनिक नोदक, ठोस तथा द्रवीय नोदकों की तुलना में उन्नत विशिष्ट आवेग प्रदान करते हैं इसलिए क्रायोजनिक इंजनों का विकास अंतरिक्ष प्रमोचन यान प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत तथा तत्कालीन सोवियत संघ के मध्य भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के उपयोग के लिए भारत में क्रायोजनिक इंजन के विकास से संबंधित एक समझौता हुआ। प्रस्तुत लेख में इस बहुचर्चित समझौते से उत्पन्न विवादों, क्रायोजनिक प्रौद्योगिकी से जुड़ी कुछ प्रमुख जटिलताओं तथा प्रगति पर प्रकाश डाला गया है।**

1991 के आरंभ में (सोवियत) रूस तथा भारत के मध्य क्रायोजनिक इंजन के विकास से संबंधित एक समझौता हुआ जिसमें रूस द्वारा भारत को पहले क्रायोजनिक इंजन बेचने तथा तत्पश्चात उसके निर्माण से संबंधित तकनीकी का हस्तांतरण करने का प्रावधान था। 1992 में संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके कुछ सहयोगी देशों ने भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, इसरो तथा रूसी अंतरिक्ष एजेंसी, ग्लेबकासमास पर व्यापारिक प्रतिबंध लगा दिया। आरोप था कि इस सौदे से प्रक्षेपणास्त्र प्रौद्योगिकी नियंत्रण व्यवस्था (मिसाइल टेक्नालाजी कंट्रोल रिजीम - एम. टी. सी. आर.) का उल्लंघन हुआ है।

प्रक्षेपणास्त्र प्रौद्योगिकी नियंत्रण व्यवस्था, अमेरिका तथा कुछ अन्य औद्योगिक राष्ट्रों (प्रारंभ में जिनकी संख्या मात्र 7 थी जो अब बढ़कर 23 हो चुकी है) के मध्य विकासशील राष्ट्रों में प्रक्षेपणास्त्र तकनीकी का प्रसार रोकने के विषय में हुआ एक प्रस्ताव है। यद्धपि रूस तथा भारत दोनों ही इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षरकर्ता नहीं हैं तथा क्रायोजनिक तकनीकी का उपयोग भी सामान्यतः प्रक्षेपणास्त्रों के निर्माण में नहीं किया जाता फिर भी अमेरिका रूस पर लगातार भारत के साथ हुए क्रायोजनिक इंजन के सौदे को रद्द करने के लिए दबाव डालता रहा है। सोवियत संघ के विघटन के उपरांत रूस की बिगड़ती हुई अर्थव्यवस्था का फायदा उठाते हुए अंततः अमेरिका ने रूस को क्रायोजनिक सौदे के कुछ प्रावधानों पर रोक लगाने के लिए पुनः विचार करने पर विवश कर दिया है। रूसी सरकार तथा रूसी अंतरिक्ष एजेंसी के उच्च अधिकारियों के परस्पर विरोधी बयानों से इस समझौते के परिपालन पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा प्रतीत होता है कि रूस अब भारत को क्रायोजनिक इंजन तो उपलब्ध करायेगा किंतु उसके निर्माण से संबंधित तकनीकी हस्तांतरण पर अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है।

अब हम संक्षिप्त में क्रायोजनिक प्रौद्योगिकी तथा क्रायोजनिक इंजन के निर्माण से संबंधित कुछ जटिल प्रणालियों के विकास की चुनौतियों के बारे में चर्चा करेंगे।

निम्नताप विज्ञान को क्रायोजनिक्स अथवा निम्नतापिकी कहते हैं। क्रायोजनिक्स के क्षेत्र के अंतर्गत $-100^0$ से. (या 173 केल्विन) से कम के तापमान आते हैं। निम्न तापमानों पर द्रवीकृत गैसों, जैसे द्रवीय हाइड्रोजन ($20^0$ केल्विन), द्रवीय ऑक्सीजन ($90^0$ से $126^0$ केल्विन) आदि को निम्नतापीय नोदकों (क्रायोजनिक प्रोपेलेंट) के रूप में उपयोग किया जाता है। यूं तो रॉकेट इंजन में प्रयुक्त किये जाने वाले क्रायोजनिक नोदक, ठोस नोदकों की तुलना में अनेक विशिष्टताएं रखते हैं किंतु

क्रायोजनिक इंजन की सबसे महत्वपूर्ण श्रेष्ठता उसकी उत्कृष्ट दक्षता है जिसे रॉकेट नोदन की परिभाषा में विशिष्ट आवेग (स्पेसिफिक इम्पल्स) कहा जाता है। उन्नत विशिष्ट आवेग से तात्पर्य यह है कि इन नोदकों का प्रति इकाई भार, अधिक प्रणोद उत्पन्न करता है। क्रायोजनिक इंजनों में सामान्यत: प्रयुक्त किये जाने वाले नोदकों में ईंधन के रूप में द्रवीय हाइड्रोजन तथा ऑक्सीकारक के रूप में द्रवीय ऑक्सीजन प्रमुख हैं। द्रवीय हाइड्रोजन तथा द्रवीय ऑक्सीजन के संयोजन से दहन के उपरांत अल्प आण्विक द्रव्यमान वाली गैसें निकलती हैं जो उच्च निष्पादन के लिए सर्वाधिक वांछित गुणक है।

**नोदकों का विशिष्ट आवेग ( सेकंडों में )**

| ठोस नोदक | द्रव नोदक | क्रायोजनिक नोदक |
|---|---|---|
| 250-300 | 300-340 | 400-450 |

**क्रायोजनिक नोदकों का प्रबंधन एवं भंडारन** - द्रवीय हाइड्रोजन तथा द्रवीय ऑक्सीजन अधि: शीतल (सुपर कूल्ड) एवं उच्च विस्फोटक पदार्थ हैं। इनके रखरखाव एवं भंडारन के लिए पूर्णत: प्रमाणित तकनीकियों का उपयोग परम आवश्यक है। भंडार टैंक जो अति तापमानों का परिवर्तन सहन करते हैं, के निर्माण के लिए संगत पदार्थों का चयन तथा टैंकों की ऊष्मारोधन अभिकल्पना का विकास एक बड़ा चुनौती पूर्ण कार्य है।

**उच्च वेग टर्बो पंप का निर्माण** - उच्च वेग टर्बो पंप जो क्रायोजनिक ईंधन तथा ऑक्सीकारक को नियंत्रित वेग से दहन कक्ष में अंत: क्षेपित करता है, उससे संबंधित नियंत्रण प्रणालियों के घटकों के संविरचन के लिए पूर्णत: परिष्कृत तकनीकी तथा परिमार्जित उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है।

**प्रणोद कोष्ठ समुच्चय का संविरचन (फेब्रीकेशन आफ थ्रस्ट चेंबर एसेम्बली)** - प्रणोद कोष्ठ जो अत्याधिक तापमानों को वहन करने के साथ-साथ आवरण को आपेक्षित रूप से ठंडा रखता है का संविरचन तथा ऊष्मारोधन एक अत्यंत जटिल तकनीकी है।

अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित, विश्व के लगभग सभी राष्ट्रों ने अपने उपग्रह प्रक्षेपण यानों के उपयोग के लिए क्रायोजनिक इंजनों का विकास किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका के एटलस सेन्तुर एवं स्पेस शटल तथा यूरोप का एरियन रॉकेट क्रायोजनिक चरण का उपयोग करते हैं। जापान ने अपने एच-1 रॉकेट तथा चीन ने अपने लाँग मार्च श्रेणी के प्रक्षेपण यानों के लिए क्रायोजनिक इंजनों का विकास किया है। पूर्व सोवियत संघ के वोस्तोक प्रक्षेपणयान में कैरोसीन तथा द्रवीय ऑक्सीजन के अर्द्धनिम्नतापीय (सेमीक्रायो-जनिक) इंजन तथा इनरजिया प्रक्षेपणयान के लिए द्रवीय हाइड्रोजन एवं द्रवीय ऑक्सीजन का उपयोग करने वाले क्रोड निम्नतापीय (कोर क्रायोजनिक) इंजन को प्रयुक्त किया गया है। भारत द्वारा अपने जी. एस. एल. वी. (भूस्थिर उपग्रह प्रक्षेपणयान, जियोस्टेशनरी सेटेलाइट लांच वेहिकल) रॉकेट में क्रायोजनिक चरण का उपयोग करने की योजना है। चित्र-1 में जी एस एल वी का विन्यास दिखाया गया है। जी एस एल वी प्रमोचन यान द्वारा 2 टन भार वाले इन्सेट-2 पीढ़ी (जी सेट) के अंतरिक्षयानों को भूस्थिर कक्षा में छोड़ा जायेगा। ऊपरी चरण में पर्याप्त प्रणोद प्राप्त करने के लिए जी एस एल वी रॉकेट क्रायोजनिक इंजन का उपयोग करेगा। जी एस एल वी रॉकेट क्रायोजनिक नोदकों का उपयोग करने वाला पहला भारतीय उपग्रह प्रक्षेपण यान होगा। इससे पहले छोड़े गये सभी भारतीय प्रक्षेपण यानों, एस एल वी (सेटेलाइट लांच वेहिकल - उपग्रह प्रमोचनयान) ए एस एल वी (आगमेंटिड सेटेलाइट लांच वेहिकल संवर्धित उपग्रह प्रमोचन यान) तथा पी एस एल वी (पोलर सेटेलाइट लांच वैहिकल - ध्रुवीय उपग्रह प्रमोचन यान) में मात्र ठोस तथा/अथवा द्रव नोदकों का ही उपयोग किया गया है।

जी एस एल वी प्रक्षेपण यान की उड़ान के विभिन्न चरण निम्नलिखित हैं :-

**शून्य चरण** : स्ट्रेप आन (4, एल 40)
चार स्ट्रैपआन द्रव नोदक मोटरें, प्रत्येक में 40 टन द्रव नोदक ईंधन - यू. डी. एम. एच. (अनसिमेट्रीकल डाइ-मिथाइल हाइड्राजिन) ऑक्सीकारक 97%,नाइट्रोजन टेट्राक्साइड तथा 3% नाइट्रिक ऑक्साइड और गिंबल नियंत्रण प्रणाली इंजन।

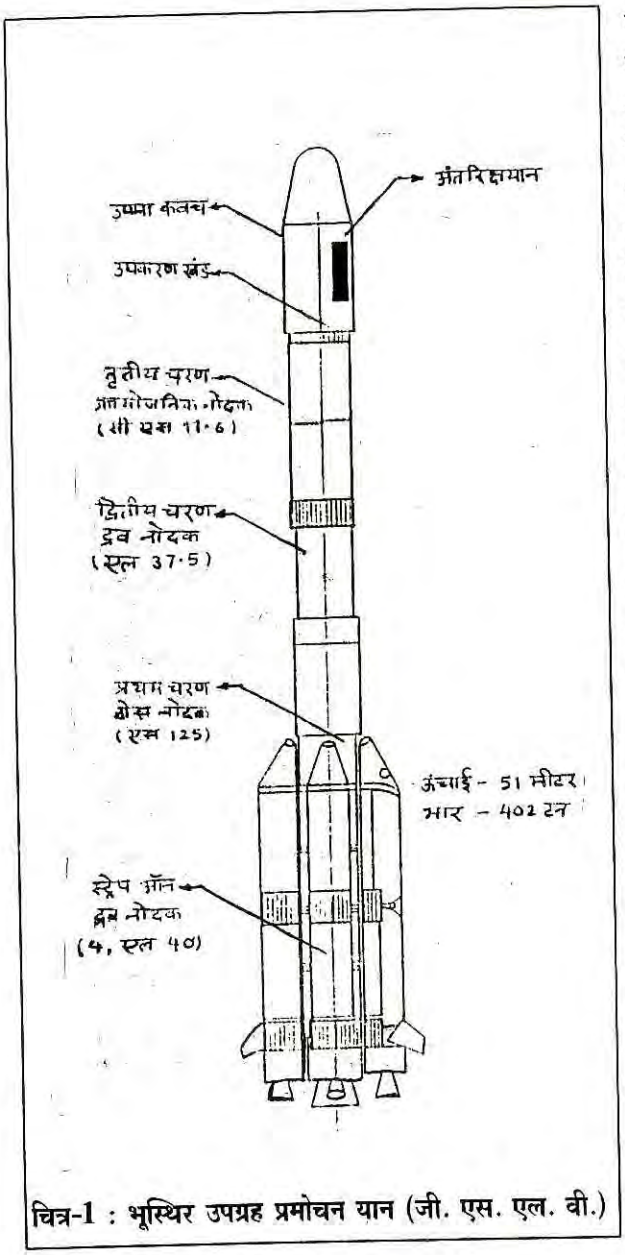


**चित्र-1 : भूस्थिर उपग्रह प्रमोचन यान (जी. एस. एल. वी.)**

**प्रथम चरण :** ठोस नोदक इंजन (एस 125)
ईंधन - एच. टी. पी. बी. (हाइड्राक्सिल टरमिनेटिड पॉलीब्युटाडाइड), ऑक्सीकारक - ए. एच. (अमोनियम परक्लोरेट)। एल्युमिनियम पाउडर को दहन के समय नोदक की ऊर्जा बढ़ाने के लिए मिश्रित किया जाता है।
अक्षनमन तथा पार्श्ववर्तन अक्ष (पिच तथा यॉ एक्सिस) के लिए द्वितीयक अंतःक्षेपण प्रणोद सदिश नियंत्रण प्रणाली (सेकंड्री इंजेक्शन थ्रस्ट कंट्रोल सिस्टम) तथा लोटन अक्ष (रोल एक्सिस) के नियंत्रण के लिए प्रक्रिया नियंत्रण प्रलाणी (रिएक्शन कंट्रोल सिस्टम - आर. सी. एस.) का उपयोग किया जाता है।

**द्वितीय चरण :** द्रव नोदक इंजन (एल 37.5)
ईंधन - यू. डी. एम. एच.।
ऑक्सीकारक - 97 प्रतिशत नाइट्रोटन टेट्राक्साइड तथा 3 प्रतिशत नाइट्रिक ऑक्साइड।
गिंबल नियंत्रण प्रणाली इंजन।

**तृतीय चरण :** क्रायोजनिक इंजन ( सी. एस. 11.6)
ईंधन - द्रवीय हाइड्रोजन।
ऑक्सीकारक - द्रवीय ऑक्सीजन।

जी. एस. एल. वी. की पहली उड़ान 1997 में प्रस्तावित है। यह प्रक्षेपण यान जो रूस द्वारा निर्मित क्रायोजनिक इंजन का उपयोग करेगा 1900 किलोग्राम भार वाले जी सेट-I अंतरिक्षयान को भूस्थिर कक्षा में छोड़ेगा। तदोपरांत जी एस एल वी रॉकेट में संशोधन करके 2500 किलोग्राम भार वाले भूस्थिर उपग्रहों को छोड़ने की योजना है। यद्धपि रूस द्वारा क्रायोजनिक इंजन प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण में बाधा से भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को कुछ निराशा अवश्य हुई है किंतु जी. एस. एल. वी. परियोजना की समग्र प्रगति संतोषजनक है। आशा है रूस द्वारा क्रायोजनिक प्रौद्योगिकी उपलब्ध न कराने की स्थिति में भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिक स्वयं ही शीघ्र उसका विकास करने में सक्षम होंगे तथा शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए लक्षित भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम तमाम अंतर्राष्ट्रीय दबावों के बाबजूद अपनी पूर्व निर्धारित योजनाओं के अनुसार निर्विघ्न चलता रहेगा।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता (1995) प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

# नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद - सिद्धांत एवं अनुप्रयोग

**जय प्रकाश सिंह**
वैज्ञानिक-बी, उन्नत यंत्र प्रयोगशाला,
यंत्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान,
रायपुर, देहरादून (उ. प्र) - 248 008

**नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद की खोज से चिकित्सा विज्ञान में क्रांतिकारी लहर आयी है। चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन से रोग परीक्षण, मॉनीटरन व चिकित्सा में बहुत सहायता मिली है। उद्योगों एवं प्रयोगशालाओं में पदार्थों के अविनाशी परीक्षण में भी नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का प्रयोग होता है यह प्रक्रिया क्या है तथा इसका किन-किन क्षेत्रों में प्रयोग हुआ है इस लेख में बखूबी समझाया गया है।**

प्रकृति की अनेकानेक घटनाएं हमें अचंभित इसलिए भी कर जाती हैं क्योंकि वे घटित तो अत्यंत सूक्ष्म जैसे आण्विक, परमाण्विक अथवा नाभिकीय स्तरों पर होती हैं परंतु इतने अधिक कणों में इतनी बार घटित होती हैं कि उनका प्रभाव व्यापक रुप में सामने आता है। नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद (NMR) भी ऐसी ही घटनाओं में से एक है।

किसी पिंड को थोड़ा सा विस्थापित करके छोड़ देने पर वह अपनी मध्यमान स्थिति के सापेक्ष जिस आवृत्ति से दोलन करता है, उसे उसकी स्वाभाविक आवृत्ति कहते हैं जो दोलनकारी पिंड का लाक्षणिक गुण है। यदि कोई आवर्ती बाह्य बल उस पिंड पर आरोपित करें तो वह बाह्य बल की ही आवृत्ति से दोलन करने लगेगा। परंतु ऐसे प्रमोदित दोलनों (Forced oscillations) का आयाम अधिक नहीं होता। अब यदि बाह्य बल की आवृत्ति पिंड की स्वाभाविक आवृत्ति के पास पहुंचने लगे तो पिंड के दोलनों का आयाम बढ़ने लगेगा एवं दोनों आवृत्तियों के बिल्कुल बराबर हो जाने की स्थिति में तो आयाम बहुत अधिक (सिद्धांत: अनंत तक भी) बढ़ जाता है। यह घटना अनुनाद कहलाती है। नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद तीव्र चुंबकीय क्षेत्र में रखे पदार्थ के परमाण्वीय नाभिक पर क्षेत्र के लंबवत प्रत्यारोपित एक दूसरे प्रत्यावर्ती चुंबकीय क्षेत्र का प्रभाव है।

वे नाभिक जिनमें प्रोटॉनों (धन कणों), न्यूट्रॉनों (उदासीन कणों) अथवा दोनों की संख्या विषम होती है, यांत्रिक चक्रण या स्पिन प्रदर्शित करते हैं। अत: इनसे एक कोणीय संवेग भी जुड़ जाता है जिसे नाभिकीय चक्रण क्वांटम संख्या कहते हैं। वे नाभिक जिनके लिए इस संख्या का मान शून्य होता है (जैसे कार्बन-12, ऑक्सीजन-16 इत्यादि), नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद प्रदर्शित नहीं करते। जिन नाभिकों के लिए यह संख्या 1/2 के बराबर या अधिक होती है (जैसे हाइड्रोजन-1, क्लोरीन-19, कार्बन-13, फॉस्फोरस-31, नाइट्रोजन-15 इत्यादि) नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद प्रदर्शित करते हैं।

अपने भीतर के विद्युत आवेश (प्रोटॉन) के कारण अपने अक्ष पर घूमता हुआ परमाण्वीय नाभिक एक विद्युतधारा और फलस्वरुप एक चुंबकीय क्षेत्र को जन्म देता है। इस प्रकार यह अपने घूर्णन अक्ष के संपाती (Coincident) अक्ष वाले सूक्ष्म दंड चुंबक या चुंबकीय द्विध्रुव (Magnetic dipole) की भांति व्यवहार करता है। किसी भी नाभिक से बने चुंबकीय द्विध्रुव का एक लाक्षणिक मान होता है। अत: नाभिक में कोणीय संवेग के साथ-साथ एक चुंबकीय संवेग भी होता है। दोनों राशियां सदिश (Vetor) व परस्पर समानांतर होती हैं।

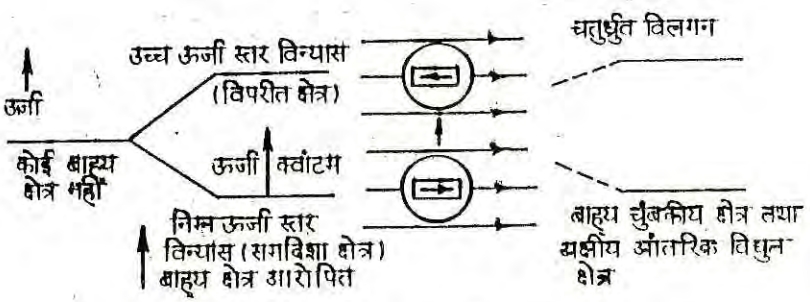


**चित्र-1 : बाह्य चुंबकीय क्षेत्र में नाभिक के विन्यास**

अब यदि चुंबकित नाभिक (अपने अक्ष पर घूमते नाभिक) को एक समान बाह्य चुंबकीय क्षेत्र में रख दिया जाये तो इस पर एक बल-आघूर्ण (Torque) कार्य करने लगेगा जो इसके चुंबकीय क्षेत्र को बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र की दिशा के अनुरूप लाने का प्रयास करेगा। नाभिक से उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र एवं बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र की इस पारस्परिक क्रिया के परिणामस्वरूप घूमता हुआ नाभिक बाह्य क्षेत्र की दिशा के सापेक्ष अयन या पुरस्सरण गति (Precession) करने लगता है। जब कोई निकाय अपने अक्ष पर घूमने के साथ-साथ अन्य किसी अक्ष के चारों ओर परिक्रमा भी करता है (जैसे पृथ्वी) तो इस प्रकार की गति अयन गति कहलाती है।

नाभिकीय चुंबक (अथवा उसका सदिश कोणीय संवेग) कुल नाभिकीय चक्रण क्वांटम संख्या के दुगने से एक अधिक दिशाओं में अभिविन्यसित (Oriented) हो सकता है (चित्र-1)। इन सभी अलग-अलग दिशाओं में नाभिक का ऊर्जा स्तर अलग होगा (जैसे किसी चुंबकीय क्षेत्र में लटकी चुंबकीय सुई की ऊर्जा क्षेत्र की दिशा एवं सुई के चुंबकीय अक्ष के बीच के कोण पर निर्भर करती है)।

अब एक दिशा से दूसरी दिशा में विन्यास बदलने की प्रक्रिया में नाभिक एवं बाह्य वातावरण के मध्य ऊर्जा का आदान-प्रदान अवश्य होगा। साथ ही इस ऊर्जा के समानुपाती एक निश्चित आवृत्ति की तंरग भी अवशोषित या उत्सर्जित होगी। यहीं से इस प्रक्रिया का नाम नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद पड़ जाता है क्योंकि इस परिप्रेक्ष्य में अनुनाद का अर्थ एक निश्चित क्रांतिक आवृत्ति पर पदार्थ द्वारा आपतित आवर्ती (oscillating) विद्युत चुंबकीय क्षेत्र से ऊर्जा का अवशोषण ही है।

उदाहरण स्वरूप हाइड्रोजन नाभिक (विशुद्ध प्रोटॉन) के लिए यह अनुनाद एक ऑर्सटेड तीव्रता के बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र में 4260 हर्ट्ज आवृत्ति का बाह्य आवर्ती विद्युत चुंबकीय क्षेत्र आरोपित करने पर घटित होता है। परंतु इसे 0.1 हर्ट्ज आवृत्ति पर ही घटित कराने हेतु बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता 23,500 ऑर्सटेड तक बढ़ानी पड़ेगी।

बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र में रखा हाइड्रोजन नाभिक (प्रोटॉन) दो दिशाओं में विन्यसित हो सकता है। प्रथम निम्न ऊर्जा स्तर विन्यास, जब सूक्ष्म नाभिकीय चुंबक का चुंबकीय क्षेत्र बाह्य चुंबकीय क्षेत्र की ही दिशा में हो। द्वितीय उच्च ऊर्जा स्तर विन्यास अर्थात जब दोनों क्षेत्रों की दिशाएं परस्पर विपरीत हों। निम्न ऊर्जा स्तर विन्यास से उच्च ऊर्जा स्तर विन्यास के मध्य संचरण (Transition) हेतु नाभिक को एक निश्चित आवृत्ति की विद्युत चुंबकीय ऊर्जा की अर्थात विकिरण के क्वांटम यानि पैकेट की आवश्यकता होगी।

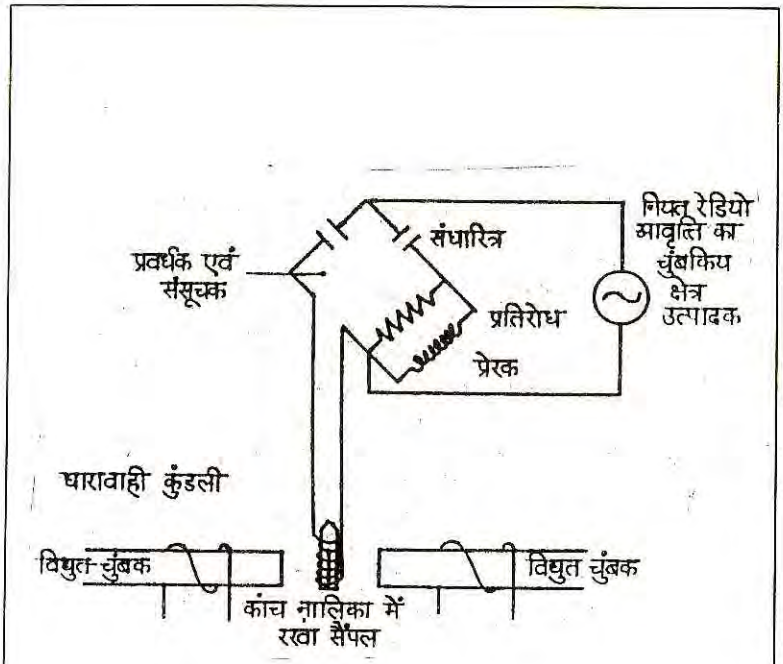


चित्र-2 : नाभिकीय अनुनाद विधि

इस प्रकार यदि एक निश्चित आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र, जो तल ध्रुवित अथवा चक्र ध्रुवित (Plane or Circularly polarized) हो, पहले से उपस्थित बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र (जिसमें नाभिकीय चुंबक रखा हुआ है) के अभिलंबवत आरोपित किया जाये तो यह नया क्षेत्र नाभिकीय चुंबक को पूर्वक्षेत्र की अनुरूप दिशा से विपरीत दिशा में विन्यसित कर सकता है, यदि इस नये चुंबकीय क्षेत्र की कोणीय आवृत्ति उस आवृत्ति के बराबर हो जिससे नाभिक (या उसका सदिश कोणीय संवेग) बाह्य एक-समान क्षेत्र में अयन गति कर रहा होता है। इसे 'लारमर की अयन गति' कहते हैं। अतः इस आवृत्ति की आपतित चुंबकीय क्षेत्र की ऊर्जा अवशोषण के कारण कम हो जायेगी। फलस्वरूप वर्णक्रम में इस आवृत्ति पर तरंग का आयाम भी कम हो जायेगा अवशोषित ऊर्जा नाभिक को निम्न ऊर्जा स्तर विन्यास से उच्च ऊर्जा स्तर विन्यास तक ले जाने में खर्च हो जाती है। सौभाग्यवश यह आवृत्ति रेडियो आवृत्तियों की परास में ही पड़ती है। बाह्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र की अलग-अलग तीव्रताओं पर नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद हेतु अ.[illegible]क आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र की आवृत्ति भी अलग-अलग होती है। सामान्यः आवर्ती क्षेत्र की आवृत्ति को नियत रखकर बाह्य एक-समान क्षेत्र की तीव्रता ही परिवर्तित करते हैं। इसके फलस्वरूप प्राप्त आलेख को (जो आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता के मध्य खींचा जाता है) नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का वर्णक्रम कहते हैं।

इस प्रक्रिया की खोज 1946 में दो अलग-अलग समकालीन वैज्ञानिक समूहों - ब्लॉक, हैन्सेन तथा पैकर्ड के प्रथम समूह तथा पर्सेल, टॉरी तथा पाउन्ड के द्वितीय समूह ने स्वतंत्र रूप से की। पहले इसका उपयोग नाभिकीय गुणों के निर्धारण में किया जाता था परंतु 1951 में पैकर्ड ने जटिल संकर अणुओं की पहचान एवं संरचना-निर्धारण में इसका उपयोग किया।

## नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का पता लगाने हेतु विधियां :

इस कार्य के लिए दो विधियां प्रयोग में लायी जाती हैं :-

### पर्सेल द्वारा दी गयी नाभिकीय अनुनाद विधि :

इस विधि में नाभिक द्वारा निम्न ऊर्जा स्तर विन्यास से उच्च ऊर्जा स्तर विन्यास के मध्य संचरण हेतु रेडियो आवृत्ति की बाह्य आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र से ऊर्जा-अवशोषण की प्रक्रिया का लाभ उठाते हैं। प्रयुक्त उपकरण व्यवस्था चित्र-2 में दिखायी गयी है। धारावाही कुंडली में प्रवाहित धारा का मान धीरे-धीरे परिवर्तित करने पर विद्युत चुंबकीय ध्रुवों के मध्य उपस्थित एक-समान चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता में भी परिवर्तन होता है। एक

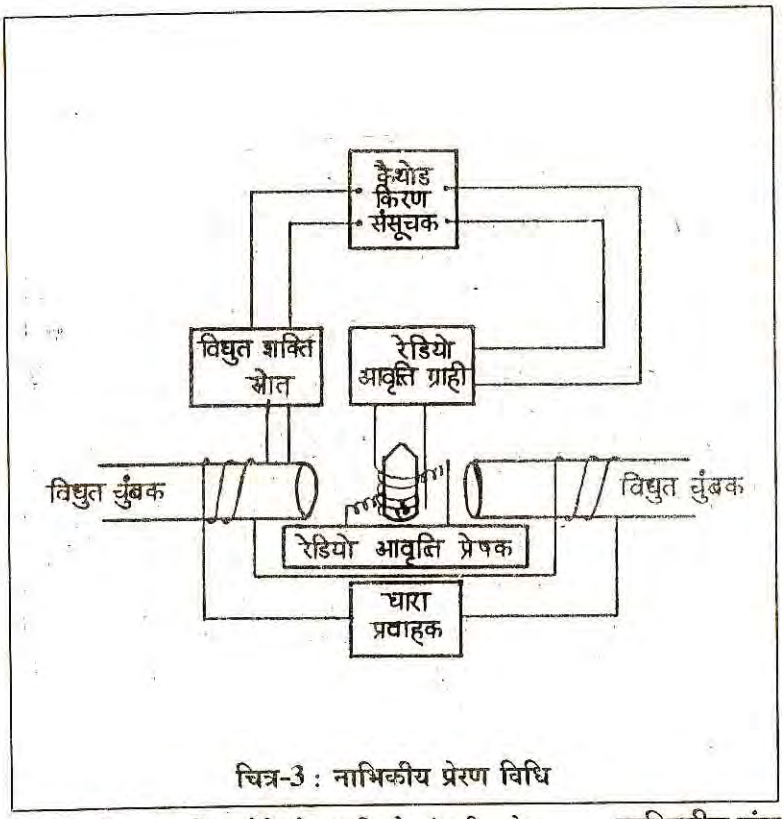


चित्र-3 : नाभिकीय प्रेरण विधि

निश्चित तीव्रता पर नियत रेडियो आवृत्ति के चुंबकीय क्षेत्र से ऊर्जा का अवशोषण व फलस्वरूप इसके आयाम में आयी गिरावट पदार्थ में नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद की घटना को प्रदर्शित करती है। यह गिरावट ब्रिज विधि से माप ली जाती है।

**ब्लॉक द्वारा दी गयी नाभिकीय प्रेरण विधि :**

इस विधि में आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र से ऊर्जा अवशोषण के फलस्वरूप नाभिक के ऊर्जा स्तर में वृद्धि एवं तत्पश्चात मूल ऊर्जा स्तर में लौटने की प्रक्रिया में नाभिक द्वारा उत्सर्जित विकिरण का प्रयोग किया जाता है। प्रयुक्त व्यवस्था चित्र-3 में दिखायी गयी है।

एक कुंडली जिसका अक्ष एक-समान (मुख्य) चुंबकीय क्षेत्र के अक्ष के लंबवत हो उस नलिका पर, जिसमें पदार्थ (जिसमें नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का पता लगाना है) रखा हुआ हो पर लपेट दी जाती है व इसे रेडियो आवृत्ति के चुंबकीय क्षेत्र प्रेषक से जोड़ देते हैं। फिर एक दूसरी कुंडली भी जिसका अक्ष मुख्य एक- समान चुंबकीय क्षेत्र व रेडियो आवृत्ति के आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र दोनों के लंबवत हो पदार्थग्राही नलिका पर लपेट दी जाती है व इसके दूसरे सिरे का संपर्क रेडियो आवृत्ति ग्राही से कर देते हैं जो कैथोड ट्यूब संसूचक से जुड़ा होता है।

नाभिकीय अनुनाद विधि की भांति ही यहां भी धारावाही कुंडली में धारा परिवर्तित होने पर मुख्य एक-समान चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता में परिवर्तन होता है व एक निश्चित तीव्रता पर आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र से ऊर्जा का अवशोषण होता है। उच्च स्तर में पहुंचा नाभिक निम्न ऊर्जा स्तर में आते समय ऊर्जा उत्सर्जित करता है जो संसूचक द्वारा प्रदर्शित कर दिया जाता है।

## नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद से प्राप्त स्पेक्ट्रम के कुछ अनुप्रयोग :

मिथाइल अल्कोहल यौगिक में नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का वर्णक्रम चित्र-4 में प्रदर्शित है।

यदि किसी यौगिक को बाह्य तीव्र चुंबकीय क्षेत्र में रखने पर उसके सभी हाइड्रोजन परमाणु एक ही आवृत्ति का विकिरण एक साथ अवशोषित करने लगें तो फलस्वरूप प्राप्त वर्णक्रम उपयोगी नहीं होगा क्योंकि मात्र एक ही अवशोषण संकेत दिखायी देगा। सौभाग्यवश, आण्विक स्तर पर अलग-अलग वातावरण में अवस्थित हाइड्रोजन परमाणु थोड़ी सी अलग-अलग आवृत्ति की ऊर्जाएं अवशोषित करते हैं। (भले ही बाह्य मुख्य चुंबकीय क्षेत्र एक-समान एवं अति तीव्र हो।) चारों ओर के इलेक्ट्रॉनों एवं पड़ोसी नाभिक (जो पुनः सूक्ष्म दंड चुंबक की ही भांति व्यवहार करते हैं) की वजह से ही ऐसा होता है। एक विशेष नाभिक के चारों ओर का वातावरण ही

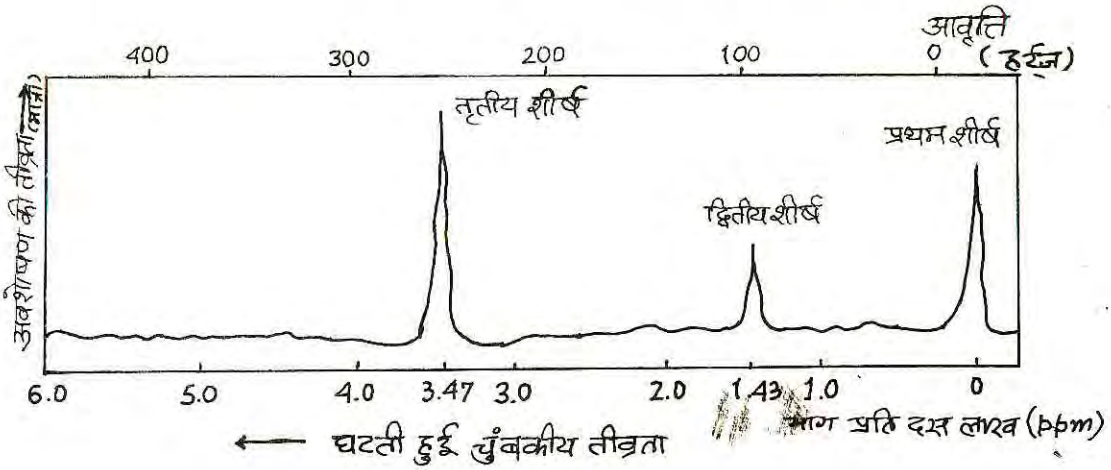


**चित्र-4 : मिथाइल अल्कोहल के नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद से प्राप्त स्पेक्ट्रम**

उसके द्वारा एक अलग आवृत्ति की ऊर्जा के अवशोषण का कारण बन जाता है।

अत: मिथाइल अल्कोहल के वर्णक्रम में चित्रानुसार तीन शीर्ष या शिखर दिखायी देते हैं।

प्रथम शीर्ष जो शून्य भाग प्रति दस लाख (ppm) की तीव्रता पर है, टेट्रामिथाइलसिलेन के नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद के कारण है जो कि प्रोटॉन (हाइड्रोजन नाभिक) के अनुनाद वर्णक्रम के निर्देश या आधार बिंदु के रूप में लिया जाता है। यहीं से बाह्य चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता धीरे-धीरे घटानी प्रारंभ करते हैं।

द्वितीय शीर्ष जो 1.43 भाग प्रति दस लाख की तीव्रता पर है, हाइड्रॉक्सिल (OH) समूह के हाइड्रोजन परमाणु के नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद के कारण है।

तृतीय शीर्ष जो 3.47 बाद प्रति दस लाख की तीव्रता पर है, मिथाइल ($CH_3$) समूह के कारण है।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाद के दोनों शीर्ष व X-अक्ष के बीच के क्षेत्रफलों का अनुपात 1:3 है जो इन दो विशेष अनुनादों में सम्मिलित प्रोटॉनों की अलग-अलग संख्याओं की सापेक्षता दर्शाता है। (OH में एक हाइड्रोजन परमाणु जबकि $CH_3$ में तीन हाइड्रोजन परमाणु हैं।)

आणविक संरचना-निर्धारण के अतिरिक्त अवशोषण रेखा की आवृत्तीय स्थिति एवं अवशोषित ऊर्जा का मान पदार्थ के विश्लेषण संबंधी भौतिक आंकड़ों के स्पष्टीकरण में भी महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

नाभिकीय-चुंबकीय द्विध्रुव एवं वातावरण के मध्य ऊर्जा के आदान-प्रदान के संबंध में वाल्टर नामक वैज्ञानिक ने दो विश्रांति प्रक्रियाएं प्रस्तुत की हैं:

**(1) चक्रण-चक्रण विश्रांति :** पराचुंबकीय पदार्थों में स्थायी चुंबकीय द्विध्रुव उपस्थित होते हैं। फलस्वरूप नाभिकीय चक्रण अपने चारों ओर के चुंबकीय द्विध्रुवों के कारण एक कंपनित आंतरिक क्षेत्र में हो रहा होता है। यदि आरोपित बाह्य चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता इस आंतरिक क्षेत्र से कम हो तो बाह्य क्षेत्र नाभिकीय द्विध्रुव के आस-पास के चुंबकीय क्षेत्र की दिशा मात्र में थोड़ा सा परिवर्तन करता है परंतु तीव्रता का मान वही रहता है। नाभिकीय द्विध्रुव अब इस नयी दिशा के सापेक्ष अयन गति प्रारंभ कर देता है। परिणामस्वरूप प्रत्यारोपित क्षेत्र की दिशा में एक नयी चुंबकता आ जाती है। अत: चक्रण निकाय एवं प्रत्यारोपित क्षेत्र में पारस्परिक क्रिया होती है परंतु चक्रित नाभिक व जालक (पदार्थ की अणु संरचन के मध्य ऊर्जा का आदान-प्रदान नहीं होता। यह प्रक्रिया चक्रण-चक्रण विश्रांति कहलाती है जो अधिक आवृत्ति एवं कम तीव्रता के बाह्य चुंबकीय क्षेत्र को आरोपित करने पर घटित होती है। इसका विश्रांति समय अत्यंत कम, $10^{-10}$ सेंकड की कोटि का होता है।

(2) **चक्रण-जालक विश्रांति** : यदि आरोपित बाह्य चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता आंतरिक क्षेत्र से अधिक हो तो नाभिकीय द्विध्रुव के आस-पास के चुंबकीय क्षेत्र के मान में बाह्य क्षेत्र के कारण परिवर्तन होता है परंतु दिशा वही रहती है। परंतु चुंबकीय क्षेत्र का मान तभी बढ़ सकता है जब कुछ द्विध्रुव बाह्य क्षेत्र की असमानांतर या विपरीत दिशा से समांतर दिशा में विन्यसित हो जायें। इसके लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो जालक से ली जाती है। इसी कारण यह प्रक्रिया चक्रण-जालक विश्रांति कहलाती है जो तीव्र परंतु कम आवृत्ति का बाह्य चुंबकीय क्षेत्र आरोपित करने पर घटित होती है। चक्रण-जालक विश्रांति समय बहुत हद तक ताप पर निर्भर करता है जबकि चक्रण-चक्रण विश्रांति समय ताप पर बिल्कुल भी निर्भर नहीं करता।

अवशोषण रेखा की चौड़ाई निम्न कारकों पर निर्भर करती है :

(i) नाभिकीय चक्रण-चक्रण विश्रांति की पारस्परिक क्रिया पर, जो चौड़ाई बढ़ाती है।

(ii) सूक्ष्म चक्रण-जालक विश्रांति समय पर, जो विशेष विन्यास में नाभिक के होने के समय को कम करता है। यह भी रेखा की चौड़ाई बढ़ाता है।

(iii) नाभिक-विद्युतीय चतुर्ध्रुव (quadrupole) अभिक्रिया पर, नाभिक पर आवेश के अगोलीय (Non-spherical) वितरण की अवस्था में उसमें एक नाभिक विद्युतीय चतुर्ध्रुव संवेग उत्पन्न हो जाता है। ऊर्जा स्तरों का विलगन (Splitting) इसी संवेग एवं नाभिक पर विद्युत क्षेत्र की प्रवणता (Gradient) के गुणनफल का फल है। यह विलगन चुंबकीय क्षेत्र द्वारा उत्पन्न विलगन से स्वतंत्र व उनके अतिरिक्त होता है। इसके कारण अनुनाद अवशोषण रेखा कई रेखाओं में बंट जाती है।

(iv) नाभिकीय चक्रों के समूह पर और स्थायी चुंबकीय क्षेत्र की असमानता पर।

(v) यदि नाभिक तीव्र गति से स्थान परिवर्तन करें तो पड़ोसी द्विध्रुवों (नाभिकों) के चुंबकीय संवेगों का सम्मिलित प्रभाव-औसत शून्य हो जाने से अवशोषण रेखा संकीर्ण हो जाती है। यह प्रक्रिया गतिमय संकुचन (Motional narrowing) कहलाती है।

## नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद के धातु-विश्लेषण में उपयोग :

ठोस पदार्थो के कई गुणों के स्पष्टीकरण में नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का उपयोग करते हैं। जैसे

(1) नाभिकीय-चुंबकीय संवेग का निर्धारण ठीक-ठीक हो जाता है।

(2) अवशोषण रेखा की चौड़ाई व गतिमय संकुचन प्रक्रिया, जो पड़ोसी नाभिकों द्वारा अनुनाद स्थिति में किये जा रहे परिवर्तनों पर निर्भर है, संचरण गुणांक (Diffusion coefficient) के विषय में महत्वपूर्ण सूचना देते हैं।

(3) मिश्रधातुओं (Alloys) में आंतरिक एवं स्थानीय विद्युतीय क्षेत्रों के अध्ययन में (ये क्षेत्र भी अनुनाद स्थिति में परिवर्तन करते हैं।)

## चिकित्सीय अनुप्रयोग :

नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का चुंबकीय अनुनाद प्रतिबंबन के नाम से एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपयोग चिकित्सा-विज्ञान में है। प्रयुक्त उपकरणों में काफी बड़ा एवं शक्तिशाली चुंबक (जिसके बीच मानव शरीर आ जाये व जो शरीर में उपस्थिति हाइड्रोजन-1, फॉस्फोरस-31 आदि परमाणुओं के नाभिकों को पर्याप्त मात्रा में अनुनादित कर सके), रेडियो आवृत्ति की विद्युत चुंबकीय क्षेत्र प्रेषक व ग्राही कुंडलियां, प्रदर्शन प्रणाली व कंप्यूटर आदि प्रमुख हैं। जिस अंग का प्रतिबिंब लेना हो उससे संकेत प्राप्ति हेतु वहां सतह कुंडली लगाते हैं। नैज (Intrinsic) चुंबकीय चक्रण वाले कई तत्व जैसे : जल में हाइड्रोजन-1 परमाणु, फॉस्फोरस-31 इत्यादि इतनी सांद्रता में प्राकृतिक रूप से शरीर में उपस्थित रहते हैं कि चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन में साफ दिखते हैं। विशेष परिस्थितियों में बाहर से दिये जाने वाले कुछ तत्व जैसे क्लोरिन-19, कार्बन-13, लिथियम-17 इत्यादि का प्रतिबिंबन व अंग में आवश्यकता से अधिक अथवा कम

मात्रा में उपस्थित या अनुपस्थित हो जाता है तो उस अंग को एक समान मुख्य चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव में लाकर, फिर इस क्षेत्र के अभिलंबवत निश्चित आवृति का आवर्ती चुंबकीय क्षेत्र आरोपित करें तो उस यौगिक विशेष के अनुनादी नाभिकों की उपस्थित मात्रा के अनुसार आवर्ती क्षेत्र से ऊर्जा का अवशोषण, इससे नाभिकों की ऊर्जा में वृद्धि एवं तत्पश्चात मूल स्तर में लौटते समय उनसे उत्सर्जन होगा जो प्राप्त नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद वर्णक्रम में स्वतः शीर्ष की स्थिति, इसकी उंचाई एवं X-अक्ष व शीर्ष के बीच के क्षेत्रफल के रूप में अभिव्यक्त हो जायेगा। कंप्यूटर की सहायता से अनुनाद से वर्णक्रम से प्राप्त इन आंकड़ों को चक्रण-तानक (Spin-Warp) तकनीक से प्रकाश तीव्रता अथवा बिंदु घनत्व (Pixel density) में परिवर्तित कर स्पष्ट प्रतिबिंब प्राप्त कर सकते हैं। यहां वर्णक्रम की रासायनिक सूचना की अपेक्षा स्थानिक सूचना पर अधिक ध्यान देना होता है।

इस विधि का उपयोग रोग परीक्षण मॉनिटरन व चिकित्सा तीनों में हो सकता है। चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन द्वारा शरीर के किसी भी भाग की (अथवा पूरे शरीर की) अनुप्रस्थ काट का उच्च विपर्यासी (High contrast) द्वि-आयामी या बहु-आयामी प्रतिबिंब लिया जा सकता है व इस विधि का एक लाभ यह भी है कि ऊतक आभास व काट की स्थिति का चुनाव किसी भी विन्यास या तल में इलेक्ट्रॉनिक विधि से आसानी से कर सकते हैं एवं ये तल अगल-बगल, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे घुमाये भी जा सकते हैं। हड्डियों या प्रमास्तिष्कमेरु द्रव (Cerebrospinal fluid) से इस विधि में कोई भी बाधा न पहुंचने के कारण मस्तिष्क-प्रतिबिंबन में यह विधि विशेष उपयोगी है। हृदय, यकृत, गुर्दा व रक्त कोशिकाओं आदि का इस विधि से प्रतिबिंबन काफी अधिक हो रहा है। इसमें मृदु ऊतक हडिड्यां व आंतरिक अंग बिना किरण का प्रयोग किये साफ दिखते हैं। परंतु कम प्रोटॉन युक्त भाग (जैसे - कैल्सियम युक्त कोश) साफ नहीं दिखते।

फॉस्फोरस-31 का प्रतिबिंबन जैव ऊर्जा, झिल्ली उपापचय pH निर्धारण : हाइड्रोजन-1 का प्रतिबिंबन अमीनों अम्लों के उपापचय, तंत्रिकीय प्रेषकों (Neuro-transmitters) व उनके व्युत्पन्नों के अध्ययन, फ्लोरीन-19 का प्रतिबिंबन कृत्रिम रूप से बाहर से दिये गये क्लोरीन युक्त रसायनों जैसे रक्त प्रतिस्थापकों (substitutes) या ऐसी दवाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करने, कार्बन-13 का प्रतिबिंबन, इससे चिह्नित ग्लूकोस (जो मधुमेह रोगियों में उपापचय क्षेत्रों के अध्ययन हेतु दिये जाते हैं) के परीक्षण तथा लिथियम-7 का प्रतिबिंबन उन्माद-अवसाद संबंधी मानसिक अनियमितताओं के अध्ययन में विशेष उपयोगी है। कृत्रिम वृक्क अथवा हृदय के शरीर द्वारा अस्वीकरण का प्रारंभ में ही पता लगाने में, अर्बुद (Tumour) के रासायनिक उपचार के मॉनीटरन में, फॉस्फोरस- 31 युक्त एन्जाइमों की कमी से उत्पन्न मांसपेशीय रोगों जैसे मैक अर्दले संलक्षण (Syndrome), तंत्रिकीय एवं मनोविकारीय अनयिमितताओं, जन्मजात मस्तिष्क क्षीणता, मेनिनजाइटिस रोग के पूर्वानुमान, प्रोपियोन व आर्गिनोसक्सिनिक अम्लों की अनियमितताओं तथा अल्जीमर रोग के विश्लेषण हेतु चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंब ही सर्व-सक्षम सिद्ध हो रहा है। इस प्रतिबिंबन में किसी भी विषैले रसायन, हानिकारक आयनकारी विकिरण या शल्य चिकित्सा आदि का प्रयोग न होने तथा असंक्रामक व कष्ट रहित में होने से यह काफी सुरक्षित है एवं दैनंदिन लोकप्रिय होकर अधिकाधिक प्रयोग में आती जा रही है। परंतु इसका मूल्य अभी अधिक है एवं इसमें समय भी अधिक लगता है। दोनों के भविष्य में कम होने की संभावना है। कई क्षेत्रों में तो इस विधि ने X-किरण, कंप्यूटर-टोमोग्राफी, माइलोग्राम व नैदानिक एन्ग्रोस्कोपी को प्रतिस्थापित भी कर दिया है।

भारत में दिल्ली स्थित नाभिकीय चिकित्सा एवं संबंधित विज्ञान संस्थान (INMAS) जो रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की एक प्रयोगशाला है, इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। यहां का नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन केंद्र हजारों रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा में योगदान कर व इस क्षेत्र में नवीनतम

*(कृपया शेष पृष्ठ - 57 पर देखें)*

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

# कंप्यूटर व भारतीय भाषाएं

अर्चना कटारिया
8-ब, धवलगिरी, अणुशक्ति नगर,
मुंबई - 400 094

**यदि हम चाहते हैं कि कंप्यूटर भी टेलीविज़न की भांति हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन जाय, तो आवश्यक है कि कंप्यूटर की प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हो। प्रचलित सॉफ्टवेयर- वर्डस्टार, लोटस, डीबेस, डॉस आदि पर हिंदी, मराठी और गुजराती में प्रकाशित पुस्तकें काफी लोकप्रिय हुई हैं। अब सभी भारतीय भाषाओं के कूटमानक (कोड) उपलब्ध हैं। एक यांत्रिक अनुवादक के सॉफ्टवेयर पर कार्य आरंभ हो चुका है। कंप्यूटर में भारतीय भाषाओं के प्रयोग से संबंधित शोधकार्य हो रहा है। कंप्यूटर के प्रचार-प्रसार के लिए कौन से आवश्यक कदम उठाये जायें ? – पढ़िए इस लेख में।**

कंप्यूटर और दूर संचार के एकीकृत विकास से सूचना तकनीकी का उपयोग सर्वव्यापी हो गया है। इससे न केवल कार्यकुशलता और उत्पादन में वृद्धि हुई है बल्कि जनजीवन में कई नये कार्य क्षेत्रों का आगमन भी हुआ है। सूचना तकनीकी के इस युग में तेजी से प्रगति के लिए आवश्यक है कि भारत इस क्षेत्र में हुई उपलब्धियों का इष्टतम उपयोग शिक्षा, कृषि, उद्योग, व व्यापार के हर क्षेत्र में करें। लेकिन यह तभी संभव है जब भारत में भी विश्व के अन्य उन्नत देशों की तरह कंप्यूटर तथा सूचना तकनीकी की विधियां तथा संबंधित पाठय पुस्तकें एवं अध्ययन-अध्यापन और ज्ञान प्रसार की प्रक्रियाएं स्थानीय भाषाओं के माध्यम से हों। कंप्यूटरों के 'विन्डो', 'डोस', 'यूनिक्स' ऑपरेटिंग सिस्टम एवं लोकप्रिय सॉफ्टवेयर पैकेजों के भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने से ही जन साधारण की जीवनचर्या में उनका प्रयोग सार्थक होगा। तभी भारतीय संस्कृति के विकास व प्रसार के आधुनिक माध्यम के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान भी सफल होगा। इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास हो रहे हैं, परंतु इस कार्य की महत्ता को देखते हुए इनसे कहीं अधिक प्रयासों की आवश्यकता है।

भारत में विज्ञान के क्षेत्र में कंप्यूटरों का प्रयोग तो तीस वर्ष पुराना है पर सार्वजनिक क्षेत्र में सर्वप्रथम इनका उपयोग रेलवे रिजर्वेशन के लिए किया गया था। अब यह प्रणाली इतनी लोकप्रिय है कि जनता द्वारा हर रेलवे स्टेशन पर उसकी मांग हो रही है। इसकी लोकप्रियता से कंप्यूटरीकरण की प्रक्रिया को बहुत गति मिली है। साथ में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग का विरोध रुक गया है। आज के इलेक्ट्रॉनिक युग में 'कंप्यूटर' अब मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग बनने जा रहा है - जैसे कुछ वर्ष पहले टी. वी. बना था। आजकल हर गांव, कस्बे व शहर के लोग दूरदर्शन पर अपने मन पसंद मनोरंजक, ज्ञानवर्धक कार्यक्रम देखते हैं। दूरदर्शन की लोकप्रियता का मुख्य कारण है : हर प्रांत के लोग दूरदर्शन पर अपनी अपनी भाषाओं में कार्यक्रमों को देख सकते हैं। दूर संचार के साधनों - रेडियो व दूरदर्शन पर प्रसारित कार्यक्रमों की भाषा स्थानीय होने से इनकी पहुंच व्यापक व गहन है। पीसी, मैक, इन्टरनेट, इलेक्ट्रॉनिक मेल, मोबाइल फोन इत्यादि आधुनिक युग के इन जादुई शब्दों से शहरवासी अछूते नहीं रहे हैं। शहरों में सबसे ज्यादा काम के अवसर भी कंप्यूटर संबंधित क्षेत्रों में ही उपलब्ध हैं।

वर्तमान परिस्थिति की विडंबना यह है कि ये अवसर उन लोगों तक ही सीमित हैं जिनकी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहा है। भारत में उपलब्ध कंप्यूटरों के ऑपरेटिंग सिस्टम डॉस, विन्डो एवं प्रचलित अनुप्रयोग सॉफ्टवेयर बेसिक, सी, वर्डस्टार, डीबेस की भाषा अंग्रेजी

ही है। इस कारण जनसाधारण की जीवनचर्या में इनका प्रयोग व्यापक व उपयोगी होगा, इस पर प्रश्न-चिन्ह लगा है।

कंप्यूटर एक इलेक्ट्रॉनिक यंत्र है, जिसकी प्रक्रिया किसी भाषा विशेष या लिपि पर आधारित नहीं है। ऐसे देश जहां अंग्रेजी अधिक प्रचलित नहीं है - जैसे चीन जापान, कोरिया, अरब आदि देशों में कंप्यूटर उनकी भाषा में ही कार्य करते हैं। इस प्रकार से वहां की आम जनता कंप्यूटरों की क्षमता का पूरा व व्यापक उपयोग कर पा रही है। हमारे देश में कंप्यूटर क्षेत्र में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग ज्यादा प्रचलित नहीं हुआ है। पिछले कुछ वर्षों से विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के प्रयोग को प्रोत्साहित किया जा रहा है। खेद का विषय है कि इस विषय को वांछित प्राथमिकता नहीं मिली तथा इसके फलस्वरूप कंप्यूटर क्षेत्र में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है।

कंप्यूटर संबंधित विषयों पर पुस्तकों की बाढ़-सी आयी हुई है पर सभी पुस्तकें अंग्रेजी में ही हैं - चाहे उनके लेखक भारतीय हों या विदेशी। इस विषय पर भारतीय भाषाओं में लिखी पुस्तकों का अभाव है, हालांकि किसी भी पुस्तक विक्रेता के यहां सबसे अधिक पुस्तकें इसी क्षेत्र में मिलती हैं। समय-समय पर सरकार द्वारा हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी पुस्तक-लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए कई योजनाएं चलाई जाती हैं - पर इस ओर वैज्ञानिक व लेखक वर्ग की रुचि व जागरूकता समुचित न होने से इन प्रयासों को अधिक सफलता नहीं मिली है। पिछले दिनों हिंदी, मराठी व गुजराती में प्रचलित सॉफ्टवेयर - वर्ड स्टार, लोटस, डीबेस, डॉस आदि की व्याख्यात्मक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और काफी लोकप्रिय भी हुई हैं। हाल में प्रकाशित कंप्यूटर ग्रंथमाला की पुस्तकों में वनस्थली विद्यापीठ का योगदान सराहनीय है। इन प्रकाशनों से कंप्यूटर जागृति गांवों व कस्बों में बढ़ेगी व उनके प्रसार को सहायता भी मिलेगी। आशा है - इस जागरूकता के साथ ही भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर सॉफ्टवेयर विकसित करने की मांग उभरेगी तथा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सॉफ्टवेयर कंपनियां इस दिशा में कदम उठायेंगी।

हम सभी पर्सनल कंप्यूटर (पीसी) का प्रयोग पत्र व्यवहार, लेखन कार्य व मुद्रण के लिए वर्ड प्रोसेसर या डीटीपी सॉफ्टवेयर से करते हैं। डॉस या विंडो आधारित वर्ड प्रासेसर तथा डीटीपी सॉफ्टवेयर लगभग सभी भारतीय भाषाओं के लिए आसानी से उपलब्ध हैं। विंडो आधारित सॉफ्टवेयर में कुछ सीमा तक भारतीय भाषाओं में आंकड़ों के संकलन की क्षमता भी है। इसकी सहायता से ऐसे प्रोग्रामों की संरचना की जा सकती है जिसमें आंकड़ों का आदान प्रदान किसी भी भाषा में हो सकता है।

इस दिशा में पहला चरण था - सभी भाषाओं के लिए कुंजी पटल का मानकीकरण एवं उनकी वर्णमाला के लिए आइएससी- II कूट मानकों का निर्धारण करना। पिछले दो दशकों में किये गये प्रयासों के कारण सभी भारतीय भाषाओं के लिए कूट मानक उपलब्ध हैं। इस कार्य में जिस्ट प्रौद्योगिकी की प्रमुख भूमिका रही है। पिछले दशक में 'सी-डेक' पुणे द्वारा विकसित इस तकनीक से रोमन लिपि के साथ-साथ हिंदी व अन्य भाषाओं में इनपुट-आउटपुट की सुविधा (जिस्ट कार्ड के प्रयोग से) उपलब्ध है। ऐसी सुविधा आजकल के विंडो आधारित सॉफ्टवेयर में आसानी से उपलब्ध है चूंकि विंडो के विकास का आधार ही बहुभाषी है। जिस्ट कार्ड का उपयोग विंडो आधारित सॉफ्टवेयर में नहीं किया जा सकता है, जबकि डॉस तथा यूनिक्स आधारित सॉफ्टवेयर में यह सरलता से किया जा सकता है। छोटे बच्चों के लिए प्रोग्रामन भाषा 'आकांक्षा' - जिसमें हिंदी में निर्देश दिये जाते हैं निर्माणाधीन है। अब तक के इन प्रयासों से भारतीय भाषाओं में इनपुट-आउटपुट की सुविधा तो कंप्यूटर प्रोग्रामन में उपलब्ध हो गयी है। कंप्यूटर का प्रयोग एवं प्रोग्रामन फिर भी अंग्रेजी भाषा में लिखे गये सॉफ्टवेयर के बिना असंभव है। अर्थात अंग्रेजी ज्ञान के बिना व्यक्ति कंप्यूटर का प्रयोग पूरी तरह नहीं कर सकता।

देश में पर्सनल कंप्यूटर का प्रयोग तीव्र गति से बढ़े, इसके लिए आवश्यक है कि जैसे ही हम कंप्यूटर चलायें

उसकी स्क्रीन पर सब जानकारी हमारी अपनी भाषा में ही हो। कंप्यूटरों से बातचीत - अर्थात डॉस अथवा विंडो के निर्देश सभी हिंदी में हों। यदि हम 'अक्षर' वर्ड प्रॉसेसर का प्रयोग एक लेख लिखने के लिए कर रहे हों तो उसके लिए स्क्रीन पर समादेश तथा अन्य विवरण भी हिंदी में हों। इस प्रकार के सॉफ्टवेयर द्वारा अंग्रेजी से अनजान व्यक्ति भी कंप्यूटर द्वारा अपनी भाषा में लेख लिख्र सकता हैं। इसी प्रकार अन्य उपयोगी सॉफ्टवेयर के भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होने से पीसी का प्रयोग बढ़ेगा।

भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक कदम हैं :-

(1) हिंदी में डॉस व विंडो के समादेशों के प्रयोग की सुविधा।

(2) हिंदी में प्रोग्रामन भाषाओं का विकास जिससे - हिंदी में बेसिक, सी, पास्कल तथा डीबेस प्रोग्रामों की रचना की जा सके।

(3) प्रोग्रामन भाषाओं पर हिंदी में पाठ्य सामग्री बहुतायत से उपलब्ध हो तथा सरल कंप्यूटर शब्दावली का समुचित विकास।

(4) भारतीय गृह उद्योगों व व्यापार संबंधी सॉफ्टवेयर का विकास (मल्टी मीडिया तकनीक पर आधारित)।

जीवन यापन की भाषा, अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी का हमारे देश में महत्वपूर्ण स्थान है। कंप्यूटर क्षेत्र में विकास गति बनाये रखने के लिए हमें अंग्रेजी भाषा में लिखे सॉफ्टवेयर को भी प्रयोग में लाना होगा। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए एक यांत्रिक अनुवादक के सॉफ्टवेयर पर कार्य प्रारंभ किया गया है। इस अनुवादक प्रोग्राम की सहायता से बेसिक, सी व पास्कल किसी भी भाषा में हिंदी में प्रोग्रामन किया जा सकता है। यह अनुवादक प्रोग्राम स्कूल के बच्चों को ध्यान में रख किया गया है जो कंप्यूटर प्रोग्रामन हिंदी में आसानी से सीख सकते हैं। यह अनुवादक प्रोग्राम एक उपयोगी सतह की भांति कार्य करता है - जिसके द्वारा हिंदी में लिखे समादेशों को तुल्य अंग्रेजी समादेशों में परिवर्तित कर देता है। तत्पश्चात प्रचलित कंपाइलर द्वारा इसको निष्पादित किया जा सकता है। इस दर्शन के दो लाभ हैं ;

(i) भारतीय भाषाओं में सॉफ्टवेयर लिखने की सुविधा कम परिश्रम में प्राप्त होना, तथा

(ii) प्रचलित सॉफ्टवेयर के समरुप होने से भारतीय भाषाओं का प्रयोग अधिक सरल एवं भविष्य में आवश्यकतानुसार अंग्रेजी में भी कार्य करने की क्षमता।

किसी भी प्रोग्रामन भाषा में सर्वप्रथम उसकी शब्दावली आती हैं अर्थात - मानक शब्द, फलन नाम तथा परिभाषित चर व अचर के नाम। बेसिक, सी तथा पास्कल - प्रत्येक प्रोग्रामन भाषा के लिए द्विभाषी शब्दकोश का विकास हो जिसमें शब्दों का चयन सभी भारतीय भाषाओं के आधार पर हो व जहां तक हो सके सभी भाषाओं में एक से हों। इस कार्य के लिए कंप्यूटर संबंधित कार्यकर्ताओं, भाषाविदों, पत्रिकाओं व उच्चस्तरीय संस्थानों के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता है। इस ज्ञानकोश/शब्दकोश की संरचना बहुत महत्वपूर्ण है चूंकि भारतीय भाषाओं में सॉफ्टवेयर का विकास इसी पर निर्भर करेगा।

मल्टीमीडिया आज के युग की एक और उभरती विधि है, जिसका प्रयोग शिक्षा, सिनेमा और विज्ञापन के क्षेत्र में तेजी से फैल रहा है। शिक्षाविदों के अनुसार मल्टीमीडिया के आगमन से शिक्षा क्षेत्र में क्रांति आ रही है। आजकल टीवी पर भी शिक्षण के कार्यक्रम देखने को मिलते हैं। पर यह सुविधा महानगरों के विद्यार्थियों पर केंद्रित है व अंग्रेजी भाषा में ही उपलब्ध है। इसी प्रकार अन्य शिक्षाप्रद 'सीडी-रॉम' कृतियां भी अंग्रेजी में ही उपलब्ध हैं। यहां तक की भारतीय संस्कृति पर बनी एवं भारत में ही निर्मित सीडी रॉम 'करिश्मा' भी अंग्रेजी भाषा में है। यह सब इसलिए है कि भारतीय भाषाओं में कार्य करने के लिए सॉफ्टवेयर के विकास की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरणतया इन सभी कार्यों के लिए हमें कंप्यूटर में अपनी भाषा में निवेश कुंजी पटल से ही देना पड़ता है जबकि अंग्रेजी, चीनी अथवा जापानी भाषाओं में लिखित पुस्तकों को स्कैनर व सहायक सॉफ्टवेयर की सहायता से सीधे कंप्यूटर में डाला जा

*(कृपया शेष पृष्ठ - 59 पर देखें)*

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता (1995) प्रोत्साहन पुस्कार प्राप्त (अहिंदी भाषी)

# आधुनिक विज्ञान प्रगति में कंप्यूटर के उपयोग

**जी. विजय कुमारी**
IC4933 T/6,
MSD/SDL, IGCAR,
कल्पाक्कम - 248 008

**औद्योगिक विकास ने पिछले 3 शतकों में विश्व को शनैः शनैः समीप ला खड़ा किया है। वर्तमान सदी में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने तो शायद एक क्रांति सी ला दी है। उस पर कंप्यूटर ने तो आग में घी का कार्य किया है। आज विश्व का विस्तार इतना संकीर्ण हो गया है कि विश्व, विश्व न रह कर एक परिवार का घर आंगन सा हो गया है। पहले विज्ञान के कारण कंप्यूटर और अब कंप्यूटर से विज्ञान प्रगति के असीमित द्वार खुले हैं।**

पिछली तीन शताब्दियों में किसी न किसी नयी प्रौद्योगिकी का प्रभुत्व रहा है। अठारहवीं सदी में यांत्रिक प्रौद्यागिकी का पदार्पण हुआ जिसके फलस्वरूप औद्योगिक क्रांति का अभ्युदय हुआ। उन्नीसवीं सदी को भाप के इंजन की सदी का नाम दिया जाता है और बीसवीं सदी में सूचना एकत्रित कर, उसे प्रस्तुत करने योग्य बनाकर वितरित करने के काम को प्रमुखता दी गयी। परिणाम स्वरूप विश्वभर में टेलीफोन के जाल बिछ गये। रेडियो और टेलिविजन का आविष्कार हुआ और साथ ही कंप्यूटर उपयोग का जन्म और अप्रतिम रूप से उसमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई। विश्व के किसी भी स्थान से प्राप्त सूचना आज क्षण मात्र में रेडियो, टीवी एवं नेटवर्क के द्वारा कंप्यूटर से प्राप्त की जा सकती है।

उदाहरणार्थ पुराने समय में मकान बनाने के प्रायोगिक स्तर पर चल रहे परीक्षण को लें। प्राप्त आंकड़ों को कागज पर बड़े-बड़े गणितीय समीकरणों की सहायता से हल करने में भूमि व आस-पास के भवनों के बनने से होनेवाले प्रभाव को एक प्रतिकृति (मॉडल) के आधार पर जिसे बनाने और उसके उपरांत अन्य कारकों को उस पर लागू करने आदि जैसे कामों में समय और विशेषता दोनों की उपलब्धता अनिवार्य होती है।

आज कंप्यूटर के प्रयोग से कंप्यूटर ससहाय अभिकल्पन (CAD) एवं संबंधित भूगर्भीय आंकड़ों के विश्लेषण से लंबे-लंबे समीकरणों को चुटकी बजाकर छोटा-सा प्रोग्राम लिख और चंद बटनों को दबाकर हल करके पूरे मकान की प्रति कृति बनाना, उसको बनाये रखना और हर तरह से हर कोण से उसकी जांच करना आदि बड़ी ही सुगमता से पूरा कर लिया जाता है।

**कंप्यूटर की उपयोगिता :**

प्रक्रम अनुरूपण (सिस्टम सिम्युलेशन) कंप्यूटर की एक पूर्णतया विकसित शाखा है। किसी भी वस्तु के निर्माण अथवा घटना को घटने से पहले ही उसके स्वरूप की विवेचना करना प्रक्रम अनुरूपण कहलाता है। वास्तव में अनुरूपण अथवा अनुकरण किसी भी समस्या को हल करने की वह सशक्त तकनीक है जो किसी भी जटिल प्रक्रम को पहले गणितीय समीकरणों में परिवर्तित करके और कंप्यूटर की सहायता से हल करके इसे चित्रित (CAD) करके इसके बहुमुखी आयामों को स्पष्ट करती है। मूलतः इस शाखा के आंरभिक वर्षों अर्थात इस शताब्दी के पचासवें दशक के उत्तरार्ध में उन समस्याओं के निराकरण में जिनमें विश्लेषात्मक समीकरणों की रचना एवं उनका हल एक कठिन कार्य होता था परंतु समय के साथ-साथ कंप्यूटर ने जिस तेजी से अपनी कार्यक्षमता के क्षेत्र का प्रसार किया उसी गति से इस शाखा विशेष का प्रयोग हर छोटी बड़ी प्रणाली के अनुकरण अथवा अनुरूपण में होने लगा। इस प्रणाली

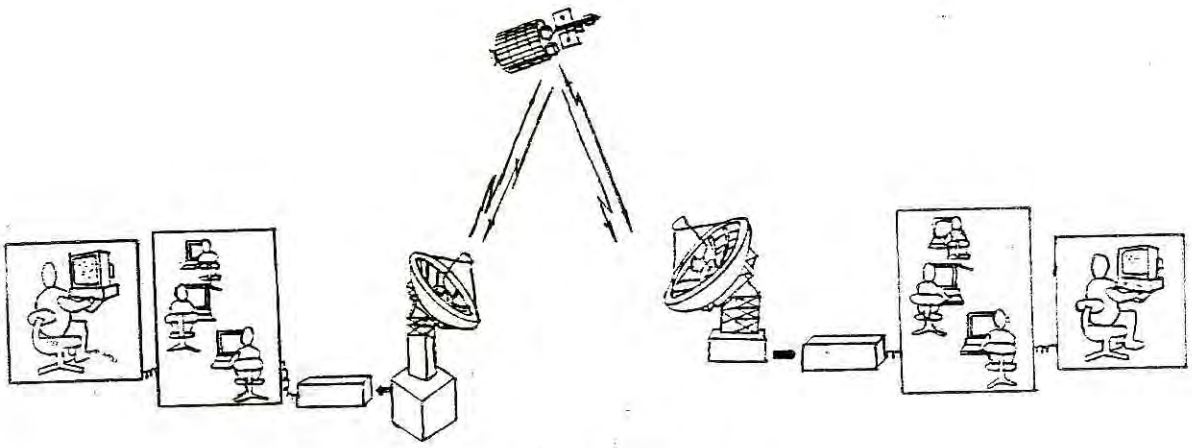

चित्र-1. संचार माध्यम द्वारा डिजिटल कम्प्यूटरों का जालक्रम

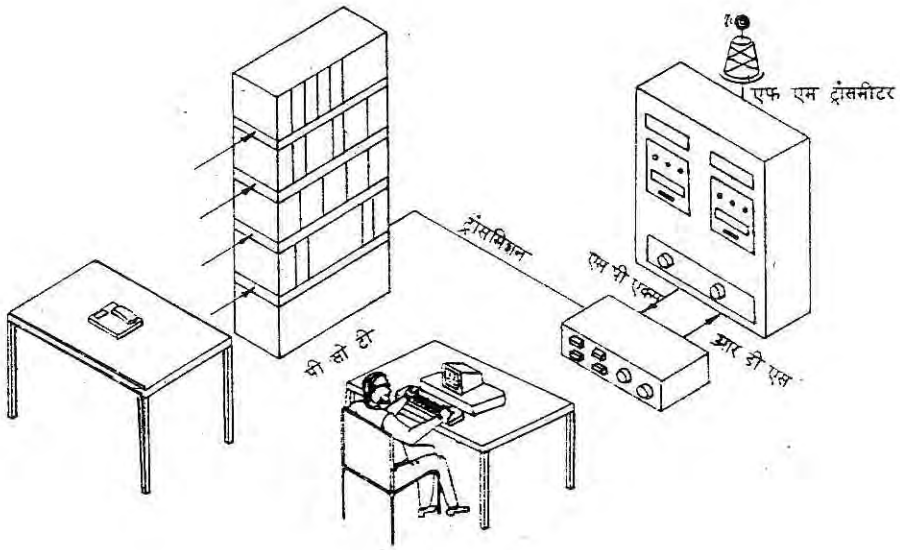


चित्र-2. कम्प्यूटर युक्त संचार व्यवस्था

के विकास के साथ-साथ अत्यंत क्लिष्ट गणितीय गणनाओं के लिए अंकीय विश्लेषण नामक गणितीय उपशाखा का विकास हुआ जिसकी सहायता से बड़ी सुगमता से बड़े समीकरणों विशेषकर कलन समीकरणों को आसानी से हल किया जाता है।

सतत प्रक्रम अनुरूपण के लिए मिमिक, मिडास मोबस्सल नामक भाषाओं को प्रयोग में लाया गया। मिडास जिसका जन्म 1963 में अमेरिका के पेनसिल्वेनिया स्टेट में हुआ, अपने आरंभिक वर्षों में पर्याप्त रूप से लोकप्रिय रही। सतत घटना प्रक्रम को कंप्यूटर की सहायता से हल कर पाने की इस भाषा के पीछे जिस सफलता का हाथ था वह इस भाषा की सरल सरंचना थी।

**बहुमाध्यम प्रणाली (मल्टी मीडिया) :**

यह कंप्यूटर स्क्रीन पर एक साथ दृश्याकृतियों, ध्वनि फिल्म तथा शब्दों का एकीकरण और संयोजन ही है जहां प्रिंटमीडिया, श्रव्यमीडिया, फिल्ममीडिया तथा कंप्यूटर ग्राफिक्स एकाकार हो जाते हैं।

हाल में संसार में धूम मचानेवाली फिल्मों 'जुरासिक पार्क' और 'अलादीन' में इस तकनीक का प्रयोग किया गया था। भविष्य में डॉक्टर अपने क्लीनिक में बैठे-बैठे ही मरीज के तापमान तथा रक्त दाब के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगा। दवाइओं का नुस्खा कंप्यूटर के माध्यम से मरीज को मिल सकेगा, अन्य जरूरी हिदायतों के साथ सर्जन अपने मरीज की रिपोर्ट का अध्ययन करके कंप्यूटर स्क्रीन पर ट्यूमर तक पहुंचने के सबसे निरापद मार्ग की योजना बना सकेंगे जिससे ऊतकों को कम से कम क्षति हो। इसी तरह वकील, एकाउटेन्ट, डिपार्टमेन्टल स्टोर, लाइब्रेरी और थियेटर आदि में भी बहुमाध्यम प्रणाली का उपयोग होने लगा है।

बहुमाध्यम प्रणाली दो प्रकार की होती हैं, (i) प्रतिक्रियात्मक तथा (ii) अप्रतिक्रियात्मक। अप्रतिक्रियात्मक प्रकार में प्रयोक्ता केवल दर्शक और श्रोता रहता है तथा कंप्यूटर या एल सी डी स्क्रीन पर दिखाये जाने वाले दृश्य की ग्राफिक्स तस्वीर, आवाज और शब्दों के माध्यम से देखता तथा महसूस करता है।

दूसरी तरफ प्रतिक्रियात्मक मल्टीमीडिया पद्धति में कंप्यूटर भाषा के द्विचर कूट संकेतों से द्वितरफा संपर्क होने के कारण व्यक्तिगत प्रयोग के लिए यह विशेषकर उपयुक्त है। इस पद्धति में प्रयोक्ता इसका चुनाव कर सकता है कि वह क्या देखना या जानना चाहता है तथा मन चाहे विषय पर परिवर्तन व विषयांतर कर सकता है। इस इष्टतम चुनाव प्रक्रिया को 'नेविगेशन' कहते हैं।

बहुमाध्यम प्रणाली में जिन अलग-अलग माध्यमों का एकीकरण किया जाता है उनमें से प्रतिकृति अथवा ग्राफिक्स का स्थान पहला है। इसके भंडारण के लिए रैस्टर और वैक्टर दो पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। रैस्टर पद्धति में अनेक बिंदुओं से तस्वीर बनती है। मुख्य रंगों तथा चमक के लिए अलग-अलग बिंदु होते हैं। इन बिंदुओं का नाम पिक्सल है। जो सॉफ्टवेयर पैकेज रैस्टर इमेजिंग पद्धति का प्रयोग करते हैं उन्हें पेंटिंग पैकेज कहा जाता है। इस प्रणाली में कंप्यूटर स्मृति (मेमोरी) का काफी अधिक भाग ग्राफिक्स के भंडार के लिए प्रयुक्त हो जाता है। इसके विपरीत वेक्टर पद्धति में प्रतिकृति को गणितीय सूत्रों के रूप में भंडारित किया जाता है। इनके सॉफ्टवेयर पैकेज को ड्रा-पैकेज कहा जाता है। इस पद्धति में बिना उनका आनुपातिक आकार बिगाड़े तस्वीरों को छोटा या बड़ा किया जा सकता है। क्योंकि इसमें गणितीय सूत्रों का प्रयोग होता है। अतः इस प्रणाली में ग्राफिक्स के भंडारण के लिए कम स्मृति का प्रयोग होता है, अतः यह अधिक किफायती है। पेजमेकर जैसे सॉफ्टवेयर दोनों प्रणालियों का एक साथ प्रयोग करते हैं। ग्राफिक्स फाइलों को अनेक आरूपों से भंडारित किया जाता है। जिनमें टिफ, बी. एम. पी., डी. आई. वी. तथा टी. जी. ए. प्रमुख हैं। इनमें टी जी ए सबसे अधिक लोकप्रिय और कारगर है। इसमें 24 बिट जैसी उच्च विभेदन वाली तस्वीरों का भंडारण किया जा सकता है। नेटवर्क में इन तस्वीरों को एक टर्मिनल से दूसरे टर्मिनल तक पहुंचाने के लिए इतनी अधिक भंडारण क्षमता की आवश्यकता है कि इसके लिए चित्र संपीडन (कंप्रेशन) पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इच्छित टर्मिनल पर इसे (विसंपीडित) करके वही तस्वीर दोबारा प्राप्त हो जाती है। ऐसा अंकीयकरण पद्धति के विकास के कारण संभव हुआ है।

बहुमाध्यम प्रणाली के माध्यमों में 'ध्वनि' दूसरा माध्यम है। ध्वनि भंडारण के लिए तीन फाइल प्रारूपों का प्रयोग किया जाता है। पहले प्रकार में इसे तारंगिक रूप में भंडारित किया जाता है। इसे वेव के नाम से जाना जाता है। तीसरी पद्धति में रेडबुक ध्वनि है जिसमें अंकीयकृत स्टीरियो ध्वनि का प्रयोग होता है। इसकी रिकॉर्डिंग अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार की जाती है।

बहुमाध्यम प्रणाली का तीसरा घटक वीडियो है। परंतु यहां कंप्यूटर स्क्रीन पर वीडियो देख पाने की बात रोमांच पैदा करती है। 640 मेगाबाइट क्षमता की एक सी. डी. से हम केवल तीस सेकंड तक आनंद ले पायेंगे। इस समस्या से निपटने के लिए विसंपीडन प्रणाली को विकसित किया जाता है। दो प्रकार की पद्धियां प्रचलित हैं। प्रथम है एम. पी. ई. जी. (मोशन पिक्चर एक्सपर्ट्स ग्रुप) तथा दूसरे को जे. पी. ई. जी. है (ज्वाइंट फोटोग्राफिक एक्सपर्ट्स ग्रुप) कहते हैं। प्रथम पद्धति में एक तस्वीर फ्रेम से दूसरे फ्रेम के बीच के फर्क को दर्ज किया जाता है। जटिल प्रतीक गणित के प्रयोग द्वारा तस्वीरों में पायी जानेवाली सांक्षी परिणामत: अनावश्यक आधार सामग्री को पिक्सल ब्लॉक के रूप में भंडारित किया जाता है। आडियो-वीडियो इंटरलिंक में एक दूसरे के तुरंत बाद दृश्य तथा श्रव्य दोनों प्रकार के संकेतों को भंडारित किया जाता है।

इस प्रकार पेजर, वाकी-टाकी और सेलुलर टेलीफोन का विकास हुआ है।

**पेजर क्या है ?** - यह एक तरफा संदेश प्राप्त करने वाला एक बेतार उपकरण है। टेलीफोन की तरह पेजर का भी एक निश्चित कोड नंबर होता है। अगर इस विशेष कोड के लिए कोई संदेश होता है तो पेजर अपनी स्क्रीन पर एकदम से संदेश को छाप देता है। इसके लिए बटन खुला (ऑन) रखना पड़ता है।

पेजर के संदेश दो तरह से दिये जा सकते हैं। एक आंकिक (न्यूमेरिक) और दूसरा वर्ण आंकिक (अल्फा न्यूमेरिक)। आंकिक संदेश में केवल संख्या या अंक पेजर की स्क्रीन पर प्रदर्शित होते हैं। जैसे 224 इस संख्या से पेजर वाले को पता है कि 224 का मतलब है ऑफिस में शीघ्र संपर्क करें।

अल्फा न्यूमेरिक संदेश में अंग्रेजी के छोटे-छोटे वाक्य पेजर पर्दे पर छप जाते हैं। जैसे "फैक्ट्री में आग" या "बॉस से बातें करें" इत्यादि।

**रेडियो डाटा पेजिंग सर्विस :** यह सेवा आकाशवाणी के एफ. एम. ( FM) ट्रांसमीटरों के द्वारा चुने हुए शहरों में इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड के सहयोग से उपलब्ध करायी जा रही है। एफ. एम. ट्रांसमीटर की आवृति प्रसार की कुल क्षमता 75 किलोहर्ट्ज होती है। इसमें से केवल 53 किलोहर्ट्ज ही प्रयोग में आ पाती है। इस बेकार 22 किलोहर्ट्ज को उपयोग में लाने के लिए इसे सबकैरियर की तरह रेडियो डाटा पेजिंग सर्विस के लिए प्रयोग किया जाता है। ये डाटा सर्विस रेडियो सेट में जा रही आवाज में कोई बाधा नहीं डालती। रेडियो पेजिंग सेवा प्रक्रिया में संदेश प्रसारित होने की क्षमता उस जगह के एफ. एम. ट्रांसमीटर की शक्ति पर निर्भर करती है यानी तीन किलोवाट के ट्रांसमीटर से तीस किलोमीटर, पांच किलोवाट के ट्रांसमीटर से चालीस और दस किलोवाट के ट्रांसमीटर से 50 किलोमीटर तक संदेश प्रसारित किये जा सकते हैं।

अगर आपको अपने ऑफिस को संदेश देना है तो पेजिंग ऑपरेटर को फोन करना पड़ता है। वह ऑफिस का कोड नंबर पूछेगा और फिर उस नंबर के कंट्रोल टर्मिनल (पी. सी. टी.) में फोन कर देगा। पी. सी. टी. से या तो केबल द्वारा या उपग्रह द्वारा या किसी अन्य माध्यम से आर. डी. एस. एनकोडर में संदेश पहुंचेगा। आर डी एस एन्कोडर इसे एफ. एम. ट्रांसमीटर में डाल देता है। जहां से यह संबंधित पेजर में डाल दिया जाता है। फिर पेजर "बीप" बजाकर पेजर रखने वाले को सतर्क कर देता है, यदि किसी वक्त किन्हीं कारणों से संदेश पढ़ना संभव नहीं है तो मेमोरी में डाल देता है। इस प्रणाली में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि कुछ विशेष किस्म के टेलीफोन या कंप्यूटर टर्मिनल हों तो ऑपरेटर की सहायता के बिना भी सीधे संदेश पेजर पर दिया जा सकता है।

**सेलुलर टेलीफोन (सेलुलर मोबाइल रेडियो) :**

इनमें हरेक इलाके का अपना एक अलग ट्रांसमीटर होता है। उपभोक्ता द्वारा एक विशेष प्रकार के एंटेना लगे रिसीवर का बटन दबाते ही उसका संपर्क अपने क्षेत्र (इलाके) के ट्रांसमीटर से हो जाता है। जहां बेस-स्टेशन पर कंप्यूटर नियंत्रित प्रणाली द्वारा उसे इच्छित नंबर से रेडियो तरंगों के माध्यम से जोड़ा जाता है। यह प्रक्रिया स्वचालित होती है। यह वी. एच. एफ. (VHF) तरंगों द्वारा अति उन्नत स्विचिंग पद्धति के माध्यम से होता है। एक ही समय में एक ही आवृति पर अनेक लोग वार्तालाप कर सकते हैं। सेलुलर मोबाइल टेलिफोन पद्धति का प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो नगर में 1978 में किया गया। फेडरल संचार समिति द्वारा मार्च 1982 में इसके नियम तथा उपनियम बनाकर चैनलों का आबंटन किया गया। इसका व्यावहारिक प्रयोग 13 अक्तूबर 1983 से शिकागो नगर व उसके उपनगरों में किया गया। 6200 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 17 सेल (क्षेत्र) हैं। जिनका उपयोग करीब एक लाख उपभोक्ता करते हैं। अगर हम भविष्य में इन तकनीकी संभावनाओं का समुचित दोहन कर पाये तो हम सेलुलर टेलिफोन के क्षेत्र में अधिक सस्ते यंत्रों का निर्माण कर सकेंगे। इसके साथ छोटी अधिक शक्तिशाली बैटरियां भी विकसित कर सकें तो वह दिन दूर नहीं जब कैल्कुलेटर की भांति टेलीफोन भी हमारी जेब की शोभा बढ़ायेगा।

यातायात और संचार माध्यमों के विकास का किसी भी देश की उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान होता है। गरीबी से जूझते हुए हमारे देश के लिए संचार क्षेत्र में क्रांति अगली सदी में गरीबी उन्मूलन, उत्पादकता में वृद्धि तथा राष्ट्रीय एकीकरण के क्षेत्र में आश्चर्यजनक संभावनाओं के द्वार खोलती प्रतीत होती है।

❐❐❐

# नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद - सिद्धांत एवं अनुप्रयोग

*(पृष्ठ - 49 का शेषांश)*

जानकारी देने हेतु पाठ्यक्रम संचालित कर समस्त विश्व से लोगों का ध्यान आकर्षित कर रहा है। यहां संक्रमित मस्तिष्क एवं कैंसर रोग में अंतर इस विधि से हो जाता है जिससे असाध्य रोग भी चिकित्सा की परिधि में आ जाते हैं। राष्ट्र में इसके अतिरिक्त और भी कई संस्थान व चिकित्सालय इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं अथवा प्रारंभ करने वाले हैं।

**अन्य संभावित उपयोग :**

❋ उद्योगों एवं प्रयोगशालाओं में पदार्थों के अविनाशी परीक्षण में नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद का प्रयोग होता है क्योंकि इसमें प्रयुक्त चुंबकीय क्षेत्रों से वस्तुओं या पदार्थों में सामान्यत: स्थायी परिवर्तन नहीं आते।

❋ कृषि संबंधी अनुसंधान में किसी वनस्पति में विशेष यौगिक की उपस्थिति की मात्रा का पता लगाने में यह विधि अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

❋ नाभिकीय संलयन, विखंडन, उत्सर्जन एवं प्लाज्मा विज्ञान में अत्यंत उच्च ताप पर परीक्षण करना होता है जिसके कारण परंपरागत मापन विधियां अक्षम सिद्ध होती हैं। परंतु नाभिकीय चुंबकीय अनुनाद में चुंबकीय क्षेत्रों की सहायता से यह कार्य संपन्न किया जा सकता है।

❐❐❐

अखिल भारतीय हिंदी विज्ञान लेख्र प्रतियोगिता (1995) प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त (अहिंदी भाषी)

# परखनली शिशु : विज्ञान की अनोखी देन

**हरेश्वर प्रभाकर मोरे**
प्रगत ईंधन संविरचना सुविधा,
भा. प. अ. केंद्र तारापुर, पो.-घिवली
महाराष्ट्र - 401 502

स्कंद पुराण में एक कथा इस प्रकार आती है : *"कहा जाता है कि भगवान शिव ने देव-दानव युद्ध में त्रिपुरासुर के बच्चे की हत्या की थी। इस घटना से त्रिपुरासुर अत्यंत क्रोधित हुआ और देवों के विनाश करने के लिए युद्ध की तैयारी करने लगा। जब यह बात देवताओं को मालूम हुई तो वे सोच में पड़ गये। अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भगवान शिव के पुत्र से ही त्रिपुरासुर की मृत्यु होगी। इसलिए सारे देवों ने मिलकर शिव-पार्वती विवाह संपन्न कराया। जब काफी समय तक शिव-पार्वती को पुत्र प्राप्ति नहीं हुई तब देवों ने शिवजी के तृतीय नेत्र में निवास करने वाली अग्नि को शिव-पार्वती की जांच के लिए भेज दिया। अग्नि भिक्षुक का रूप धारण कर शिव-पार्वती के द्वार पर गयी। शिव ने उसे वीर्य दान में दिया। इतना तेज वीर्य अग्नि संभाल न सकी और उसने उसे पी लिया। उसके बाद अग्नि को गर्भ ठहर गया। इस शर्म से वह इधर-उधर भटकने लगी। एक दिन कृत्रिका आकाश गंगा के तट पर नहा रही ती तो अग्नि ने समय देखते अपना गर्भ उसके पेट में डाल दिया। यह अनहोनी बात देखकर कृत्रिका घबरा गयी और उसने गर्भ त्याग कर दिया। उसके बाद उस गर्भ से कार्तिकेय ने जन्म लिया।"* आज के युग में यह कथा परखनली शिशु या टेस्ट ट्यूब बेबी की तकनीक से कितनी मिलती-जुलती है।

यह तथ्य तो आज स्पष्ट है कि पुत्र या पुत्री का निर्धारण स्वयं स्त्री पर निर्भर नहीं रहता है। स्त्रियों के तेईस (23) गुणसूत्र की जोड़ियों मे से एक-एक X (एक्स) की जोड़ उसके बीजांड में प्रवेश करती है। पुरुषों के शुक्राणुओं में X(एक्स) और Y(वाय) गुणसूत्र होते हैं। X धारण करने वाले डिंबाणु से अगर Y धारण करने वाले शुक्राणु का मिलन हो तो पुत्र और यदि X धारण करने वाले शुक्राणु का मिलन हो तो पुत्री का जन्म होता है।

नैसर्गिक गर्भाधान में शुक्राणु का डिंबाणु से मिलन गर्भाशय में होता है जबकि कृत्रिम गर्भाधान में यह मिलन एक परखनली में कराया जाता है। परखनली में उचित परिस्थितियों मे निषेचित (फलित) डिंब को उसी स्त्री (जिसका डिंबाणु) अथवा दूसरी स्त्री के गर्भाशय में डाल दिया जाता है। यही परखनली शिशु कहलाता है।

कृत्रिम गर्भाधान के लिए आर्टीफिशियल इन्सेमिनेशन बाइ हजबैंड (AIH), आर्टीफिशियल इन्सेमिनेशन बाई डोनर (AID), इन-विट्रो फर्टिलाइजेशन (IVF), गैमट इन-विट्रो फर्टिलाइजेशन ट्रांसफर (GIFT), जाइगोट इन्ट्राफैलोपियन ट्रांसफर (ZIFT) जैसी पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। ***(इन तकनीकों के बारे में कुछ जानकारी "वैज्ञानिक" के अप्रैल-सितंबर, 1995 अंक में प्रकाशित हो चुकी हैं। अतः यहां पर दोबारा नहीं दी जा रही है।)***

जन्म से ही स्त्रियों में, अंडाशय में असंख्य डिंबाणु रहते हैं। प्रजनन काल में मासिक स्राव के दौरान एक डिंबाणु परिपक्व होकर अंडाशय से बाहर निकलता है। मुक्त स्थिति में तैरता हुआ यह डिंब गर्भनलिका द्वारा गर्भाशय में पहुंचता है। जहां उचित परिस्थितियों में फलन होने की संभावना रहती है। फलित डिंबाणु गर्भ में पलने लगता है अन्यथा मासिक स्राव के साथ बाद में बाहर

निकल जाता है। डिंबाणु का फलन और उसका गर्भाशय तक का सफर मानवीय मस्तिष्क के हाइपोथैमस भाग की पिट्यूटरी ग्रंथि के अग्रभाग में पैदा होने वाले हारमोन्स और अंडाशय में पैदा होने वाले हारमोन्स द्वारा नियंत्रित होता है। अंडाशय अगर छोटा हो तो वह प्रजनन के लिए असमर्थ होता है। उचित आमाप का अंडाशय भी कभी-कभी रजोनिवृति की समान्य कालावधि से पहले बंद हो जाता है। इसे अकालीय निवृति (प्रिमैच्यारे ओवरिएन फेल्योर) कहते हैं। अंडाशय का कार्य रुक जाने से स्त्री को अपत्य नहीं होता है। कभी-कभी स्त्रियों की गर्भनलिका में होने वाले सूक्ष्मजीवों के संक्रमण से अपत्य में रुकावट पैदा हो जाती है। इन संक्रमणों (ट्यूबरक्लॉसिस, गोनोरिया, एंजोमेटोओसिस इत्यादि) से गर्भनाल को काफी क्षति पहुंचती है। स्त्रियों में गर्भाशय के छोटे होने, या गर्भाशय के बीच में पर्दा होने अथवा दो अलग-अलग गर्भाशय होने के कारण नैसर्गिक गर्भाधान में व्यवधान आता है। फायब्राइडस एक और गर्भाशय संबंधित दोष है जिसमें गर्भाशय में सूजन होती है। एडिनोमॉयोसिस में गर्भाशय अपेक्षाकृत बहुत बड़ा हो जाता है जिसके कारण भी गर्भधारण नहीं हो पाता है। इंग्लैंड में 1978 में 'लूसी ब्राउन' नामक पहली परखनली बालिका के बारे में तो हमें पता ही है। भारत में 1986 में मुंबई के प्रसिद्ध केई एम (KEM) अस्पताल में भी परखनली शिशु हर्षा ने जन्म लिया। यह बच्ची मणीबेन चावड़ा के गर्भ में विकसित की गयी। यहां इस तकनीक में डॉ. इंदिरा आहूजा ने सफलता हासिल की। इस पद्धति से अब तक कई सौ बच्चों ने जन्म लिया है। कृत्रिम गर्भाधान की पद्धतियां आज इतनी अधिक विकसित हो चुकी हैं कि ये संतानहीन दंपतियों के लिए वरदान स्वरूप कही जा सकती हैं।

**( लेख में दिये गये मूल तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भाषा एवं प्रस्तुतीकरण में संशोधन किया गया है। - सं.)**

❐❐❐

# कंप्यूटर व भारतीय भाषाएं

*(पृष्ठ - 52 का शेषांश)*

सकता है। ऐसी सुविधाओं से सीडी-रॉम कृतियां बनाने में बहुत सहायता मिलती है। पिछले कई दशकों से हमारे यहां उच्चस्तरीय संस्थानों में भारतीय भाषाओं में और कंप्यूटर क्षेत्र में शोध कार्य चल रहा है। अब समय आ गया है जब ये शोधकर्ता अपनी सामाजिक जिम्मेदारी को समझें एवं जनता के लिए भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर की सुविधा प्रदान करें।

हर गांव व कस्बे में पंचायत या जिला परिषद के कार्यालय के लिए ऐसे कंप्यूटर व सॉफ्टवेयर की रचना की जाये जिससे आम व्यक्ति आवश्यक जानकारी - जमीन जायदाद, कृषि उत्पाद, चिकित्सा, रोग, कानून संबंधी इत्यादि जानकारी जो भी उसे सरकारी कार्यालयों से चाहिए उसे उसकी अपनी भाषा में मिल सके। इस प्रकार के विकास की सहायता से ही - भारतीय भाषाएं जीवन यापन की भाषा बनकर अपने पांव पर खड़ी हो सकेंगी अन्यथा कंप्यूटर युग में सिर्फ साहित्य की भाषा रह कर पंगु बनी रहेंगी। भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर पर काम करने के जनता के सपनों को साकार करने के लिए, केंद्रीय व प्रादेशिक प्रशासनिक संस्थाओं को मिल कर योजनाबद्ध तरीके से इस दिशा में कार्य करना होगा।

❐❐❐

# अपघटन : प्रकृति की एक अनूठी प्रणाली

**डॉ. अ. ब. भट्ट**
उपाचार्य,
वनस्पति विज्ञान विभाग, हे. न. ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, गढ़वाल - 246174

**जन्म, भरण-पोषण और अंत में मृत्यु – यह सभी जीवधारियों की नियति है। मृत्यु के पश्चात् धराशायी वनस्पतियों, पेड़-पौधों और जानवरों का शरीर किस प्रकार धीरे-धीरे पंचभूतों में विलीन हो जाता है ? शरीर के विभिन्न घटक वातावरण के विविध कारकों तथा सूक्ष्मजीवों द्वारा किस प्रकार विघटित हो जाते हैं ? अपघटन क्रिया का अध्ययन किस प्रकार किया जाता है ? – आदि की जानकारी दी गयी है इस लेख में।**

अपघटन एक ऐसी प्राकृतिक प्रक्रिया है जो आदिकाल से अनवरत चल रही है, एवं जो दर्शनीय सुंदरता का मूल है। अपघटन (Decomposition) एक ऐसी क्रिया अथवा प्रणाली है, जो प्रत्येक जीव को मृत्योपरांत अनेक सरल अवयवों में विघटित अथवा खंडित कर देती है। सड़ना भी अपघटन प्रक्रिया है।

प्रकृति के इस अनूठे संसार में प्रत्येक जीव की जीवन अवधि निश्चित है। प्रत्येक प्राणी अपने जीवनकाल में अपने समुदाय के अन्य सदस्यों, अन्य जीव जंतुओं एवं पर्यावरण को अपनी गतिविधियों व जैविक क्रियाओं द्वारा प्रभावित करता है व उनसे स्वयं भी प्रभावित होता है। मृत्योपरांत यह अपने मूल घटकों में विखंडित होकर भी पर्यावरण को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ, एक पौधे के इस नश्वर संसार में जन्म लेने से पूर्व बीजों के अंकुरण को मौसम, ताप, नमी आदि कारक प्रभावित करते हैं। उपयुक्त मिट्टी एवं अनुकूल मौसम का साथ पाकर बीज अंकुरित होकर नवजात पौधा बन जाता है। अपनी वृद्धि हेतु यह शिशु पौधा भूमि से जल एवं विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों का अवशोषण करता है साथ ही अपनी पत्तियों द्वारा प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, उत्स्वेदन आदि अनेक जैविक क्रियाएं भी करता है, जो सभी वायुमंडल (पर्यावरण का एक घटक) से संबंधित हैं। अपनी पूरी जीवन अवधि में पौधा नयी पत्तियों, शाखाओं, फल, बीज आदि का निर्माण करता है साथ ही पुरानी पत्तियों एवं शाखाओं को गिरा देता है। निश्चित काल अवधि के पश्चात पौधा स्वयं भी मृत हो जाता है। इसी प्रकार अन्य जीव-जंतु भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ये मृत जीव किसी स्थान पर सदैव के लिए एकत्रित नहीं होते, वरन् कालावधि में पर्यावरणीय कारकों की उपस्थिति में सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित होकर पुनः पंचतत्व में विलीन हो जाते हैं। जीव जंतुओं, उनके पर्यावरण एवं मृत्योपरांत मिट्टी में मिल जाने की प्रक्रिया चित्र-1 में दर्शायी गयी है।

इस नश्वर संसार में जीव जंतुओं का आना जाना एक सतत प्रक्रिया है। जन्म के पश्चात समस्त प्राणि वर्ग प्रकृति की मूल्यवान धरोहरों यथा तत्वों एवं पदार्थों का उपभोग करके अपनी अभिवृद्धि करते हैं तथा एक निश्चित वय के पश्चात मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उनके शरीर में एकत्रित सभी पदार्थ सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित किये जाते हैं व पुनः सभी तत्व व गैस मुक्त हो कर वायुमंडल में विलीन हो जाते हैं तथा अन्य प्राणियों के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। यह चक्रीय प्रक्रिया है एवं प्राकृतिक संतुलन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों के पारस्परिक संबंध को चित्र-2 में दर्शाया गया है।

इस चक्र में हम देखते हैं कि पर्यावरण समान रूप से वनस्पति, जीव-जंतुओं एवं सूक्ष्म जीवियों की क्रिया-शीलता को प्रभावित एवं नियंत्रित करता है व स्वयं

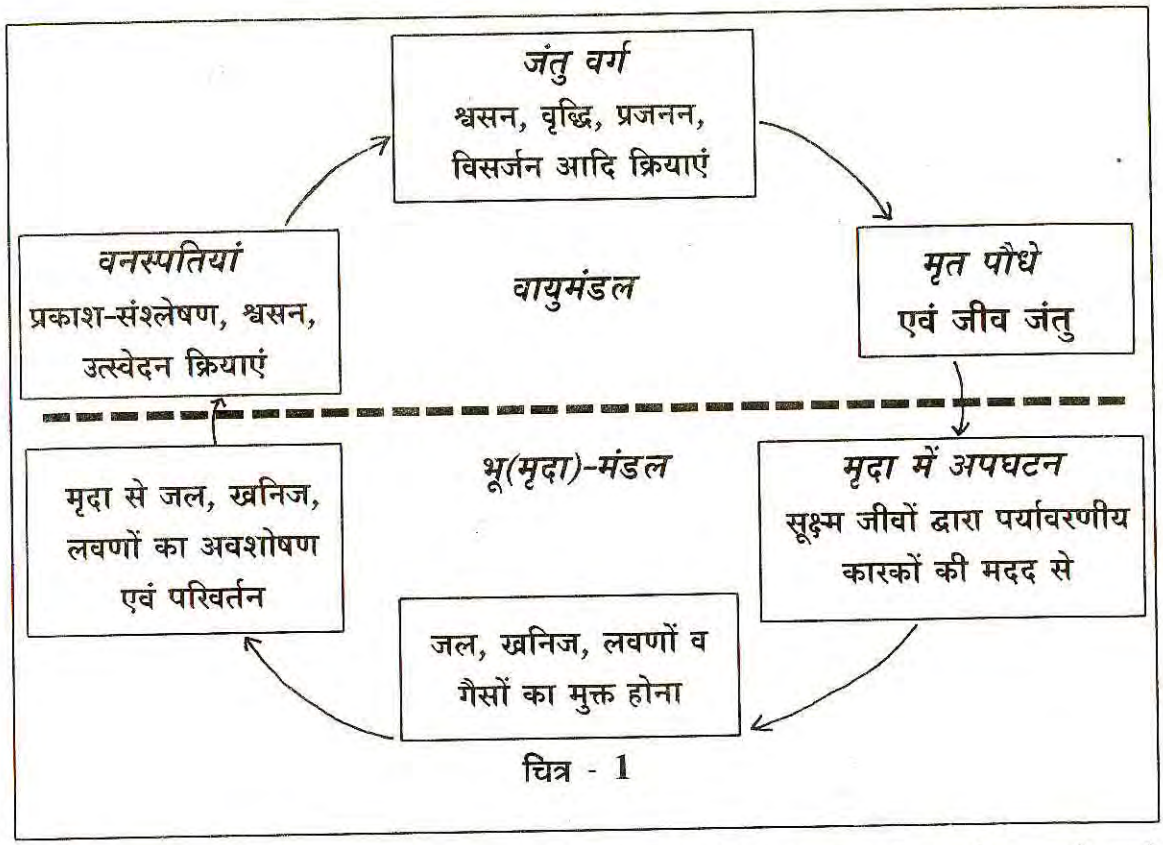


चित्र - 1

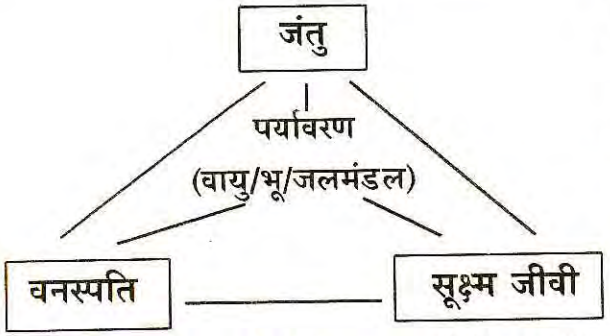


चित्र-2 : पर्यावरण के विभिन्न घटकों में सहसंबंधन

भी प्रभावित होता है । पर्यावरणीय कारकों में प्रकाश, ताप, नमी एवं वायु महत्वपूर्ण घटक हैं । मृत पौधों एवं जीव जंतुओं को अपघटित करने वाले प्राणियों एवं सूक्ष्म जीवों को ये कारक सर्वाधिक प्रभावित करते हैं जिससे अपघटन की क्रिया शीघ्र अथवा देर से होती है ।

## पादपों में अपघटन को प्रभावित करने वाले कारक :

इनमें अनेकानेक बाह्य एवं आंतरिक पर्यावरणीय कारक हैं । बाह्य कारक यथा तापक्रम एवं नमी तथा अंत:कारकों में अपघटित हो रही पत्तियों, टहनियों और अन्य जीवों की रासायनिक संरचना है ।

मृत वनस्पतियों के अपघटन में तापक्रम सबसे महत्वपूर्ण कारक है । भूमध्य रेखीय वनों में जहां तापक्रम सारे वर्ष भर समान रूप से अत्यधिक होता है, अपघटन की दर 8.2 टन प्रति हैक्टेयर/वर्ष है, जबकि ध्रुवीय एवं टैगा प्रदेशों में अपघटन की दर मात्र 1.2 टन प्रति हैक्टेयर/वर्ष है । उष्ण कटिबंधीय वनों में अत्यधिक अपघटन दर के कारण मृत वनस्पतियों का संचयन नहीं हो पाता ।

तापक्रम की भांति मृदा में उपस्थित नमी एवं जल

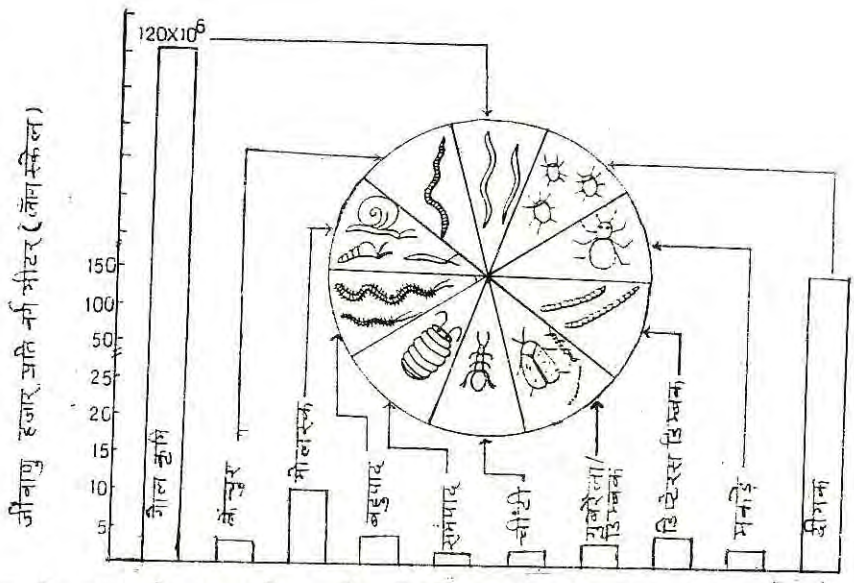


**चित्र-3 : घास से आच्छादित भूमि में जीवाणुओं की प्रति वर्ग मीटर भूमि में संख्या**
*(मैक्फेडाएन से साभार)*

वाष्प भी अपघटन की दर को बढ़ाती हैं। नमी की प्रचुर मात्रा एवं उच्च तापक्रम पर जीवाणुओं की गतिशीलता अत्याधिक होती है तथा अपघटन भी शीघ्र होता है। सामान्यत: अपघटित हो रही मृत वनस्पतियों का पी.एच. अम्लीय होता है। चीड़, देवदार, कैल, थुनेर, सरु आदि वृक्षों की अपघटित पत्तियां अधिक अम्लीय होती हैं, जबकि अन्य पतझड़ वाले वृक्षों का अपघटित कूड़ा-कचरा कम अम्लीय होता है। अपघटन में धीरे-धीरे पेड़ों से गिरी पत्तियों आदि के धातु अवयव यथा कैल्शियम, पोटेशियम, सोडियम, मैग्नीशियम की मात्रा भी उत्तरोत्तर कम होती जाती है। बॉज के वनों में किये गये अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि पांच माह की अवधि में ही धातु अवयवों की मात्रा आधे से भी कम रह जाती है। अपघटित हो रहे कूड़े-कचरे के पी.एच. तथा क्षारीय परिमाण में सह-संबंध होता है। अपघटन प्रक्रिया को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले जीवाणु अधिक अम्लीय माध्यम में अप्रभावी हो जाते हैं।

अपघटित हो रहे पदार्थ जीवाणुओं के लिए ऊर्जा का अपरिमित स्रोत हैं। अपघटन के प्रारंभिक चरण में जल में घुलनशील कार्बनिक पदार्थों का जीवाणुओं द्वारा द्रुतगति से उपयोग होता है जिससे कार्बनिक पदार्थों का ह्रास सर्वप्रथम होता है। इन पदार्थों में शर्करा का उपभोग सर्वाधिक होता है। फलस्वरूप 2-3 माह के अंतराल में ही पेड़ों से गिरी पत्तियों की समस्त शर्करा समाप्त हो जाती है। अन्य कार्बनिक पदार्थ धीरे-धीरे अपघटित होते हैं जो जीवाणुओं को दीर्घकालिक ऊर्जा प्रदान करते हैं। गिरी पत्तियों के कूड़े में उपस्थित नाइट्रोजन की अधिक मात्रा अपघटन प्रक्रिया को तेज करती है। यही कारण है कि फली वाले पौधों के कूड़े-कचरे में अपघटन की प्रक्रिया अन्य 'कूड़े' की अपेक्षा द्रुत होती है। टहनियों, शाखाओं तथा वृक्षों की छाल में नाइट्रोजन अत्यल्प होता है। अत: वे कई वर्षों तक भी अपघटित नहीं हो पाते हैं।

पौधों में कई प्रकार के पॉली हाइड्राक्सी फीनोल होते हैं, जो शुष्क भार के 10-15% तक हो सकते हैं। इनमें से कुछ फीनोल जल की उपस्थिति में टैनिन में परिवर्तित हो जाते हैं और इस प्रकार 'कूड़े' से मृदा में स्थानांतरित हो जाते हैं। टैनिन यौगिक न केवल पत्तियों के कूड़े में होते हैं वरन् कई जीवाणुओं द्वारा संश्लेषित भी

# अपघटन - क्रिया का अध्ययन

*पत्तियों व तृणों के कूड़े के प्रतिदर्श (नमूनों) को एकत्र करना :*

पेड़ पौधों के मृत भाग शाखाएं, पत्तियां, टहनियां जो भूमि पर बिखरे रहते हैं "कूड़ा" बनाते हैं। कालांतर में यह सूक्ष्म जीवियों द्वारा अपघटित हो जाता है। इनमें उपस्थित पोषक तत्व समग्र रुप से मुक्त होकर भूमि में विलीन हो जाते हैं। "कूड़े" के प्रतिदर्श प्रति वर्ग मीटर भूमि से प्रति सप्ताह/पक्ष/माह के आधार पर लिये जाते हैं। इन्हें पॉलीथीन की थैलियों में रख कर प्रयोगशाला में लाकर हवा में सुखा लिया जाता है। इसके भार को ग्राम/माह के रूप में मापा जाता है। 'कूड़े' के अपघटन का अध्ययन किसी भी घास के मैदान, वन, चरागाह, अर्थात वनस्पतियों से आच्छादित किसी भी भूमि पर किया जा सकता है। इस प्रक्रिया के अवलोकनार्थ निम्न अध्ययन किये जाते हैं -

- ⁂ निश्चित समयावधि पर 'कूड़े' के भार में कमी
- ⁂ अपघटन प्रक्रिया में कार्यरत सूक्ष्म जीवियों की पहचान
- ⁂ सूक्ष्म जीवी-श्वसन का मापन
- ⁂ तत्वों एवं गैसों का मुक्त होना

प्रयोग हेतु नाइलोन जाली के थैले उपयुक्त होते हैं। जिसमें छिद्रों का आकार 1 मि.मी. व्यास से कम होता है। प्रत्येक थैली में हवा में सुखाये 'कूड़े' की निश्चित मात्रा (20 ग्राम) रख कर भूमि में 2-5 से.मी. की गहराई पर दबा दिया जाता है। प्रत्येक पक्ष अथवा माह में दो थैलियां निकाल कर, बचे 'कूड़े' का भार मालूम कर लिया जाता है। भार में कमी अपघटित पदार्थ की मात्रा दर्शाती है।

भूमि में अनेक प्रकार के सूक्ष्मजीवी विद्यमान रहते हैं जो मृत पदार्थों (कूड़े) का भक्षण कर अपघटन प्रक्रिया को संपादित करते हैं। इसे ह्यूमीकरण भी कहते हैं। इसमें समस्त 'कूड़े' का आंशिक अपघटन हो जाता है। अपघटन के दूसरे चरण में कुछ अन्य सूक्ष्मजीवी यथा बैक्टीरिया व कवक इन अर्धअपघटित पदार्थों को पूर्ण रुप से अपघटित कर देते हैं जिससे पोषक तत्व तो मुक्त होकर भूमि तंत्र में विलीन हो जाते हैं व गैसें विमुक्त हो जाती हैं।

सूक्ष्मजीवियों के अध्ययन के लिए अलग-अलग रासायनिक वृद्धि माध्यम तैयार किये जाते हैं। सूक्ष्मजीवी की पहचान व इनके परिमाण का निर्धारण माध्यम में ही किया जाता है।

भूमि में उपस्थित सूक्ष्मजीवियों एवं अपघटित पदार्थों में पल रहे सूक्ष्मजीवियों में हो रहे श्वसन का मापन किया जाता है। इसके लिए बेरियम अथवा पोटेशियम हाइड्रोक्साइड विधि उपयुक्त रहती है। सूक्ष्मजीवियों के श्वसन के दौरान निकली कार्बन डाइ ऑक्साइड को उपरोक्त क्षार की निश्चित सांद्रता एवं मात्रा प्रयोग कर अवशोषित किया जाता है। अवशोषित गैस की मात्रा को धनानुपात (टाइट्रेशन) विधि से ज्ञात कर श्वसन की दर मालूम कर लेते हैं। एक-एक माह के अंतराल पर सूक्ष्मजीवी श्वसन को माप लिया जाता है जो अपघटन प्रक्रिया में भाग ले रहे सूक्ष्मजीवियों की क्रियाशीलता का द्योतक है।

किये जाते हैं और अपघटन प्रक्रिया की गति को अवरुद्ध करते हैं। यह भी देखा गया है कि 'कूड़े' के अधिक अम्लीय (पी.एच.3.0) होने की स्थिति में ऐसे टैनिन यौगिकों की सांद्रता बढ़ जाती है। इनका पृथक्कीकरण नहीं होता एवं ये जीवाणुओं की क्रियाशीलता को अत्याधिक दुष्प्रभावित करते हैं।

अपघटन प्रक्रिया के अंतिम चरण में ह्यूमिक पदार्थ जिनमें पॉलीफीनोल होते हैं भी क्रिया को नियंत्रित करते हैं। ह्यूमिक अम्ल जीवाणुओं के प्रोटियोलाइटिक किण्वों (एंजाइम) की क्रियाशीलता

को प्रभावित करता है।

## अपघटन में मृदा जीवाणुओं की क्रियाशीलता को प्रभाक्ति करने वाले कारक :

मृदा की संरचना विभिन्न प्रकार की होती है एवं यह संरचना मिट्टी में उपस्थित जीवाणुओं के प्रसार. विकास, विचरण तथा पेड़ पौधों की जड़ों के विकास को नियंत्रित करती है। भूमि-जल मृदातंत्र का सर्वाधिक उपयोगी अवयव है। वर्षा एवं बाढ़ के द्वारा मृदा जल की मात्रा में न केवल वृद्धि होती है, वरन बाढ़ का पानी अपने साथ कार्बनिक पदार्थ, खनिज तत्व, अघुलनशील पदार्थ एवं विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं को भी लाता है तथा मृदा स्तर में वृद्धि करता है।

मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवियों में गतिशील बैक्टीरिया, चलबीजाणु कवक, प्रोटोजोन्स, गोलकृमि (निमेटोड्स), रोटिफर केवल जलीय परिस्थितियों में ही रहते हैं (चित्र-3 देखें)। मृदा जल इन जीवाणुओं की जैविकीय गतिविधियों एवं क्रियाशीलता को प्रभावित करता है। प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि मृदा जल के स्तर में कमी होने पर गोलकृमियों की क्रियाशीलता अत्यंत मंद पड़ जाती है। इसी तरह बैक्टीरिया और अन्य सूक्ष्म जीवों की क्रियाएं भी निम्नतम स्तर पर पहुंच जाती हैं।

मृदा के वायुमंडल में वाष्प के अलावा ऑक्सीजन, कार्बनडाइ ऑक्साइड व अन्य उपयोगी गैसे हैं। मृदा में वास करने वाले सभी जीवाणुओं के के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है। कार्बन डाइऑक्साइड मृदा के पी. एच. को प्रभावित करती है, इसकी अधिक मात्रा कई सूक्ष्म जीवियों के लिए हानिकारक होती है। जहां मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होती है, वहां अवायवीय सूक्ष्म जीवों की मात्रा अधिकतम होती है।

## विभिन्न वर्ग के पादपों में अपघटन :

विभिन्न पादप वर्गों जैसे जलीय पौधों, शाकीय द्विबीजपत्री, एक बीजपत्री में 'पत्तियों के कूड़े' का अपघटन अलग-अलग ढंग से होता है। अपघटन क्रिया को सक्रिय करने वाले जीवाणुओं में बैक्टीरिया, यीस्ट एवं कवक की कई प्रजातियां प्रमुख हैं। जलीय पौधों, जैसे **लैम्ना माइनर** तथा अन्य दलदली पौधों की सड़ती पत्तियों एवं शाखाओं में काइट्रिड कवक को पहचाना गया है। इसी प्रकार मटर की पत्तियों की सतह यीस्ट प्रजातियों के लिए अनुकूल पायी गयी है। यीस्ट मुख्य रूप से क्यूटिन, पेक्टिन एवं पेप्टोन को विघटित करती है। अन्य अपघटित होते तृणों एवं पत्तियों की सतह पर सूत्रीय कवकों यथा **आल्टरनेरिया. एपिकोक्कम, बोट्राइटिस, सौरडोरिया, क्लेडोस्पोरियम, सिफैलो स्पोरियम, थिलेविया** आदि कवक पाये जाते हैं। **ट्राइपोलियम** और **लोलियम** की पत्तियों और तृण व गिरी पत्तियों पर **आल्टरनेरिया, फ्यूसेरियम, राइजोपस, म्यूकर, क्लेडोस्पोरियम** जैसे कवकों की बहुलता देखी गयी है।

अपघटन क्रिया में बैक्टीरिया भी भाग लेते हैं। सड़ती पत्तियों में मुख्य रूप से **कोकाइ, लैक्टोबैसिलाइ, पीडियोकोकस** आदि बैक्टीरिया की प्रजातियां पायी जाती हैं। नमी, तापक्रम एवं प्रकाश की मात्रा के बढ़ने के साथ ही बैक्टीरिया की इन प्रजातियों में अभिवृद्धि होती है। यदि पादपों में पेक्टिन एवं पेप्टोन प्रचुर मात्रा में उपस्थित हों तो बैक्टीरिया अधिक तेजी से पनपते हैं जबकि सेलुलोज एवं माल्ट में इनकी अभिवृद्धि कम होती है।

प्रयोगों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि मृत तृणों, पत्तियों, शाखाओं को यदि जल में डूबा रहने दिया जाय तो कवकों की संख्या घट जाती है, जबकि बैक्टीरिया अत्यधिक बढ़ जाते हैं। पपीते के टुकड़ों को 20 सप्ताह तक पानी के अंदर रख कर अपघटन का अध्ययन किया गया एवं यह पाया गया कि समय के साथ कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात कम होता गया जबकि हयूमिक अम्ल तथा हयूमिन का परिमाण बढ़ा। इसी प्रकार फाल्विक अम्लों की मात्रा भी उत्तरोतर कम होती चली गयी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रकृति की अनेक क्रियाओं में अपघटन महत्वपूर्ण है। यह क्रिया प्राकृतिक चक्र को पूर्ण करती है तथा प्राकृतिक अवयवों में संतुलन बनाये रखती है। अपघटन प्रणाली ही नवजात एवं वृद्धिरत पौधों में पोषक तत्वों की उपलब्धता को सुनिश्चित करती है। यह किसी भी स्थान पर मृत जीवों को एकत्रित नहीं होने देती और इस प्रकार प्रकृति की सुंदरता बनाये रखने में अपना योगदान देती है।

❑❑❑

# एरोमैटिक निष्कर्षण प्रौद्योगिकी : एक संक्षिप्त विवेचन

**भगत राम नौटियाल, गुरूप्रसाद एवं**
**डॉ. बचन सिंह रावत**
भारतीय पेट्रोलियम संस्थान, देहरादून - 248 005

**एरोमैटिक यौगिकों की पूर्ति के लिए विलायक निष्कर्षण तकनीकी के विकास का कार्य भारतीय पेट्रोलियम संस्थान व इंजीनियर्स इंडिया लिमिटेड ने संयुक्त रूप से अपने हाथ में इसलिए लिया ताकि अपने ही देश में इस तकनीकी का संपूर्ण विकास करके विदेशी मुद्रा बचाई जा सके। इन प्रयासों का संक्षेप में इस लेख में उल्लेख किया गया है।**

विभिन्न पेट्रोलियम अंश जैसे नैफ्था, मिट्टी का तेल व गैस आयल में एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन भिन्न-भिन्न सांद्रता में उपस्थित रहते हैं। यह मात्रा कच्चे तेल के स्रोत पर निर्भर करती है। अवयवों का अनुपात भी भिन्न-भिन्न होता है। पेट्रोलियम (अंशों) धाराओं में एरोमैटिक यदि उत्पाद में इच्छित सीमा से अधिक हो तब इन अंशों के शोधन की आवश्यकता होती है ताकि इच्छित उत्पाद की गुणवत्ता स्थापित / अनुरक्षित की जा सके। खाद्य तेलों जैसे वनस्पति तेलों के (बीजों से) निष्कर्षण में हेक्ज़ेन का उपयोग होता है और इसे खाद्य श्रेणी हेक्ज़ेन के नाम से जाना जाता है। भारतीय मानक ब्यूरो के अनुसार इसमें अधिकतम 1% एरोमैटिक उपस्थित रह सकते हैं। जब कि किसी भी कच्चे तेल से प्राप्त होने वाले हेक्ज़ेन अंश में बेन्ज़ीन की मात्रा 1% से अधिक ही होती है, अतः खाद्य श्रेणी हेक्ज़ेन के उत्पादन के लिए पेट्रोलियम से प्राप्त होने वाले हेक्ज़ेन अंश को शोधित किया जा सकता है।

## पेट्रो-रसायनों में बेन्ज़ीन का महत्व :

इसी प्रकार बेन्ज़ीन, टॉल्यून, ज़ाइलीन (B.T.X.) भी पेट्रोलियम अंश से प्राप्त किये जा सकते हैं। विशुद्ध बेन्ज़ीन और टॉल्यून (एरोमैटिक), प्लास्टिक, संश्लेषित रेशों, डिटरजेंट (सर्फ, डेट आदि), रबर, दवाइयों एवं कार्बनिक मध्यवर्तियों जैसे नायलोन, केपरोलेक्टम, फिनॉल, एसीटोन, स्टायरीन, लीनियर अल्काइल बेन्ज़ीन (लैब) आदि के निर्माण हेतु एक मूल्यवान संभरण भंडार(फीड स्टॉक) है। संसार में बेन्ज़ीन की मांग 5% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ती जा रही है। भारत में ही आज लगभग 3,75,000 मी. टन प्रतिवर्ष बेन्ज़ीन की खपत है और यह इस शताब्दी के अंत तक लगभग 8,50,000 मी.टन प्रतिवर्ष बढ़ जाने की संभावना है।

## प्रौद्योगिकी आरंभ एवं उद्देश्य :

एरोमैटिक यौगिकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए 1970 में इस संस्थान में विलायक निष्कर्षण प्रौद्योगिकी का कार्य इस उद्देश्य से लिया गया ताकि ये प्रौद्योगिकियां अपने देश में ही विकसित हो सकें। इस कार्य को संपूर्ण प्रौद्योगिकी के रूप में विकसित करने के लिए ही भारतीय पेट्रोलियम संस्थान व इंजीनियर्स इंडिया लिमिटेड दिल्ली ने संयुक्त रूप से कार्य किया।

विलायक निष्कर्षक तकनीकी का उपयोग एरोमैटिक एवं एलीफैटिक हाइड्रोकार्बनों को एक दूसरे से पृथक करने के लिए किया गया है। क्योंकि इस मिश्रण में इन दो प्रमुख अवयवों का क्वथनांक लगभग एक सा रहता है, अतः आसवन आदि विधियों से ऐसे मिश्रण के अवयव पृथक करना अत्यंत कठिन है। एरोमैटिक निष्कर्षण प्रौद्योगिकी को विकसित करने में भा. पे. सं. देहरादून और इं. आई. एल. नयी दिल्ली को लगभग दस वर्ष का समय लग गया।

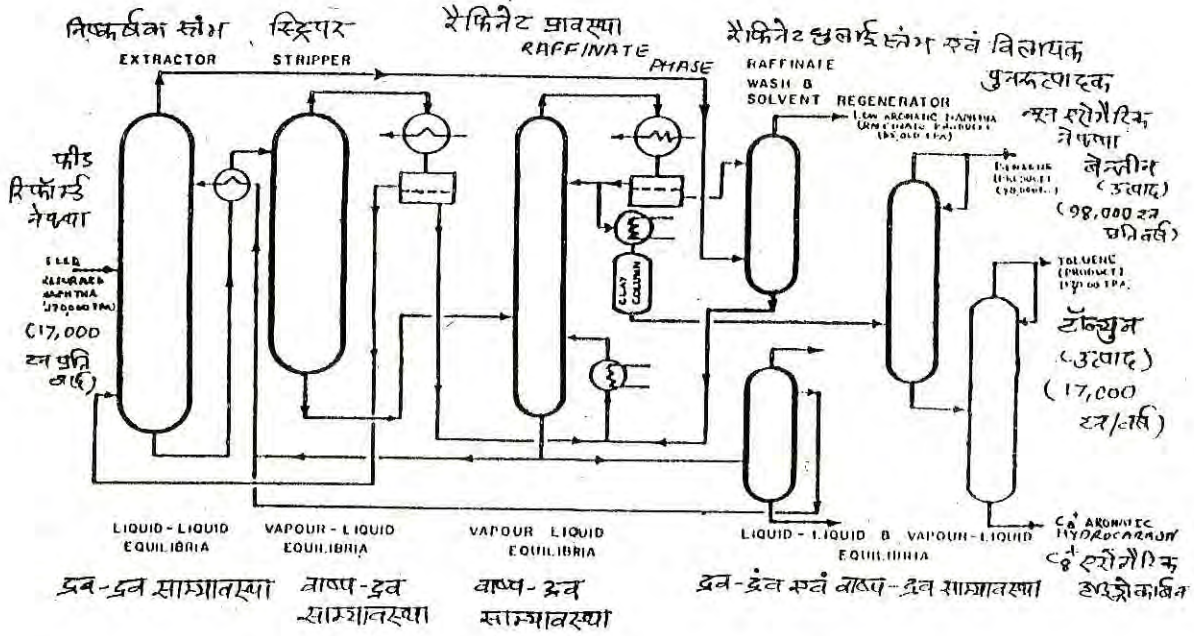


*चित्र - 1 : एरोमैटिक निष्कर्षण प्रक्रम : एक चित्रित विन्यास*

## एरोमैटिक निष्कर्षण प्रक्रम :

जैसा कि चित्र-1 से स्पष्ट है, संभरण कॉलम (एक्ट्रेक्शन कॉलम) के मध्य भाग में प्रवेश करते हुए फीड उर्ध्व दिशा (ऊपर की ओर) में प्रवाहित होता है तथा विलायक (निष्कर्षक) के ऊपरी भाग में प्रवेश पा कर नीचे की ओर विस्तरित (डिस्पर्स) होता है। अत: फीड और विलायक निष्कर्षी कॉलम के विभिन्न बिंदुओं पर प्रवेश पाते हुए, विपरीत दिशाओं में प्रवाहित होते हुए एक दूसरे के संपर्क में आते हैं और इस प्रकार एरोमैटिक निष्कर्षण प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। कॉलम में होने वाली यह प्रक्रिया प्रतिवाह निष्कर्षण (काउंटर करन्ट एक्सट्रैक्शन) कहलाती है। समसाम्यवस्था की स्थिति में इच्छित उत्पादों को अन्य कॉलमों से प्रवाहित किया जाता है और अंतत: अलग-अलग एकत्रित कर लिया जाता है। निष्कर्षण कॉलम के निम्न छोर से प्राप्त द्रव को निष्कर्ष प्रावस्था कहते हैं। इसमें विलायक की अधिकता होती है और अधिकांश एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन घुले होते हैं। निष्कर्षण कॉलम के ऊपरी हिस्से (शीर्ष) से निकले तरल को रैफिनेट प्रावस्था कहते हैं।

निष्कर्ष प्रावस्था व रैफिनेट प्रावस्था को नियमानुसार विभिन्न कॉलमों में प्रवाहित कर उन्हें शोधित किया जाता हैं।

## इच्छित उत्पाद

इच्छित उत्पाद दो प्रकार के हो सकते हैं :-

(क) शुद्ध बेन्ज़ीन, टॉल्यूनज व ज़ाइलीन (B.T.X.): इन्हें निष्कर्ष से प्राप्त किया जाता है। इस प्रक्रम का मुख्य उद्देश्य नाइट्रेशन (ग्रेड) योग्य बेन्ज़ीन का उत्पादन है। अत: इस प्रक्रम का विन्यास इस प्रकार रखा जाता है ताकि अधिक से अधिक व शुद्धतम निष्कर्षित हाइड्रोकार्बन प्राप्त हो सकें। इस प्रक्रम को एरोमैटिक निष्कर्षण प्रक्रम कहेंगे। इस प्रक्रम पर आधारित दो बृहत उद्योग, भारत पेट्रोलियम निगम (BPCL) (मुंबई) व कोचीन रिफाइनरी लि. (कोचीन) में कार्यरत हैं (तालिका-1)।

**तालिका - 1 : एरोमैटिक निष्कर्षण प्रौद्योगिकी पर आधारित इकाइयां**

| इकाइयां | उत्पादन | (मीट्रिक टन प्रति वर्ष) |
|---|---|---|
| **व्यापारिक** | | |
| भा. पे. कॉ, मुंबई | बेन्ज़ीन | 98,000 |
| B. P. C. L. (1985) | टॉल्यून | 18,000 |
| सी आर एल, कोचीन | बेन्ज़ीन | 87,000 |
| (1989) | टॉल्यून | 20,000 |
| **प्रस्तावित** | | |
| एरोकेम, मद्रास | | 36,000 |
| नोसिल, मुंबई | बेन्ज़ीन | 70,000 |
| एरोमैटिक कॉम्पलेक्स | टॉल्यून | 20,000 |
| सलीमपुर, उ. प्र. | | 30,000 |
| हाल्दिया पेट्रोकेमिकल्स लि. | बेन्ज़ीन | 32,000 |
| | न्यून एरोमैटिक नैफ्था | 64,000 |

*आयात में कटौती के सापेक्ष उत्पाद मूल्य एवं विदेशी मुद्रा बचत (200 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष से अधिक)। खाद्य श्रेणी हेक्ज़ेन का देशज प्रौद्योगिकी द्वारा उत्पादन समतुल्य मूल्य (30 करोड़ रुपये से भी अधिक) इसमें सम्मिलित नहीं है।*

(ख) न्यून एरोमैटिक नैफ्था :- इसका उपयोग उर्वरक उद्योग, पेट्रोरसायन उद्योगों में होता है। यह उत्पाद रैफिनेट प्रावस्था को जल द्वारा शोधित करने से प्राप्त होता है। जिससे थोड़ी मात्रा में उपस्थित विलायक पानी में घुलकर अलग हो जाता है। अतः इस उत्पादक के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है :

(i) अधिक से अधिक रैफिनेट प्रावस्था प्राप्त हो सकें, इस प्रकार से ही प्रक्रम को विन्यास दिया जाता है तथा

(ii) इस प्रक्रम में मृत्तिका कॉलम की आवश्यकता नहीं रहती।

नैफ्था विएरोमैटिकरण (एरोमैटिक न्यूनीकरण) प्रक्रम पर आधारित दो बृहत उत्पादन इकाइयां (जो कि "खाद्य श्रेणी हेक्ज़ेन" – उत्पादन इकाई नाम से जानी जाती हैं) उत्पादनरत हैं : भारत पेट्रोलियम निगम (मुंबई) एवं मद्रास रिफाइनरी लिमिटेड (तालिका-1)। ये इकाइयां खाद्य श्रेणी हेक्ज़ेन के उत्पादन में सल्फोलेन नामक विलायक/निष्कर्षक का उपयोग करती हैं।

**प्रौद्योगिकी के प्रयोगशाला में विकास के विभिन्न चरण :**

अभी तक हमने उत्पादन प्रक्रिया के विषय में संक्षिप्त में चर्चा की। थोड़ा-सा इस विषय पर भी प्रकाश डाल लिया जाय कि वे प्रौद्योगिकियां, जिनका कि आज उत्पादन इकाइयों में प्रयोग हो रहा है और जिनसे करोड़ों डॉलर विदेशी मुद्रा की बचत देश की हो रही है (तालिका-1) देश में किस प्रकार विकसित की गयीं ? इसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है।

**(क) विलायक का चुनाव :**

सर्वप्रथम कई विलायकों के गुण-धर्मों का अध्ययन किया गया। कई प्रयोगों द्वारा तथा उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारियों के आधार पर योग्य विलायकों को चुना गया। एक अच्छे विलायक में प्रवरणशीलता (सिलेक्टिविटी) और विलेयता दोनों गुणों का परस्पर अच्छा समन्वय होना आवश्यक है। इसके अलावा, विलायक के क्वथनांक, गलनांक, क्षरणशीलता, घनत्व, आदि गुण धर्म भी विलायक के चुनाव में महत्वपूर्ण हैं।

बहुत से विलायक जैसे ट्राई इथाइलीन ग्लाइकॉल (TIG), इथाईलीन ग्लाइकॉल (टेट्रा), एन मिथाइल पाइरोलिकॉन (NMP) एवं एन फॉरमाइल मारफ़ोलीन (NFS) और सल्फोलेन आदि उपयोग में लाये जा रहे हैं। हमने भी बहुत से विलायकों पर प्रयोग करने के पश्चात सल्फोन, ट्राइथलीन ग्लाइकॉल व एन.एम.पी. को चुना और अपनी ही एरोमैटिक निष्कर्षण प्रौद्योगिकी का विकास संभव हुआ।

**(ख) प्रौद्योगिकी का प्रयोगशाला स्वरूप :**

प्रौद्योगिकी का प्रयोगशाला स्वरूप संक्षिप्त में इस प्रकार से है कि निष्कर्षक और फीड को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में जैसे ताप, फीड के अवयवों के मिश्रण का अनुपात, निष्कर्षक व फीड का अनुपातिक संयोग एवं निष्कर्षक में पानी की मात्रा आदि के विभिन्न संचायक

प्रयोगों को किया जाता है। यदि बेन्ज़ीन-हेक्ज़ेन का मिश्रण फीड के तौर पर लिया जाय तो बेन्ज़ीन की विभिन्न मात्राओं को हेक्ज़ेन की निश्चित मात्रा में मिलाते हुए करीब 6-7 प्रकार के फीड तैयार कर लिये जाते हैं। अब एक कांच के बने उपकरण, जिसे मिक्सर सेटलर कहा जाता है, में फीड और विलायक की निश्चित मात्रा डालकर, विलोडक से एक निश्चित घूर्णन गति व स्थिर ताप पर मिलाया जाता है। एक निश्चित अवधि तक विलोडक से मिलाते रहने के पश्चात विलोडक का घूमना बंद कर देते हैं और प्रावस्थाओं को सेटल होने के लिए छोड़ देते हैं। कुछ समय पश्चात जब प्रावस्थाएं पृथक व स्थिर हो जायें तब प्रावस्थाओं को अलग-अलग कर उनका विश्लेषण किया जाता है। संक्षेप में विश्लेषण विधि इस प्रकार है कि दोनों प्रावस्थाओं, निष्कर्षी प्रावस्था व रैफिनेट प्रावस्थाओं से हाइड्रोकार्बनों को विलायक से मुक्त कर लिया जाता है। तत्पश्चा किसी उचित विधि द्वारा हाइड्रोकार्बन मिश्रण के अवयवों को ज्ञात कर लिया जाता है। अब विलायक व फीड का अनुपात (S/P) समान रखते हुए व ताप स्थिर रखते हुए उपर्युक्त प्रयोग अन्य तैयार किये गये फीडों पर भी दोहराया जाता है।

**(ग) प्रतिधारा निष्कर्षण, अनवरत स्तंभ निष्कर्षण प्रयोग :**

अब अनवरत स्तंभ निष्कर्षण को भी कार्यरूप दिया जाता है। करीब 5 मीटर लंबे व 0.034 मी. व्यास के कांच के कॉलम को किसी पैकिंग (जैसे सेरामिक पदार्थ की बनी इन्टैलौक्स सैडल आदि) से भर दिया जाता है। अब कॉलम में चित्रानुसार ऊपर की ओर से विलायक व निचली ओर से फीड को प्रवाहित किया जाता है। फीड अनवरत प्रावस्था के रूप में अवस्थित हो जाता है और विलायक ऊपर से नीचे फीड की अनवरत प्रावस्था में विस्तारित (डिस्पर्स) होता है। इस प्रकार निष्कर्षण प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। अब समसाम्यवस्था की स्थिति में रैफिनेट व निष्कर्ष प्रावस्था के प्रतिदर्शों को एकत्रित कर लिया जाता है। इन प्रतिदर्शों का विश्लेषण कर इसमें उपस्थित अवयवों को ज्ञात कर लिया जाता है।

**(घ) प्रतिधारा निष्कर्षण का महत्व एवं अनुप्रयोग :**

प्रतिधारा निष्कर्षण कॉलम प्रयोग, व्यापारिक इकाई के निष्कर्षण कॉलम में होने वाली प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रायोगिक प्रक्रिया से प्राप्त आंकड़े पायलट संयंत्र व व्यापारिक इकाई की स्थापना के लिए आवश्यक जानकारी देते हैं।

**(च) विलायक पुनर्जनन प्रक्रिया :**

निष्कर्षण स्तंभ से प्राप्त निष्कर्षी अवयव (एकस्ट्रैक्ट फेज) को ओल्डर शा आसवन कॉलम (30 सैद्धांतिक स्तरीय कॉलम) में विशिष्ट तापक्रम को बनाये रखते हुए प्रवाहित किया जाता है तथा विभिन्न मापांकों (पैरामीटर) को बदलते हुए अनेकों प्रयोग किये जाते हैं। इससे प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग विलायक की पुनः प्राप्ति व हाइड्रोकार्बनों के पृथक्करण के बारे में जानकारी प्राप्त करने तथा संयंत्र के विन्यास को तैयार करने में किया जाता है। इसी प्रकार रैफिनेट का शुद्धिकरण करने के लिए "रैफिनेट धुलाई कॉलम" का प्रयोग किया जाता है। रैफिनेट प्रावस्था में जो थोड़ी मात्रा में विलायक उपस्थित रहता है उसे पानी से साफ करके पृथक कर लिया जाता है। इस प्रकार रैफिनेट हाइड्रोकार्बन शोधित हो जाते हैं।

इस प्रौद्योगिकी का अपने देश में ही विकास देश के लिए और भारतीय पेट्रोलियम संस्थान के लिए अत्यंत गौरव का विषय है। आज इन प्रौद्योगिकियों पर आधारित देश के विभिन्न उत्पाद संयंत्रों में उत्पादन द्वारा आयात में भारी कमी आयी है, जिसके फलस्वरूप देश प्रतिवर्ष 230 करोड़ रुपये से भी अधिक बचत कर पाने में सक्षम है (तालिका-1) अब तक सभी विकसित प्रौद्योगिकियों के लिए भारतीय पेट्रोलियम संस्थान व एसेमैटिक निष्कर्षण समूह को देश के कई सर्वोच्च पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। जिनमें सी एस आई आर तकनीकी पुरस्कार (1990 एवं 1993), प्रौद्योगिकी विकास में निपुणता के लिए उद्योग मंत्रालय द्वारा प्रथम पुरस्कार (1988), राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास परिषद (एन आर डी सी) स्वतंत्रता दिवस पुरस्कार (15 अगस्त, 1987) प्रमुख हैं।

❐❐❐

# 1. हमारा दिल*

**डॉ. आर. डी, लेले**
जसलोक अस्पताल, मुंबई

हृदय या दिल हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण है, यह हमारे बोल-चाल की भाषा में परिलक्षित होता है। हम दिल से लोगों का स्वागत करते हैं। दिल को दिल से राह होती है। दिल खुशी से उछलता है, हंसता है, गाता है, रोता है या दुख में डूबता है। दिल हारता है, जीतता है, टूटता है, बहलता है और दिल से दिल मिलता है। इस प्रकार लेखकों, कवियों और कलाकारों के लिए दिल हर प्रकार की भावनाओं का सागर है। भावनाओं की बात छोड़ें तो हृदय मांसपेशियों से बना एक अत्यंत दक्ष पंप है। 350 ग्राम भार का और मुट्ठी के आकार का यह पंप विलक्षण है। यह सिंपैथेटिक व परासिंपैथेटिक - दो प्रकार की तंत्रिकाओं (nerves) द्वारा मस्तिष्क के सूचना केंद्र से जुड़ा हुआ है जो इसकी क्रियाशीलता को बढ़ाने या घटाने का आदेश देता है। सिंपैथेटिक तत्रिकाएं हृदय गति बढ़ाने व परासिंपैथेटिक इसे घटाने का कार्य करती हैं। विश्राम की अवस्था में हृदय लगभग 6 लिटर प्रति मिनट रक्त पंप करता है। शारीरिक व्यायाम अथवा भावनात्मक आवेग की स्थिति में यह गति 6 से 10 गुना तक बढ़ सकती है। हृदय क्रमश: संकुचन (systole) व शिथिलन (diastole) द्वारा कार्य करता है। संकुचन में रक्त बांयें वेंट्रिकल से महाधमनी (Aorta) के द्वारा फेफड़ों के अतिरिक्त शरीर के अन्य सभी अंगों को भेजा जाता है। फेफड़े दायें वेंट्रिकल से रक्त प्राप्त करते हैं। सामान्य अवस्था में बायां वेंट्रिकल दायें वेंट्रिकल की अपेक्षा 7 गुनी शक्ति से पंप करता है जिससे सभी अंगों को रक्त पहुंचता है। यह रक्त ऊतकों व अंगों को ऑक्सीजन व ग्लूकोज, वसीय अम्ल आदि पोषक पदार्थ देता है तथा उपापचयन के अपशिष्ट पदार्थों को ग्रहण करता है। शिराओं के माध्यम से अशुद्ध रक्त हृदय के दायें एट्रियम से दांयें वेंट्रिकल में पहुंचता है जहां से वह फेफड़ों को भेजा जाता है। फेफड़ों के एल्विओला, रक्त में से कार्बन डाई-आक्साइड खींच लेते हैं तथा लाल रक्त-कोशिकाएं ऑक्सीजन ग्रहण करती हैं जिससे नीला अवकरित हीमोग्लोबिन पुन: लाल ऑक्सीकृत हीमोग्लोबिन में बदल जाता है। शुद्ध रक्त फेफड़ों से बांयें एट्रियम के रास्ते बांयें वेंट्रिकल में आता है और इस प्रकार एक नया चक्र शुरू हो जाता है।

हृदय का यह तालबद्ध संकुचन दांयें एट्रियम में नियमित विद्युत स्पंदन के कारण होता है। यह **पेसमेकर** यदि विद्युत स्पंदन उत्पन्न न करे तो हृदयगति बंद हो जाती है। मस्तिष्क को अप्रत्यावर्ती नुकसान पहुंचता है और निश्चित मृत्यु होती है। आज हम विद्युत स्पंदन उत्पन्न करने के लिए कृत्रिम पेसमेकर लगा सकते हैं। विद्युत धारा का प्रयोग तीव्र अथवा अनियमित हृदय गति (200-600 प्रति मिनट) को नियंत्रित करने में भी किया जाता है।

हृदय-फेफड़ा मशीन रोगी के अपने हृदय और फेफड़े के स्थान पर रक्त की पंपिंग व शुद्धीकरण का कार्य कर सकती है। शल्यचिकित्सा के समय, इस मशीन के कारण, डॉक्टर को बाधाएं हटाने या वाल्व बदलने के लिए कई घंटों का समय मिल जाता है। यह सुविधाएं महंगी हैं और सब जगह उपलब्ध नहीं हैं। बाहरी कार्डियक मालिश व मुंह से मुंह लगाकर सांस देने की क्रियाओं से, रक्त प्रवाह व श्वसन एक घंटे तक जारी रख्रा जा सकता है और इस बीच रोगी को अस्पताल में पहुंचाया जा सकता है। हमें यह प्राण-रक्षक क्रिया अवश्य सीखनी चाहिए।

**'हृदय रोग निदान एवं चिकित्सा' विषय पर 3 अप्रैल 1996 को आयोजित संगोष्ठी पर आधारित*

## हृदय की व्याधियां :

हृदय लगातार कार्य करता है तथा इसकी क्रियाशीलता शरीर की सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप बदलती रहती है। हृदय काफी समर्थ है और क्षतिग्रस्त अवस्था में भी वर्षों तक कार्य कर सकता है। परंतु निम्नलिखित बीमारियां हृदय की दक्षता को काम करके अंततः हृदय गति बंद कर सकती हैं :-

### 1. जन्मजात - दोष

भ्रूण विकास के समय हृदय की संरचना में कुछ दोष हो सकते हैं। गर्भावस्था में अधिक एक्स-रे उद्‌भासन, वायरल संक्रमण तथा कुछ दवाइयों के कारण ऐसा हो सकता है। ऐसे दोषों का उपचार शल्यचिकित्सा में ही है।

### 2. रुमैटिक हृदय-रोग (Rheumatic Heart-Diseases)

इस रोग में बचपन या किशोरावस्था में हृदय के वाल्वों में सूजन आ जाती है। वाल्व छिद्र छोटे हो जाते हैं तथा रक्त पंपिंग में कमी आती है। कभी-कभी वाल्व बंद न होने के कारण रक्त पीछे भी लौटता है। आज वाल्व छिद्रों को ठीक करना अथवा कृत्रिम या जंतुओं के वाल्व लगाना संभव है। हृदय रोगों में यह एक प्रमुख रोग है। गले में होने वाले स्ट्रोप्टोकोकल संक्रमण से हृदय को क्षति पहुंचती है। पेन्सिलिन के प्रयोग से इस संक्रमण को रोककर कुछ हद तक रुमैटिक हृदय रोग की रोकथाम की जा सकती है।

### 3. कोर पल्मोनेल

फेफड़ों की पुरानी बीमारियां, जिनमें से कुछ शैशवावस्था से शुरू होती हैं, फेफड़ों की कैपिलरी रक्त वाहिनियों को प्रभावित करती हैं। रक्त प्रवाह में बाधा के कारण दायें वेंट्रिकल पर बोझ पड़ता है और रक्त की ऑक्सीजन संतृप्तता भी कम होती है। यह बीमारी लगभग एक तिहाई रोगियों में पायी जाती है। धूम्रपान, धूल, धुआं व अन्य रासायनिक प्रदूषकों से बचाव तथा श्वासनिक संक्रमणों के उचित एंटीबायटिक औषधियों द्वारा उपचार से इस बीमारी को रोका जा सकता है।

### 4. उच्च रक्तचाप

सामान्यतः बांयें वेंट्रिकल को महाधमनी में, रक्त पंप करने के लिए निश्चित वाहिका प्रतिरोध (Vascular Resistance) का सामना करना पड़ता है। इस प्रतिरोध के बढ़ने से हृदय को अधिक संकुचन बल लगाना पड़ता है। आम-तौर पर 160/90 मिमी. से अधिक रक्तचाप हानिकारक समझा जाता है। परंतु इन संख्याओं से अधिक महत्वपूर्ण है – उच्च रक्त-चाप द्वारा मस्तिष्क और गुर्दों को पहुंचने वाली क्षति का मूल्यांकन। मस्तिष्क की रक्त वाहिनियों को पहुंचने वाली क्षति का अनुमान आंखों की परीक्षा से लग सकता है। उच्च रक्त-चाप के सभी कारण तो ज्ञात नहीं हैं परंतु कई मामलों में इसका संबंध गुर्दों तथा उनकी रक्त वाहिनियों में क्षति से जोड़ा जा सका है और उन्हें शल्यक्रिया से ठीक किया जा सकता है।

### 5. कोरोनरी एथिरोस्लेरोसिस

यदि कोरोनरी धमनियां जो हृदय की मांसपेशियों को ऑक्सीजन व पोषक तत्वों की आपूर्ति करती हैं, संकुचित होने अथवा थक्के बनने के कारण बाधित हो जाती हैं तो मांसपेशियों को क्षति पहुंचती है। मस्तिष्क को रक्त प्रवाह में इस प्रकार की बाधा आने से लकवा हो सकता है। धमनियों की चिकनी आंतरिक सतह पर पदार्थों के जमाव के कुछ कारण अब ज्ञात हो चुके हैं: गरिष्ठ भोजन, मोटापा, व्यायाम की कमी, उच्च रक्त-चाप, धूम्रपान, मधुमेह और आधुनिक जीवन के भाग-दौड़ संबंधी तनाव आदि। इनमें से कौन सा कारण कितना प्रभावी है, यह कहना मुश्किल है। अनुवांशिक कारण भी इसमें शामिल हो सकते हैं। यह रोग पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में कम पाया जाता है। लिंग अथवा माता पिता का चुनाव तो हमारी क्षमता के बाहर है। अतः इस रोग से बचने के लिए हमें **नियमित व्यायाम, वजन पर नियंत्रण, भोजन में संतृप्त वसा** (घी, मक्खन व मांस आदि) **की कमी, असंतृप्त वसा पदार्थों**, (कॉर्न तेल, सूरजमुखी तेल, चिकन व मछली आदि) **के उपयोग, धूम्रपान से बचाव** आदि उपायों पर ध्यान देना होगा। तनाव से बचने के लिए आधुनिक **चूहा-दौड़** के बजाय

जीवन के प्रति एक **सरल, संतुलित, शांतिपूर्ण** एवं **दार्शनिक** रुख अपनाना होगा ।

**6. पेरिकार्डाइटिस**

टी. बी. अथवा कुछ वायरल संक्रमणों के कारण हृदय के बाहर की थैली में द्रव जमा हो सकते हैं । इस जमाव से या पेरिकार्डियम के मोटा होने के कारण हृदय के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है । इसका उपचार टी. बी. प्रतिरोधक दवाइयों द्वारा तथा शल्यक्रिया द्वारा किया जा सकता है ।

## हृदय-रोग के लक्षण

हृदय रोग के कई लक्षण हैं जिनमें से कुछ कार्डियोवैस्कुलर यंत्र से असंबंधित दिखाई दे सकते हैं । कई मामलों में, किसी विशेष पूर्व लक्षण के अभाव में भी, साधारण जांच में ही रोग का पता लग सकता है । परंतु कुछ लक्षण, अधिकांश रोगियों में पाये जाते हैं । रक्त पंप करने में बाधा आने से, कम रक्त आगे पंप हो पाता है और पीछे रक्त का जमाव होने लगता है ।

जब बांया वेंट्रिकल पंपिंग के दौरान खाली नहीं होता तो फेफड़ों में रक्त का जमाव बढ़ने के कारण रोगी को सांस लेने में तकलीफ होती है जो धीरे-धीरे बढ़ती जाती है । बिस्तर में लेटे रहने पर भी यह तकलीफ जारी रहती है । जब दांया वेंट्रिकल खाली नहीं हो पाता तो गर्दन, यकृत, पेट और आंतों की शिराओं में रक्त जमा होता है जिससे मंदाग्नि (Dyspepsia), भूख में कमी, जी मिचलाना, भोजन के बाद असुविधा, पेट फूलना, टांगों में सूजन आदि लक्षण पैदा होते हैं । मस्तिष्क को कम रक्त मिलने पर बेहोशी, सिरदर्द, चक्कर आना आदि शिकायतें होती हैं । गुर्दों में रक्त की कमी से शरीर में सोडियम की मात्रा बढ़ती है जिससे पूरे शरीर में सूजन आ जाती है ।

छाती में दर्द, हृदय रोग का एक प्रमुख लक्षण है । हृदय की मांसपेशियों के ठीक ढंग से कार्य करने के लिए उन्हें ऑक्सीजन व पोषक तत्वों की आपूर्ति तथा वहां से अपशिष्ट द्रव्यों को हटाना आवश्यक है । यह कार्य हृदय के चारों ओर घूमती हुई दो चक्रीय धमनियों द्वारा होता है । धमनियों के सिकुड़ने के कारण रक्त आपूर्ति कम होती है और अपशिष्ट द्रव्यों का जमाव बढ़ने से रोगी को छाती में तेज दर्द महसूस होता है । उसे लेटिन भाषा में 'एंजाइना पेकटोरिस' कहते हैं । शारीरिक श्रम अथवा मानसिक तनाव की स्थिति में रक्त की मांग बढ़ती है और दर्द शुरु हो सकता है । छाती में दर्द के कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं । केवल दर्द से ही हृदय रोग की पुष्टि नहीं होती है परंतु इसकी उपेक्षा करना खतरनाक हो सकता है ।

## हृदय की जांच

रोगी से लक्षणों के बारे में बातचीत करके चिकित्सक हृदय रोग की उपस्थिति और उसकी गंभीरता का अंदाजा लगाते हैं । फिर रोगी की नाड़ी, रक्तचाप, छाती, हृदय के संकुचन, हृदय तथा फेफड़ों से आती ध्वनि आदि का परीक्षण किया जाता है जिसकी पुष्टि एक्स-रे तथा ई. सी. जी. द्वारा होती है । जांच की आधुनिक विधियों में कैथीटराइजेशन तथा एंजियोग्राफी शामिल हैं । पहली तकनीक में एक खोखली नली को, एक रक्तवाहिनी द्वारा, हृदय में पहुंचा कर विभिन्न भागों में ऑक्सीजन की सांद्रता व दबाव की जांच की जाती है । एंजियोग्राफी में, रक्त में, एक आयोडीन-युक्त डाई प्रविष्ट की जाती है और इसके कारण हृदय तथा रक्तवाहिनियों को एक्स-रे द्वारा टी. वी. पर देखा जाता है । रेडियोएक्टिव ट्रेसरों का उपयोग भी निदान में किया जाता है । उचित निदान होने पर शल्यक्रिया की जा सकती है ।

## उपचार

हृदय की व्याधियों के कारण पंपिंग कार्य का दबाव बढ़ जाता है और हृदय गति रुक सकती है । अतः रोगी के लिए **मानसिक** एवं **शारीरिक आराम** अत्यंत आवश्यक है । इससे हृदय गति कम होती है और दक्षता बढ़ती है । हृदय गति को सामान्य करने तथा संकुचन शक्ति बढ़ाने के लिए कई दवाइयों का उपयोग भी होता है । चूंकि सोडियम के जमाव से शरीर में सूजन होती है, इसलिए रोगी के भोजन में नमक की मात्रा बहुत कम की जाती है तथा दवाइयों के उपयोग से मूत्र द्वारा अधिक नमक

विसर्जित किया जाता है। इस उपचार में श्वासनिक संक्रमण, एनीमिया, उच्च थायराइड क्रियाशीलता तथा रक्तचाप आदि पर भी नियंत्रण रखना आवश्यक है।

## गहन चिकित्सा कक्ष (ICCU)

हार्ट-अटैक या दिल के दौरे के बारे में सबने सुना है। किसी कोरोनरी धमनी में अवरोध के कारण हृदय के किसी भाग की मांसपेशियों को रक्त आपूर्ति बंद होने पर उस भाग की मांसपेशियां निर्जीव हो जाती हैं और वह भाग कार्य करना बंद कर देता है। इसे मायोकार्डियल इनफारक्शन कहते हैं और इसमें रोगी को छाती में तेज दर्द होता है। अवसर मिलने पर, शरीर स्वयं इस क्षति को पूरा करने की कोशिश करता है। तीन से छः हफ्तों में निर्जीव मांसपेशियों के स्थान पर नये ऊतक आ जाते हैं और अवरुद्ध धमनी के स्थान पर रक्त पहुंचाने के नये रास्ते खुल जाते हैं। दूसरा दौरा न पड़ने की स्थिति में हृदय लगभग सामान्य स्थिति में काम करना शुरू कर देता है। परंतु यह छः हफ्तों का समय काफी कठिन होता है और इस समय में कुछ भी हो सकता है। हृदय गति रुक सकती है या असामान्य संकुचन (Fibrillation) के कारण मृत्यु हो सकती है। पहले दो घंटे अत्यंत खतरनाक और 24 - 48 घंटे चिंता के होते हैं। धीरे-धीरे रोगी के जीवन को खतरा कम हो जाता है। ऐसे समय में सर्वोत्तम उपाय यह है कि रोगी को ऐसे उपचार केंद्र में रखा जाय जहां 24 घंटे हृदय गति मॉनीटरन व देखभाल की सुविधा हो। ऐसे केंद्रों में विद्युत झटके देने व डिफिब्रिलेशन की सुविधा भी उपलब्ध होती है। मस्तिष्क को रक्त आपूर्ति बाहरी कार्डियक मालिश व कृत्रिम श्वास के द्वारा जारी रखी जाती है। इन केंद्रों ने बहुत से रोगियों की जान बचाई है। भविष्य में ऐसी 'हृदय सहायता' सुविधाएं भी उपलब्ध होने की आशा है जो अस्थायी रूप से पंपिंग का कार्य ले लेंगी और रोगी के हृदय को आराम करने और ठीक होने का समय मिलेगा।

## शल्य चिकित्सा :

50 वर्ष पहले हृदय की शल्य चिकित्सा संभव नहीं थी। यह विधि देर से तो शुरू हुई लेकिन इसमें बहुत तेजी से प्रगति हुई है। अन्य क्षेत्रों में हुए विकास से ऐसा संभव हो सका है। एंडोट्रेकियल एनेस्थीसिया से, रोगी की छाती को खोलते समय, श्वास क्रिया पर नियंत्रण रखा जा सकता है। एनेस्थीसिया द्वारा रोगी के शरीर के तापमान को 27 सेंटीग्रेड पर रखने से मस्तिष्क व अन्य अंगों की रक्त की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है। हार्ट - लंग मशीन से रोगी के हृदय व फेफड़ों का कार्य ले कर; शल्यचिकित्सक धमनियों के अवरोध दूर करना, वाल्व को ठीक करना या नया वाल्व लगाना आदि कार्य कर सकता है। खुली शल्य चिकित्सा के दौरान हार्ट-लंग मशीन के कार्य के लिए काफी अधिक रक्त चाहिए जो आज ब्लड बैंकों के माध्यम से उपलब्ध है।

इस सब के बावजूद, कुछ रोगियों को ठीक नहीं किया जा सकता। इसलिए हृदय प्रतिरोपण काफी आकर्षक विकल्प है। पशुओं पर हृदय प्रतिरोपण के कई प्रयोग किये गये और 1967 में दक्षिण अफ्रीका के डॉ. क्रिश्चियन बर्नार्ड ने पहली बार मनुष्य में इस प्रकार का आपरेशन किया। इसके लिए उपयुक्त दाता की आवश्यकता सब से प्रमुख समस्या है। शरीर की सुरक्षा

*(कृपया शेष पृष्ठ - 77 पर देखें)*

## विश्व का प्रथम जैविक हृदय प्रत्यारोपण

*डॉ. गणेशकुमार पाठक*
*प्रतिभा प्रकाशन, बलिया (उ. प्र.) - 277 001*

***विश्व के अपनी तरह के पहले एवं अनोखे कृत्रिम हृदय का हाल ही में वार्सा में एक 64 वर्षीय महिला के सीने में प्रत्यारोपण किया गया। इस कृत्रिम हृदय की अनोखी बात यह थी कि यह पशुओं के बजाय मानव के जीवित ऊतकों से निर्मित था एवं पूर्ण रूप से संक्रमण मुक्त था।***

***प्रसिद्ध हृदय शल्य चिकित्सक जैबिग्नियू रेलिजा ने 40 से भी अधिक वैज्ञानिकों के सहयोग से इस कार्य में 8 वर्ष का समय लिया। फिलहाल जिस महिला में यह जैविक हृदय लगाया गया है, वह पूर्णतः स्वस्थ है।***

# 2. कैन्सर के मनोवैज्ञानिक पहलू

**नमिता शर्मा**
श्री कृष्ण डायग्नोस्टिक,
जे. के. कैंसर संस्थान के सामने,
कानपुर - 208 002

**कैन्सर एक ऐसा रोग है जिसका रोगी रोग का भान होते ही, प्रायः मानसिक रूप से तो अपनी मौत से पहले ही मर जाता है। हर समय सोचता है कि बस कुछ दिन और। और इसी के चलते वह चिकित्सक से भी पूर्ण सहयोग नहीं कर पाता है। उसका निदान और भी दूरूह हो जाता है। रोगी की इस स्थिति से रक्षा करने के लिए विज्ञान की एक नयी विधा "कैन्सर - मनोविज्ञान" का विकास एवं स्थापना की गयी है। प्रस्तुत लेख में इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है।**

कैन्सर सिर्फ एक बीमारी न होकर बीमारियों का एक समूह है, जिसमें शरीर के किसी भी हिस्से की कोशिकाएं असामान्य रूप से बढ़ जाती हैं, और बाहरी रूप में भिन्न-भिन्न रूपों में दृष्टिगत होती हैं। उच्चस्तरीय तकनीकी कौशल से, जहां इस समय सत्तर प्रतिशत तक कैन्सर रोगी प्रारंभिक अवस्था में ठीक किये जा सकते हैं, वहीं इस सच्चाई से भी मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि बढ़ी हुई अवस्था के कैन्सर से मरीज को निजात दिलाना चिकित्सकों के लिए अक्सर समस्या का विषय बन जाता है।

सामान्यतः कैन्सर नाम पढ़ने व सुनने भर से जहां आम इंसान भी खौफ से मर उठता है, वहीं जरा उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था का अंदाजा लगाने का प्रयत्न कीजिए जो स्वयं इस रोग का शिकार हो जाता है। 'डेरोगेटिस एवं सहयोगियों' द्वारा 1983 में किये गये एक अध्ययन से यह पता लगा कि अस्पतालों में आये कुल कैन्सर रोगियों में लगभग पचास प्रतिशत रोगी, जहां कैन्सर के साथ सामान्य रूप से तालमेल स्थापित कर लेते हैं, वहीं 50% रोगियों की मानसिक अवस्था रोग की जानकारी मिल जाने के बाद असंतुलित हो जाती है और वे यह सोचने लगते हैं कि बस कुछ गिने चुने दिन और। शायद इन्हीं सब कारणों की वजह से 18 वीं सदी तक समाज व चिकित्सा जगत कैन्सर को एक भयावह, लाइलाज व जानलेवा बीमारी की श्रेणी में रखता था और चिकित्सक दल एवं परिवार के सदस्य अक्सर यही प्रयत्न करते थे कि रोगी इलाज के दौरान अपनी बीमारी की प्रकृति से पूर्णतया अनभिज्ञ रहे। समय के साथ-साथ यह तथ्य प्रकाश में आया कि कैन्सर रोगी से मर्ज छुपाने की प्रवृति ही अक्सर इलाज के दौरान चिकित्सकों के लिए बाधक बनती है क्योंकि मर्ज की प्रकृति से पूर्णतया अनजान रहने की वजह से रोगी मानसिक रूप से चिकित्सकों का सहयोग कर पाने की स्थिति में नहीं होता। इन्हीं सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न अध्ययन किये गये। अमेरिकन कैन्सर सोसायटी एवं कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि बजाय इसके कि कैन्सर रोगी अपने इलाज के दौरान अंधेरे में रहे उसे मालूम हो कि –

– उसका मर्ज क्या है ?
– रोग की उत्पत्ति के कारण ?
– इलाज किस प्रकार होगा ?
– इलाज के प्रति मरीज का मानसिक दृष्टिकोण किस प्रकार का हो ?
– रोगी के प्रति परिवार जन व चिकित्सक दल का रवैया किस प्रकार का होना चाहिए ? आदि आदि ।

कुछ ऐसे भी कदम उठाये जाने चाहिए, जिससे रोग ग्रस्त हो जाने पर मरीज व अन्य लोगों का कैन्सर के प्रति

उपेक्षा, डर एवं आशाहीनता का दृष्टिकोण त्याग कर मानसिक रुप से रोग ठीक करने में चिकित्सक का पूर्ण रुप से सहयोग करें। इन प्रश्नों का हल पाने के लिए ही 'कैन्सर-मनोविज्ञान' विषय विकसित किया गया जो अब भी विकासशील स्थिति में ही है। कैन्सर-मनोविज्ञान के उद्देश्य हैं –

- कैन्सर के प्रति मानवीय दृष्टिकोण विकसित करना।
- रोगी की संवेदनात्मक समस्याओं के प्रकार एवं स्तर का पता लगाना।
- मर्ज के प्रति रोगी का सकारात्मक रुख विकसित कर भ्रांतियों को दूर करना।

सार यह है कि 'कैन्सर-मनोविज्ञान' के अंतर्गत 'कैन्सर मनोवैज्ञानिक' इलाज शुरु होने से पहले व इलाज के दौरान विभिन्न विधियों की सहायता लेकर रोगी का आत्मविश्वास बढ़ाता है और हिम्मत व जिंदादिली के साथ अपना इलाज पूरा करने को अभिप्रेरित करता है और यह बात तो जग जाहिर है कि 'हिम्मते मर्दा तो मददे खुदा'।

कैन्सर रोगी में जांच का परिणाम जान लेने के बाद मुख्यतः चिंता, अवसाद, तनाव, चिड़चिड़ापन, नींद की कमी, असमायोजन, अव्यवस्थित दिनचर्चा आदि विभिन्न प्रकार के मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यही सब असमान्यताएं रोगियों में असहयोगी रवैया एवं पलायनवादी वृत्ति उत्पन्न कर इलाज बीच में ही छोड़ने को बाध्य कर देती हैं और असमय ही मरीज काल के गाल में समा जाता है। 'डैरोगेटिस एवं सहयोगियों' द्वारा 1983 में, 216 रोगियों का अध्ययन करने के पश्चात उनमें मुख्य रुप से निम्न विकार दृष्टिगत हुए :

- असमायोजन संबंधी असामान्यताएं (चिंता एवं अवसाद) - 68%
- अवसाद - 13%
- व्यक्तित्व विकार - 7%
- चिंता - 4%

मुख्यतः 6 प्रकार की मानसिक असामान्यताएं कैन्सर रोगी में उत्पन्न हो जाती हैं, जिन पर क्रम से यहां चर्चा प्रस्तुत की गयी है।

**असमायोजन संबंधी असामान्यताएं** : आम तौर पर कैन्सर हो जाने पर सर्वप्रथम रोगी का समायोजन गड़बड़ा जाता है और उसकी दैनंदिन दिनचर्या अव्यवस्थित हो जाती है। इस अवस्था में रोगी को अपनी दुनिया अंधेरी लगने लगती है और उसका दिमाग शून्य की ओर अग्रसर हो जाता है।

असमायोजित होने का मुख्य कारण रोग से उत्पन्न मानसिक तनाव है। जब कभी समायोजन संबंधी असमान्यताएं उच्चतम स्तर पर दृष्टिगत होती हैं तब अक्सर उक्त असामान्यता के लक्षण लगभग चिंता व अवसाद के समान ही नजर आते हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर मनोवैज्ञानिकों को दूरदृष्टि एवं संयम के साथ लक्षणों का वर्गीकरण करना चाहिए।

असमायोजित असामान्यता के निदान हेतु मनोवैज्ञानिक मनोचिकित्सा, समूह चिकित्सा (रिश्तेदार, पत्नी, चिकित्सक दल आदि), रिलैक्सेशन व्यायाम, सम्मोहन आदि विधियों को प्रयोग में लाते हैं।

**अवसाद** : अवसाद एवं कैन्सर के लक्षण लगभग एक ही समान होते हैं, जैसे – वजन में कमी, नींद उचटना, शारीरिक तकलीफ, कमजोरी आदि। चिकित्सक अक्सर इनको वर्गीकृत कर पाने में परेशानी का सामना करते हैं। इसलिए इन्हीं सब समस्याओं से निजात दिलवाने के लिए रोगी के शारीरिक इलाज के दौरान मनौवैज्ञानिक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

अवसाद के प्रमुख लक्षण हैं निराशा, यौन संबंधों में व्यवधान, मृत्यु की इच्छा, कार्यक्षमता में कमी, बार-बार आंसू आना, सामाजिकता में कमी एवं भविष्य के प्रति अनिश्चितता आदि। विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि अस्पताल में भर्ती कुल कैन्सर रोगियों में से एक चौथाई में अवसाद का स्तर उच्चतम होता है (बकबर्ग, पैनमैन 1884; इवान्स एवं अन्य 1986; प्लंब एवं हॉलैंड 1977)।

1986 में 'हॉलैंड एवं अन्य सहयोगियों' द्वारा किये गये एक महत्वपूर्ण अध्ययन के पश्चात यह पाया गया कि कैन्सर रोगियों में अवसाद उत्पन्न होने के प्रमुख कारण हैं –

– शारीरिक क्षमता में गिरावट,
– दर्द,
– अवसाद का पुराना इतिहास,
– अग्नाशय कैन्सर । – इत्यादि

रोगी का मानसिक विश्लेषण करते समय यह आवश्यक है कि मनोचिकित्सक रोगी के संवेदनात्मक लक्षणों का बारीकी से अध्ययन करें व साथ ही साथ रोगी के पारिवारिक अवसाद का इतिहास, तनाव का स्तर एवं सामाजिक सहयोग का भी अवलोकन करें। जिन मरीजों गयी द्वारा आत्महत्या करने की कोशिश की गयी हो, उन पर चिकित्सा के दौरान सावधानीपूर्वक नजर रखने की आवश्यकता है । अवसाद के निदान हेतु अक्सर मनोचिकित्सा, परामर्श, सांत्वना के साथ-साथ मनौवैज्ञानिक दवाएं व इलेक्ट्रोक-वलसिव थिरैपी लाभप्रद सिद्ध होती है । बच्चों में मनोचिकित्सा से आशाजनक परिणाम न मिलने के बाद ही एंटीडिप्रेसेन्ट दवाओं का इस्तेमाल किया जाना चाहिए ।

**चिंता** : कैन्सर रोगी इलाज के दौरान विभिन्न चिंताओं का शिकार हो जाता है और यह असामान्य स्थिति ऑपरेशन से तुरंत पहले एवं जांचों के परिणाम जानने से पहले उच्चतम स्तर पर होती है । अगर उस समय चिकित्सक दल मुख्य रूप से 'कैन्सर मनोवैज्ञानिक' से मरीज को भावनात्मक रूप से सहारा एवं सांत्वना मिले तो रोगी में आशाजनक रूप से सकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं ।

चिंता कम करने के लिए रिलैक्शेसन व्यायाम, मनोवैज्ञानिक दवाएं एवं मनोचिकित्सा लाभप्रद सिद्ध होती है ।

**आंगिक मानसिक असामान्यताएं** : कैन्सर मनोवैज्ञानिकों के पास उक्त असामान्यताओं से पीड़ित कुल कैन्सर रोगियों का पांचवा हिस्सा परामर्श के लिए आता है । आंगिक मानसिक असामान्यताओं के प्रारंभिक लक्षण लगभग न के बराबर होते हैं । वैसे कुछ प्रमुख लक्षण हैं विद्रोही स्वभाव, व्यवहारिक बदलाव, अहम के उतार-चढ़ाव, ध्यान उचटना आदि ।

शुरुआत में रोगी को परिवार जनों का स्नेह एवं चिकित्सक से भरपूर सुरक्षा का आश्वासन मिलना चाहिए एवं बढ़ी हुई अवस्था में मनोचिकित्सा, मार्गदर्शन आदि के साथ मनोवैज्ञानिक दवाएं भी देनी आवश्यक होती हैं।

**व्यक्तित्व संबंधी असामान्यताएं** : जिन कैन्सर रोगियों का व्यक्तित्व विषम प्रकार का होता है, वे अक्सर कैन्सर के बाद उत्पन्न हो जाने वाले तनाव का सामना करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं । ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उन लोगों का व्यक्तित्व कुंठित एवं असमायोजित हो जाता है ।

अक्सर रोगियों की मानसिक मनोरचनाएं किसी एक ही दृढ़ता से जम जाने के कारण, अक्सर मर्ज के साथ तादात्म्य स्थापित करने में रोगी कठिनाई का अनुभव करते हैं । इसलिए यह आवश्यक है कि रोगी की विचार प्रणाली व चिंतन प्रक्रिया में लचीलापन लाया जाये ।

**मनोविदलता (स्क्रीज़ोफ्रेनिया)** : मनोविदलता एक अति गंभीर, क्षतिजनक, विघटनात्मक एवं भयंकर रोग है, जिसमें व्यक्ति का तीव्र मानसिक पतन, घोर संवेदनात्मक विघटन तथा गंभीर व्यवहारगत विचलन होता है । इस रोग का प्रक्रम साधारणतः अपरिवर्तनीय होता है ।

जब भी मनोविदलता व कैन्सर के लक्षण व्यक्ति में एक ही साथ दृष्टिगत हो जाते हैं, तब रोगी की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति चिकित्सकों के लिए चिंता का विषय बन जाती है । मनोविदलता से ग्रस्त रोगी वास्तविक जिंदगी से इस कदर कट जाता है कि उसका दिमागी संतुलन शून्य हो जाता है और वह कुछ भी ग्रहण करने व समझने की स्थिति में नहीं होता ।

इस प्रकार के रोगी का इलाज सिर्फ एक डॉक्टर व नर्स द्वारा किया जाना चाहिए, जिसके साथ मनोवैज्ञानिकों व मनोचिकित्सकों द्वारा रसायन चिकित्सा, कायिक चिकित्सा, समूह चिकित्सा, मनोचिकित्सा तथा सामुदायिक चिकित्सा की भी व्यापक रूप से आवश्यकता होती है ।

कैन्सर रोगियों में आशा का संचार एवं आत्मविश्वास जागृत करने के लिए मनोवैज्ञानिक मुख्य रूप से निम्न

कदम उठाते हैं —

1. रोगी को सर्वप्रथम तनावमुक्त कर उसको भावनात्मक एवं संवेदनात्मक रूप से सबल करना ।
2. रिलैक्शेसन व्यायामों का अभ्यास कराना ।
3. समूह चिकित्सा के अंतर्गत न सिर्फ रोगी बल्कि उसके परिवारजनों आदि को सामूहिक रूप से शिक्षित करना ।
4. धर्म से संबंधित उदाहरणों को मूलभूत आधार बना कर बीमारी के बारे में अधिकाधिक जानकारी देना ।
5. ठीक हो चुके कैन्सर रोगियों एवं इलाज करा रहे रोगियों के मध्य संवाद स्थापित करना ।

कभी-कभी जिन लोगों के परिवार का कोई भी सदस्य कैन्सर की वजह से काल के गाल में समा जाता है, वे लोग इलाज करा रहे मरीजों को अपनी आपबीती सुना कर उनमें मानसिक विचलन पैदा कर देते हैं । इसलिए समय-समय पर रोगी को इस तथ्य से अवगत कराते रहना चाहिए कि प्रत्येक रोगी का मनोशारीरिक स्वरूप भिन्न-भिन्न होने के कारण यह जरूरी नहीं है कि जो अनुभव किसी एक रोगी को हों वैसे ही अनुभव, तकलीफ आदि अन्य को भी होगी ।

**कैन्सर चिकित्सकों में मनोवैज्ञानिक समस्याएं :** माउंट 1986, कैश एवं श्लैडे 1988, लेडरबर्ग 1989 द्वारा, किये गये अध्ययनों के बाद अत्यंत चौकाने वाले तथ्य उभर कर आये कि रोगी ही नहीं बल्कि कैन्सर चिकित्सकों को भी, कभी-कभी रोगियों का इलाज करने के दौरान कुछ मानसिक तनाव या फिर असामान्यताओं का सामना करना पड़ जाता है । इन सबकी वजह निम्न है —

(अ) नींद की कमी ।
(आ) लंबे समय तक लगातार कार्य करना ।
(इ) निजी जिंदगी में दखल ।
(ई) मनोरंजन में कमी ।
(उ) संवेदनात्मक थकान ।
(ऊ) परेशानी, उलझनें कम करने के लिए मद्यपान, नशीली दवाओ का सेवन करने की लत लगना ।

चिकित्सकों का कर्तव्य है कि वे उक्त स्थितियां उत्पन्न न होने देने के लिए प्रयास करें और अपने व्यवसाय को निजी जिंदगी पर हावी न होने दें । यानि कि स्वयं को प्रसन्नचित्त रखें, मनोरंजन व शौक के लिए समय निकालें, व्यायाम करें, टहलें, दर्द भरे लम्हों पर हंस कर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करें । सब बातों की एक बात यह है कि स्वयं के अंदर से यह भावना निकाल दें कि एक वे ही पूर्णरूप से कार्यकुशल नहीं हैं या फिर सभी जिम्मेदारियों का भार उन पर नहीं है । जब कभी इलाज के दौरान किसी रोगी की मौत हो जाती है तब भी चिकित्सक को बेहद उलझन भरे दौर से गुजरना पड़ता है । ऐसे में चिकित्सक को यह चाहिए कि वह धैर्य व विवेक के साथ उन क्षणों पर काबू पाये, जिससे उसका मानसिक संतुलन न डगमगाने पाये ।

ब्रेटवार्ट 1989, द्वारा किये गये अध्ययनुसार निम्न रोगियों के मामलों में अधिक सावधानी बरतन चाहिए-

- सुनिश्चित अवधि पर चिकित्सकीय परामर्श न करना ।
- कैन्सर की उत्तरार्घ अवस्था ।
- मानसिक रोग का इतिहास ।
- हाल ही में पति / पत्नी / मित्र की मृत्यु ।
- निराशा का उच्च स्तर ।
- सामाजिक उपेक्षा ।
- अवसाद का विषम स्तर ।
- दर्द सहने में असमर्थता ।
- मद्यपान या नशीली दवाओं की लत ।

**भारतीय परिवेश की समस्याएं और समाधान :** भारतीय परिवेश में अभी इस दिशा/विषय पर काफी शोधकार्य करना बाकी है क्योंकि 'कैन्सर मनोविज्ञान' विषय के क्षेत्र में अभी तक जो भी अध्ययन, शोध कार्य आदि हुए हैं, वे सब विदेशी माहौल के आधार पर ही हुए है । इसमें कोई दो राय नहीं कि विदेशी अध्ययनों के परिणाम भारतीय परिवेश की कसौटी पर खरे नहीं उतरते क्योंकि भारतीयों की समस्याएं, रहन-सहन, आचार व्यवहार, खान पान, परिस्थितियां एवं मानसिक सोच आदि में

जमीन आसमान का अंतर है।

इस दिशा में भारतीय पृष्ठभूमि को मद्देनजर रख ऐसे विभाग स्थापित करने की आवश्यकता है, जिनमें 'कैन्सर-मनोविज्ञान' विषय पर अध्ययन संभव हो सके।

जहां विदेशों में अक्सर रोगी के इलाज के दौरान लगभग न के बराबर ही चिकित्सकों, रोगी आदि को परेशानी का सामना करना पड़ता है, वहीं दूसरी ओर हमारे देश में इलाज के दौरान चिकित्सा दल, रोगी व परिवार जनों को विभिन्न मानसिक तनावों/दबावों आदि से गुजरना पड़ता है।

कैन्सर रोगी के इलाज के दौरान मुख्यत: निम्न परेशानियां उपास्थित होती हैं —

1. सरकार की ओर से पर्याप्त सुविधा का अभाव।
2. मरीज के पास पैसे की कमी।
3. अस्पतालों में उपकरणों की असंतोषजनक स्थिति।
4. कैन्सर के प्रति रोगी व समाज का गलत मानसिक सोच।
5. ज्यादातर दवाएं कीमती होने की वजह से रोगी की पहुंच से बाहर होना।

इन्हीं सब परेशानियों को देखते हुए यह जरूरी हो गया है कि चिकित्सा जगत अस्पतालों में मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति किये जाने पर विचार विमर्श करे। अभी भी हमारे देश में न सिर्फ अनपढ़ बल्कि पढ़े लिखे वर्ग में भी यह विचार धारा विद्यमान है कि कैन्सर मृत्यु का पर्याय है।

और जब रोगी को समय पर दवाओं के साथ उचित परामर्श, सांत्वना, मनोचिकित्सा एवं उचित मार्गदर्शन आदि मिलेंगे तो स्वयमेव रोगी में रोग से लड़ने की ताकत जुट जायेगी।

❐❐❐

## हमारा दिल

*( पृष्ठ - 72 का शेष भाग )*

प्रणाली किसी भी बाह्य वस्तु को अस्वीकार कर देती है। जब शरीर पर सूक्ष्म जीवाणु हमला करते हैं तो शरीर प्रतिरोध के लिए एंटीबॉडी पैदा करता है। यह विशेष प्रोटीन (ग्लोबुलिन) ऊतकों में बनते हैं। यही समस्या नये हृदय के साथ भी होती है। रोगी के शरीर की सुरक्षा प्रणाली को एक्स-रे, दवाइयों या एंटीलिंफोसाइट सीरम द्वारा निष्क्रिय करना पड़ता है ताकि शरीर नये हृदय को स्वीकर कर सके। परंतु इस प्रकार रोगी को अन्य संक्रमणों का खतरा बढ़ जाता है और उसे पूर्णत: जीवाणु-रहित वातावरण में रखना पड़ता है। उपयुक्त दाता की खोज भी आसान नहीं हैं परंतु इसमें चिकित्सीय कारणों के अलावा कानूनी और नैतिक मुद्दे भी शामिल हैं। दाता का हृदय ठीक अवस्था में होना चाहिए और उसे मृत्यु के तुरंत बाद निकाल कर हार्ट-लंग मशीन के साथ लगाना पड़ता है। हृदय-प्रतिरोपण में यह समस्याएं अभी भी बनी हुई हैं।

प्लास्टिक के कृत्रिम हृदय बनाने पर भी शोधकार्य चल रहा है जिससे दाता को ढूंढने व रोगी द्वारा अस्वीकृत होने की समस्या हल हो सकती है। परंतु कृत्रिम हृदय के अनुरक्षण, मरम्मत व उसके लिए पावर सप्लाई की समस्या भी विकट है।

अंत में, हमें उस ईश्वर का धन्यवाद ज्ञापत करना चाहिए जिसने हमें एक ऐसा हृदय दिया है जो स्वयं अपनी मरम्मत करने में समर्थ है। अत: यह आवश्यक है कि हम अपने प्राकृतिक हृदय की ही, पूर्णत: देखभाल करें।

*(हिंदी रूपांतर - सर्वश्री राम प्रसाद, रामनिवास आर्य तथा डॉ. अशोक कुमार सूरी धातुकी प्रभाग, भापअ केंद्र, मुंबई - 400 085)*

❐❐❐

# उप-परमाण्वीय कणों की खोज

**डॉ. विवेक एम. दातार**
नाभिकीय भौतिकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400 085

1995 का भौतिकी विज्ञान का नोबेल पुरस्कार दो लेप्टॉनों की खोज करने वाले दो अमरीकी वैज्ञानिकों को संयुक्त रूप से दिया गया। प्रो. फ्रेड्रिक रायनेज ने क्लाइड कोवन के साथ 1956 में इलेक्ट्रॉन प्रतिन्यूट्रीनो ($\overline{\nu}_e$) का अस्तित्व सिद्ध किया। इस भ्रामक उप-परमाण्वीय कण को ढूंढ़ने का काम भौतिकी जगत में बहुत ही महत्वपूर्ण और मार्गदर्शक रहा। इस प्रयोग ने न्यूट्रीनो भौतिकी की नींव रखी और विश्व की संरचना के शोध का एक नया साधन ढूंढ़ निकाला। 1987 में हुए सुपरनोवा विस्फोट से निकले कुछ न्यूट्रीनों का संकेत इसका पहला ठोस उदाहरण है।

नोबेल पुरस्कार के दूसरे भागीदार हैं स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के मार्टिन पर्ल। 1975 में इन्होंने अपने सहयोगियों के साथ इलेक्ट्रॉन और म्यूऑन की श्रृंखला में तीसरी पीढ़ी के 1.78 GeV/$c^2$ द्रव्यमान के टॉव ($\tau$) लेप्टॉन की अनपेक्षित खोज की। कुछ वर्षों तक वैज्ञानिक इस नये लेप्टॉन के अस्तित्व के बारे में आशंकित थे। कुछ सालों में जब इसके विघटन के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हुई तब यह स्पष्ट हुआ कि यह कण इलेक्ट्रॉन और म्यूऑन का भारी रिश्तेदार है।

प्रस्तुत लेख दोनों नोबेल विजेताओं के प्रयोगों के साथ-साथ पूर्व इतिहास और वर्तमान परिस्थिति की झलक देने का प्रयास है।

**1(अ). बीटा विघटन में एक समस्या और पॉली का सुझाव :** नाभिकीय बीटा ($\beta$) विघटन में $\beta$-कणों की ऊर्जा सतत होती है। ऊष्मा मापन (कैलोरी-मीट्रिक) प्रयोग में रेडियम-डी के $\beta$-विघटन में यह पता लगा कि ऊर्जा का औसत मान

$$<E_\beta> \cong 340\ (\pm\ 6\%)\ \text{KeV}$$ है

लेकिन $\beta$-ऊर्जा का अधिकतम मान $\cong$1000 KeV होता है। इस विघटन में भाग लेने वाले नाभिकीय कण (पहला तथा अंतिम) अपनी-अपनी निश्चित अवस्था में

**प्रो. फ्रेड्रिक रायनेज़**

आपका जन्म न्यू जर्सी, अमेरिका में 16 मार्च, 1918 को हुआ। 1939 में आपने यांत्रिकीय अभियांत्रिकी की डिग्री प्राप्त की, 1941 में गणितीय भौतिकी में एम. एस. और 1944 में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय से पीएच. डी.। उसके बाद 15 साल लॉस एलेमॉस में परमाणु बम से संबंधित शोधकार्य से जुड़े रहे। वहां उन्हें कई ख्याति प्राप्त वैज्ञानिकों के साथ काम करने का अवसर मिला। उदाहरण के तौर पर, रिचर्ड फाईनमैन, हान्स बेथे, फॉन नॉयमन, यूजीन विग्नर, एन्रीको फर्मी, स्ह्रॉल्फ पायर्ल्स, विक्टर वाइसकॉफ इत्यादि। 1951 में उन्होंने किसी मूलभूत प्रश्न पर काम करने का निश्चय किया और इसी के फलस्वरूप वे सैद्धांतिक से प्रायोगिक भौतिकविद् बने। 1956 में आपने क्लाईड कोवन के साथ प्रति इलेक्टॉन न्यूट्रीनो ($\overline{\nu}_e$) की खोज की जिसके लिए आपको 1995 का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ (दुर्भाग्य से कोवन का देहांत 1974 में हुआ)। 1965 में आपने कॉस्मिक किरणों में पाये गये अधिक ऊर्जा के न्यूट्रीनो की उपक्रिया का शोध किया (कोलार खानों में भारतीय वैज्ञानिकों ने भी स्वतंत्र रूप से इसी समय इसका शोध किया)। 1954 से वर्तमान तक आप प्रोटॉन के विघटन की खोज कर रहे हैं। अर्वाइन-

→

→

मिशिगन-ब्रुकहेवन संसूचक, जो ~ 1982 में बनाया गया, के द्वारा प्रोटॉन की पॉजिट्रॉन-पायॉन में विघटन होने की अर्ध आयु $10^{32}$ वर्ष से अधिक है। 1987 में इसी संसूचक से रायनेज़ और सहयोगियों ने सुपरनोवा 1987A के विस्फोट से निकलने वाले 8 न्यूट्रीनों का मापन करने में सफलता प्राप्त की। 1966 से वे अर्वाइन के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। आपको मिले कुछ अन्य पुरस्कारों में से ओपनहाइमर पुरस्कार (1981), रोस्सी पुरस्कार (1989), मायकलसन-मोर्ले पुरस्कार (1990), पैनॉफस्की पुरस्कार (1992) और फ्रैन्कलिन पदक (1992) प्रमुख हैं।

**प्रो. मार्टिन पर्ल**

आप 69 वर्ष के हैं (जन्मदिन 24-6-1927)। पहले रासायनिक अभियंता बने (1948) और दो वर्ष जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी में नौकरी की। साथ में भौतिक शास्त्र में दिलचस्पी होने लगी और वे कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रो. राबी के विद्यार्थी बने। 1955 में पीएच.डी. प्राप्त करने के बाद राबी की सलाह से वे कण भौतिकी की ओर बढ़े। मिशिगन विश्वविद्यालय में 8 वर्ष रहे जहां उनके कुछ पहले विद्यार्थियों में से टिंग (1976 के नो. पु. विजेता) एक थे। 1963 से आप स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे हैं। 1974 के $\tau / \psi$ की खोज में उन्होंने रिक्टर (1976 के दूसरे नो. पु. विजेता) के साथ काम किया। 1975 में बहुत ही अनपेक्षित प्रकार के टॉव लेप्टॉन और तीसरी पीढ़ी की खोज की। आजकल चौथी पीढ़ी की खोज में लगे हुए हैं। 1982 में आपको वुल्फ पुरस्कार प्रदान किया गया।

होने के कारण $\beta$-ऊर्जा की कुछ ही निश्चित संख्याएं होनी चाहिए थीं। मगर $\beta$-वर्णक्रम मापने वाले प्रयोगों ने दिखाया कि $\beta$-ऊर्जा अनवरत है। इसको समझने के लिए दो सुझाव सोचे गये :

(1) $\beta$-विघटन में ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत औसतन रूप से माना जाता है। इसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक और नोबेल पुरस्कार विजेता नील्स बोहर ने प्रस्तुत किया।

(2) ऊर्जा संरक्षण का सिद्धांत मान्य है परंतु एक नया कण बचा हुआ संवेग और ऊर्जा ले जाता है। इस कण को हम प्रायोगिक यंत्रों से देख नहीं पाते हैं क्योंकि यह आवेशहीन होता है और इसका औसत मुक्त पथ ($\lambda_\upsilon$) बहुत लंबा है। इस सुझाव के प्रस्तुतकर्ता थे वोल्फगँग पॉली और यह उन्होंने एक पत्र द्वारा 1930 में बर्लिन की एक वैज्ञानिक विचार गोष्ठी के समय किया।

1934 में फर्मी ने $\beta$-विघटन का सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें पॉली के कण को 'न्यूट्रीनो' नाम दिया गया। उसी वर्ष बेथे और पायरल्स यह तथ्य सामने लाये कि न्यूट्रीनो का किसी पदार्थ से अन्योन्य क्रिया करने का परिक्षेत्र (interaction cross section) बहुत ही कम होता है।

$$\sigma_\nu \sim 10^{-44} \text{ सेमी}^2$$

और $\lambda_\upsilon = 1/n\sigma \sim 10^{21}$ सेमी. $\sim 10^3$ प्रकाशवर्ष।

इसी कारण न्यूट्रीनो का पता लगाना बहुत ही कठिन काम रहा। 1946 में ब्रूनो पॉंटेकॉर्वो ने इस बारे में एक सुझाव दिया। क्लोरीन-37 ($^{37}Cl$) पर न्यूट्रीनो से विपरीत $\beta$-विघटन (inverse $\beta$ decay) किया जाये तो इस अभिक्रिया से आरगॉन-37 ($^{37}Ar$) का निर्माण होगा जिसको हम सही यंत्र से देख पायेंगे। लेकिन उनकी सबसे बड़ी बात यह थी कि परमाणु रिएक्टर न्यूट्रीनो का बहुत शक्तिशाली स्रोत होता है। साधारणत: 100 मेगावाट ऊष्मीय रिएक्टर में $3 \times 10^{18}$ विखंडन/से. होते हैं और लगभग 6 न्यूट्रीनो प्रति विखंडन के दौरान निकलते हैं। इस प्रकार प्रति सेकंड $\sim 2 \times 10^{19}$ न्यूट्रीनो मिल सकते हैं। 1956 में, इस कल्पना पर आधारित रे डेविस ने ऐसा ही एक प्रयोग परमाणु रिएक्टर के नजदीक किया मगर आरगॉन-37 का कोई संकेत उनको नहीं मिला। रिएक्टर से निकलने वाले बहुसंख्य कण प्रतिन्यूट्रीनो होते हैं और आरगॉन-37 के निर्माण में न्यूट्रीनो की जरूरत थी। डेविस

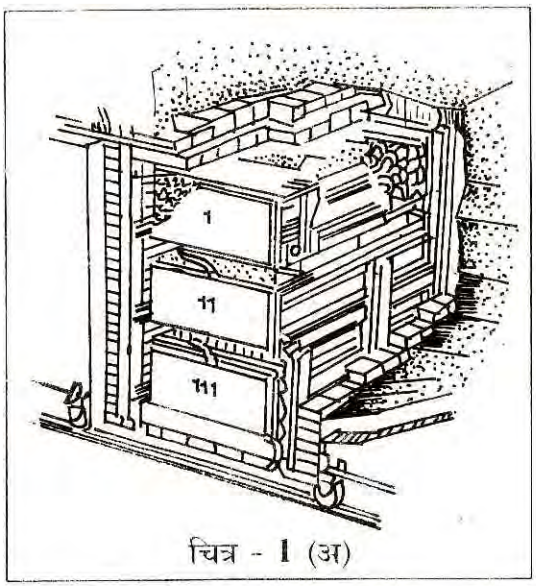


चित्र - 1 (अ)

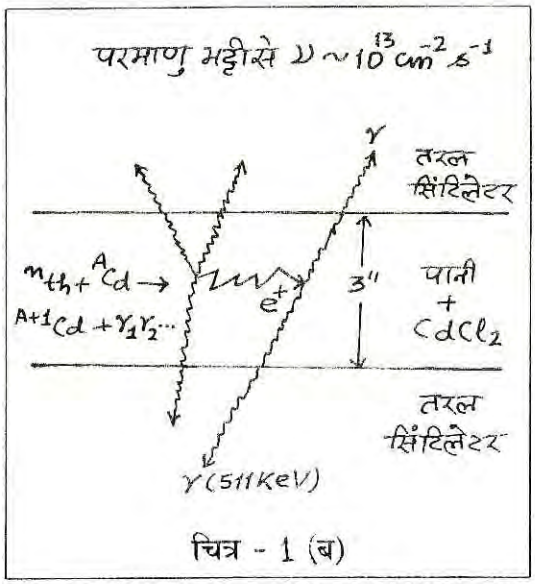


चित्र - 1 (ब)

के प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि न्यूट्रीनो (ν) और प्रतिन्यूट्रीनो ( $\bar{\nu}$ ) अलग-अलग कण हैं।

### 1(ब). न्यूट्रीनो की खोज

1951 में फ्रेड रायनेज़ ने लॉस एलेमॉस के परमाणु बम के काम से कुछ समय के लिए छुट्टी ली। वे किसी अच्छे, मूलभूत भौतिकी प्रश्न पर कार्य करना चाहते थे। कुछ वर्ष पहले उन्होंने फर्मी से न्यूट्रीनो के पता लगाने के बारे में सलाह मांगी थी। क्या परमाणु बम के विस्फोट से निकलने वाले न्यूट्रीनो का पता लगाया जा सकता है ? लॉस एलेमॉस में इसी संभाव्य प्रयोग के बारे में सेमिनार में भाषण के समय श्रोताओं में से किसी ने सुझाव दिया कि प्रयोग अगर बार-बार करना हो तो परमाणु रिएक्टर के पास यह प्रयोग करना चाहिए। इसी बात को लेकर रायनेज़ और कोवन ने हॅनफर्ड परमाणुभट्टी में 1953 में अपना पहला प्रयोग किया। इस प्रयोग में की जाने वाली अभिक्रिया थी

$$\bar{\nu} + p \longrightarrow n + e^+ \qquad (1)$$

($\beta$ विघटन इसके विपरीत है : $n \longrightarrow p + e^- + \bar{\nu}$)

पहले प्रयोग में ही उनको आशा की किरण दिखाई पड़ी। रिएक्टर से संबंधित संकेत था $0.41 \pm 0.20$ गणन/से.। व्हीलर के सुझाव को अमल में लाते हुए ये दो वैज्ञानिक सवाना परमाणुभट्टी, जो अमरीका के दक्षिण कैरोलाइना में है, में अपना प्रयोग करने गये। यह परमाणुभट्टी 700 मेगावाट क्षमता की थी और हॅनफर्ड से कई गुना अधिक शक्तिशाली होने के कारण यहां न्यूट्रीनो का निश्चित संकेत मिलने की आशा थी।

न्यूट्रीनो की खोज में उपयोग में लाया गया संसूचक चित्र-1 में दिखाया गया है। इसमें 6.5 फुट लंबे, 4.5 फुट चौड़े और 2 फुट ऊंचे तीन तरल प्रतिदीप्ति (सिंटिलेटर) संसूचक थे। साथ में पांच इंच व्यास की 110 फोटोमल्टीप्लायर नलिकाएं प्रयुक्त की गयी थीं। 511 KeV गामा-किरण के लिए इनकी विभेदन शक्ति 15 प्रतिशत थी। इनके बीच दो स्तर $CdCl_2$ + पानी (~6.5 फुट लंबाई x4.5 फुट चौडाई x 0.5 फुट मोटाई) के थे। न्यूट्रीनो - पानी के प्रोटॉन के अभिक्रिया, (समीकरण-1) से न्यूट्रॉन और पाजिट्रॉन निकल आते हैं। पानी में प्रोटॉन के साथ न्यूट्रॉन की टक्कर होते होते उसके वेग में कमी आ जाती है, और कुछ माइक्रो सेकंड के बाद उसकी Cd के साथ अभिक्रिया होकर कुछ गामा ($\gamma$) किरणें निकलती हैं जिनकी ऊर्जा कुल मिलाकर ~9MeV होती है। इनसे पहले पॉजिट्रॉन-इलेक्ट्रॉन अभिक्रिया में दो 511 KeV के गामा कण निकलते हैं। इसका मापन तरल सिंटिलेटर, फोटोमल्टीप्लायर इलेक्ट्रॉनिकी यंत्रों द्वारा होता है। प्रयोग के प्रमुख निष्कर्ष थे :

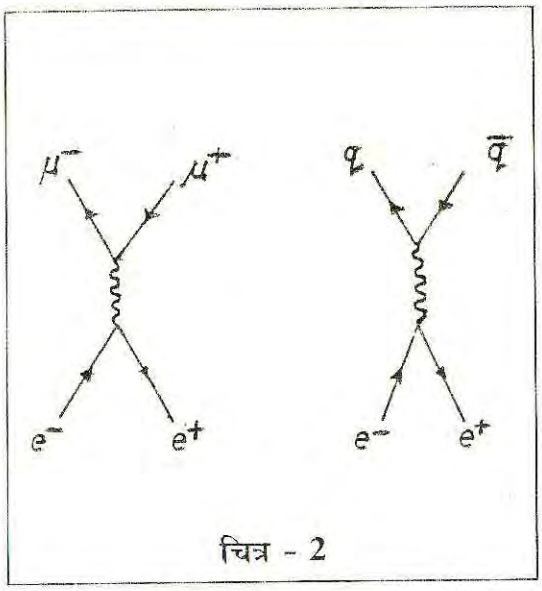


चित्र - 2

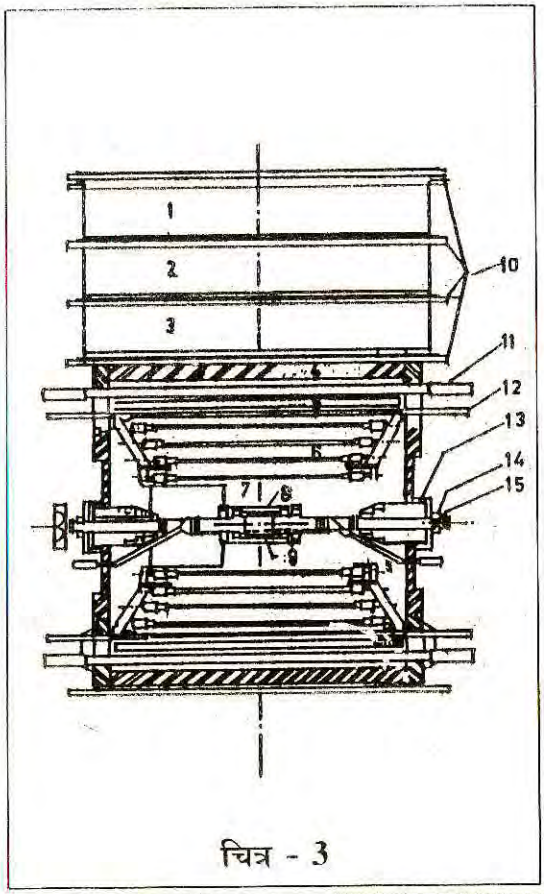


चित्र - 3

(1) परमाणु भट्टी संबंधी संकेत (रिएक्टर ON/रिएक्टर OFF $\cong$ 3) पाया गया ।

(2) पॉजिट्रॉन संबंधी पहला संकेत क्योंकि तरल सिंटिलेटर और पानी के, बीच Pb की कुछ मोटाई रखने से संकेत अपेक्षित रूप से घटता था ।

(3) दूसरा विलंबित संकेत $n + Cd \rightarrow \gamma s$ संबंधी क्योंकि पानी में $CdCl_2$ की मात्रा बढ़ाने से न्यूट्रॉन परिग्रहण समय घटता था ।

(4) संकेत लक्ष्य प्रोटॉन संबंधी क्योंकि 50% भारी पानी ($D_2O$) मिलाने से संकेत ~ 50% घटता था ।

(5) संकेत परमाणुभट्टी से निकलने वाले न्यूट्रॉन / गामा किरण संबंधी नहीं क्योंकि Pb / पैराफीन परिरक्षण दुगना करने से संकेत उतना ही रहा ।

(6) न्यूट्रीनो उपक्रिया परिक्षेत्र $\sigma_{\nu p} \cong 6x10^{-44} cm^2$ ($\pm$ 25%)

इस प्रकार रायनेज और कोवन ने न्यूट्रीनो का निश्चित संकेत पाया। न्यूट्रीनो के पाये जाने का संदेश उन्होंने तुरंत पॉली को भेजा ।

**वर्तमान स्थिति**

परमाणुभट्टी और अन्यत्र किये गये न्यूट्रीनो संबंधित प्रयोगों के मुख्य परिणाम कुछ इस प्रकार हैं :

(1) द्रव्यमान $(M_{\nu e}) < 5\ eV/c^2$

(2) चुंबकीय आघूर्ण $(\mu_{\nu e}) < 10^{-9} \mu_B$

(3) हेलिसिटी $(h_{\nu e}) = -1.0 \pm 0.1$ (बायें हाथ का कण)

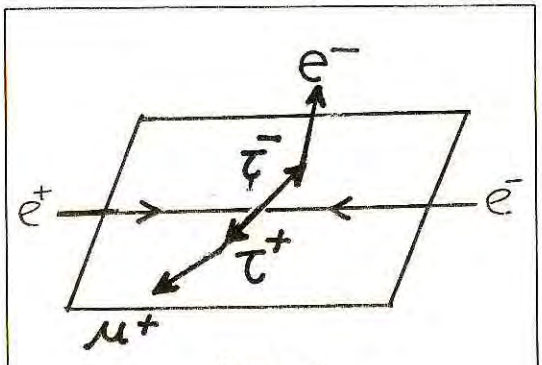


चित्र - 4

तालिका -1

| पीढ़ी | लेप्टॉन का नाम | खोज वर्ष | वैज्ञानिक |
|---|---|---|---|
| 1 | इलेक्टॉन न्यूट्रीनो ($\nu_e$) | 1956 | रायनेज, कोवन (नो. पु. 1995) |
| | इलेक्ट्रॉन (e) | 1897 | थॉम्सन (नो. पु. 1906) |
| 2 | म्यूऑन न्यूट्रीनो ($\nu_\mu$) | 1962 | श्वार्ट्स, लेडरमैन, श्टाईनबर्गर आदि (नो. पु. 1988) |
| | म्यूऑन ($\mu$) | 1936 | स्ट्रीट, एंडरसन आदि |
| 3 | टॉव न्यूट्रीनो ($\nu_\tau$) | ? | ? |
| | टॉव ($\tau$) | 1975 | पर्ल आदि (नो. पु. 1995) |

(4) न्यूट्रीनो-इलेक्ट्रॉन तटस्थ धारा (neutral current) चलने वाली अभिक्रिया पायी गयी

$$\bar{\nu}_e + e^- \rightarrow \bar{\nu}_e + e^-$$

(5) न्यूट्रीनो-डयूटेरियम अभिक्रियाएं पायी गयीं

$\bar{\nu}_e + d \rightarrow p + n + \bar{\nu}_e$ (तटस्थ धारा)

(6) सूर्य से निकलने वाले न्यूट्रीनो की कमी पायी गयी है। इसे सौर्य न्यूट्रीनो समस्या कहते हैं और इस पर प्रकाश डालने के लिए 5-6 बड़े-बड़े प्रयोग किये जा रहे हैं।

(7) सुपरनोवा SN1987A के विस्फोट से निकलने वाले 8 न्यूट्रीनों का संकेत पाया गया। खगोल शास्त्र के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। निष्कर्ष (2), (4) और (5) में प्रो. रायनेज़ का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

## 2. टॉव ($\tau$) लेप्टॉन की खोज

रायनेज और कोवन की न्यूट्रीनो खोज में तरल सिंटिलेटर और परमाणुभट्टी का उपयोग आवश्यक था। टॉव लेप्टॉन की खोज में उच्च ऊर्जा के इलेक्ट्रॉन - पॉजिट्रॉन ($e^- e^+$) की टक्कर कराने वाले त्वरक की आवश्यकता थी। स्टेनफोर्ड में ऐसे ही यंत्र (S.P.E.A.R.) का निर्माण 1972-73 में हुआ। यहां $e^+e^-$ की ऊर्जा 2.5 से 7.5 GeV तक बढ़ायी जा सकती थी। चित्र-2 में दिखायी गयी कुछ अभिक्रियाओं से नये कण-प्रतिकण बनाये जा सकते हैं जिनका द्रव्यमान 1. 2 से 3.7 GeV हो। इस यंत्र से जो पहले प्रयोग किये गये थे उनमें से एक था $\psi/\psi'$ की खोज करने वाला। $\psi$ और $\psi'$ नवंबर 1974 में खोजे गये और उनकी विशेष बात यह थी कि द्रव्यमान 3.1 और 3.7 GeV होते हुए भी उनकी ऊर्जा प्रसार (energy width) बहुत ही कम थी (~63 KeV और ~215 KeV)। इस प्रयोग से चार्म क्वार्क की खोज हुई जिसके लिए 1976 में स्टेनफोर्ड के प्रो. बर्टन रिक्टर और ब्रुकहेवन के प्रो. सैम टिंग को नोबेल पुरस्कार मिला। $\psi$ की खोज में प्रो. मार्टिन पर्ल ने महत्वपूर्ण काम किया था। इन प्रयोगों में स्टेनफोर्ड और बर्कले के भौतिक शास्त्रियों द्वारा बनाये चुंबकीय संसूचक मार्क-1 का उपयोग किया था। इसे चित्र-3 में दिखाया गया है। संसूचक की दक्षता 65% थी और चुंबकीय क्षेत्र और कण का मार्ग बताने वाले संसूचकों के कारण हर कण की पहचान की जा सकती थी। साथ ही कण की ऊर्जा और

संवेग भी मापा जा सकता था। क्योंकि म्यूऑन ($\mu$) अन्य कणों से अलग है (इसकी भेदक शक्ति बहुत ज्यादा है), हेड्रॉन (h) और विद्युत चुंबकीय संसूचक ($e^{\pm}$ और $\gamma$ किरणों के लिए) चुंबक के लोहे के अंदर हैं और म्यूऑन संसूचक उसके बाहर।

प्रो. पर्ल और उनके 35 सहयोगियों ने टॉव की खोज कुछ असंगत (anomalous) $e^{\pm}\mu^{\mp}$ घटनाओं द्वारा की। उपक्रिया थी :

$$e^+ + e^- \longrightarrow L^+ + L^-$$

$$e^+ \nu_e \bar{\nu}_L \qquad e^- \bar{\nu}_e \nu_L$$

या $\mu^+ \nu_\mu \bar{\nu}_L$ या $\mu^- \bar{\nu}_\mu \nu_L$

हर नये लेप्टॉन / प्रतिलेप्टॉन के विघटन से दो न्यूट्रीनो निकलते हैं जो संसूचक में पाये नहीं जाते और अदृश्य कहे जा सकते हैं। संसूचक में मुख्यत: बाधा डालने वाली घटनाएं हैं:

$e^+e^- \longrightarrow e^+e^-$, $e^+e^- \longrightarrow \mu^+\mu^-$, $e^+e^- \longrightarrow h^+h^-$

$e^+e^- \longrightarrow e^+e^-\mu^+\mu^-$

टॉव लेप्टॉन की खोज के प्रयोग में त्वरक की ऊर्जा 3 से 7.5 GeV तक बढ़ायी गयी। हर ऊर्जा पर अनेक घटनाओं में से दिलचस्प घटना चुनने का ढंग कुछ ऐसा था :

(1) केवल $e^-\mu^+$ या $e^+\mu^-$ कण होने चाहिए। साथ में कोई हेड्रॉन या गामा किरण नहीं होना चाहिए।

(2) $e^-\mu^+$ या $e^+\mu^-$ एक स्तर में नहीं होने चाहिए (चित्र-4)। अगर प्रारंभिक $e^+e^-$ और अंतिम $e^-$ या $e^+$ एक स्तर बनाते हैं तो $\mu^+$ या $\mu^-$ इस स्तर से न्यूनतम कोण 20 अंश का बनाते हों, यानि $\theta_\mu > 20^0$।

(3) $e^{\pm}\mu^{\mp}$ का संवेग चुने गये न्यूनतम संवेग से अधिक हो।

उदाहरण के तौर पर, 4.8 GeV ऊर्जा पर, 2.4 असंगत $e^{\pm}\mu^{\mp}$ घटनाएं मिलीं। घटनाएं शुद्ध करने की शृंखला कुछ ऐसी रही। दो शाखाओं वाली ~ 25,300 घटनाओं से $\theta_\mu > 20^0$ वाली केवल ~ 2500 थीं। $e^{\pm}\mu^{\mp}$ का संवेग 0.65 GeV/c से ज्यादा और उनकी सही पहचान केवल ~ 500 घटनाओं में थी। गामा किरण के साथ वालीं घटनाएं अलग की जायें तो केवल 24 घटनाएं बचीं (13 $e^+\mu^-$ और 11 $e^-\mu^+$)। बाधा डालने वाली घटनाओं का अंदाजा लगाया गया और वह $4.7 \pm 1.2$ था। पर्ल ने इस नये लेप्टॉन की खोज की घोषणा 1975 में की।

इस घोषणा पर बहुत से कण भौतिकविदों को विश्वास न था। ये घटनाएं खुले चार्म वाले हेड्रॉन के विघटन का सूचक तो नहीं ? 1977 में जर्मनी स्थित DESY में 3.6 GeV ऊर्जा पर, जो $2 \times m_{c\bar{u}/c\bar{d}} = 2 \times 1865$ MeV से कम है, कुछ $e^{\pm}\mu^{\mp}$ असंगत घटनाएं पायी गयीं और पर्ल की खोज को ठोस समर्थन मिला। इस काम के लिए जब प्रो. पर्ल को नोबेल पुरस्कार मिलने का समाचार मिला तब मज़ाक में उन्होंने कहा, "...टिंग से अब मैं नही डरता !"

टॉव का $e\nu\bar{\nu}$ विघटन बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन किया गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि टॉव एक अधिक द्रव्यमान वाला इलेक्टॉन या म्यूऑन है। इसकी खोज से लेप्टॉन की तीसरी पीढ़ी प्रस्थापित हुई। म्यूऑन की खोज के बाद राबी द्वारा किया हुआ प्रश्न "Who ordered the muon ?" ( म्यूऑन की मांग किसने की ?) टॉव लेप्टॉन के बाद उतना ही महत्वपूर्ण है। टॉव का विघटन 3 प्रमुख शाखाओं के द्वारा होता है ;

$$\tau^- \longrightarrow e^- + \bar{\nu}_e + \nu_\tau$$
$$\hookrightarrow \mu^- + \bar{\nu}_\mu + \nu_\tau$$
$$\hookrightarrow \bar{u} + d + \nu_\tau$$

क्योंकि क्वार्क तीन रंगों के होते हैं (क्वांटम क्रोमो-डायनेमिक्स के अनुसार) और अगर e, $\mu$, u, d का द्रव्यमान शून्य के बराबर माना जाय तो कुल मिलाकर उतने ही महत्व की 5 विघटन शाखाएं होनी चाहिए। हर शाखा में विघटन होने की संभावना साधारण तौर पर 20 प्रतिशत है। टॉव की ऊर्जा प्रसार, $\Gamma_\tau$, म्यूऑन की ऊर्जा प्रसार, $\Gamma_\mu$, से संबंध इस प्रकार है :

*(कृपया शेष पृष्ठ-88 पर देखें)*

# भ्रूण संबंधी (एम्ब्रॉयनिक) विकास का प्रारंभिक नियंत्रण

**भगवती प्रसाद गुप्ता**
आण्विक जीव विज्ञान वर्ग,
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,
कोलाबा, मुंबई 400 005

फिजियोलॉजी और चिकित्सा विज्ञान की शाखा में 1995 का नोबेल पुरस्कार तीन वैज्ञानिकों, डॉ. क्रिश्चेन नस्सलेन-वोल्हार्ड, डॉ. एरिक वीसचाउस और डॉ. एडवर्ड लेविस को दिया गया है। इन तीनों वैज्ञानिकों ने जैविक विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके प्रयोगों के फलस्वरूप हमें आज प्राणी जीवन के प्रारंभिक विकास की प्रक्रिया को समझने में बहुत सफलता मिली है।

यह विज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत हम किसी प्राणी के विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करते हैं और यह जानने की कोशिश करते हैं कि जीन किस तरह से हमारे शरीर का निर्माण करती हैं। जीन डी एन ए (डिऑक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड) की बनी होती हैं। विभिन्न प्राणियों में दिखाई पड़ने वाली असमानताएं उनके अंदर मौजूद जीनों की असमानताओं के कारण ही होती है। डी एन ए से आर एन ए (राइबो न्यूक्लिक एसिड) तत्व का निर्माण होता हैं। आर एन ए शरीर की कोशिकाओं में संदेश वाहक का कार्य करते हैं और इस तरह के विभिन्न संदेश-वाहकों से विभिन्न तरह के प्रोटीनों का निर्माण होता है। शरीर की लगभग सारी प्रक्रियाओं का संचालन अंततः प्रोटीनों के द्वारा ही होता है। उदाहरण के तौर पर शरीर में ऑक्सीजन वाहक (कैरियर) का कार्य हिमोग्लोबिन प्रोटीन करते हैं। बालों का निर्माण बीटा-केराटिन नामक प्रोटीन करते हैं, आदि।

शरीर के विकास में कार्यरत जीन के बारे में अध्ययन करने के लिए जिन तरह के प्रयोगों को किया जाता है वह मुख्य रूप से जननिक (जिनेटिक्स) आण्विक जैव विज्ञान और जिनेटिक इंजिनियरी जैसी विज्ञान की शाखाओं के अंतर्गत आते हैं। चूंकि अनेक तरह की शारीरिक प्रक्रियाएं विभिन्न जीव-जंतुओं में एक समान होती हैं, इसलिए वैज्ञानिकों का यह मानना है कि छोटे और साधारण प्राणियों पर प्रयोगों से जो भी

**डॉ. क्रिश्चेन नस्सलेन वोलेहार्ड**

बावन वर्षीय डॉ. क्रिश्चेन नस्सलेन-वोल्हार्ड की प्रारंभिक शोध संबंधी शिक्षा स्विटजरलैंड के बासेल विश्वविद्यालय में डॉ. वाल्टर गेहरिंग की प्रयोगशाला में हुई। आपने कुछ वर्षों तक स्वतंत्र वैज्ञानिक के पद पर कार्य करते हुए यूरोपियन मॉलीक्यूलर बॉयोलॉजी लेबोरेटरी (हीडलबर्ग, जर्मनी) में डॉ. वीसचाउस के साथ शोध कार्य किया। आजकल आप मैक्स-प्लांक इंस्टिट्यूट जर्मनी के बॉयोलॉजी डिपार्टमैंट में निदेशक के तौर पर कार्य कर रही हैं। साथ ही एक अन्य जंतु जेबरा फिश के ऊपर कार्य कर रही हैं। ड्रॉसोफिला की तरह इसके प्रारंभिक जीवन विकास को समझने में विशेष रुचि है।

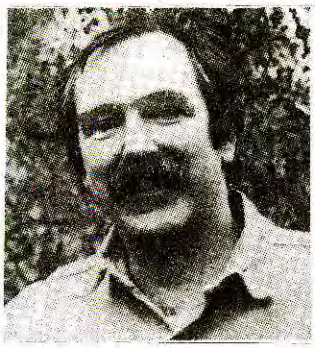

**डॉ. एरिक वीसचाउस**

अपने शोध कार्य का प्रारंभ 48 वर्षीय डॉ. वीसचाउस ने भी डॉ. वाल्टर गेहरिंग की प्रयोगशाला (बासेल विश्वविद्यालय-स्विटजरलैंड) में किया । फिर डॉ. वीसलेन-वोल्हार्ड के साथ यूरोपियन मॉलीक्यूलर बॉयोलॉजी लेबोरेटरी (हीडलबर्ग, जर्मनी) में काम किया । आजकल प्रींस्टन विश्व-विद्यालय (अमेरिका) में आण्विक जीव विज्ञान के स्विब्ब प्रोफेसर के पद पर हैं । आज भी ड्रॉसोफिला पर अपना शोध कार्य बरकरार रखे हैं ।

**डॉ. एडवर्ड बी. लेविस**

शोध कार्य का प्रारंभ 77 वर्षीय डॉ. लेविस ने केलीफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (पासेडेना, अमेरिका) में प्रो. एल्फ्रेड स्टार्टवेन्ट की प्रयोगशाला में किया । 1946 से लेकर आज तक होमयोटिक जीन, बीथोरेक्स कॉम्प्लेक्स के ऊपर कार्य कर रहे हैं । थॉमस हन्ट मोरगन प्रोफेसर ऑफ बायोलॉजी एवं एमरिटस वैज्ञानिक डॉ. लेविस केलीफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में कार्यरत हैं ।

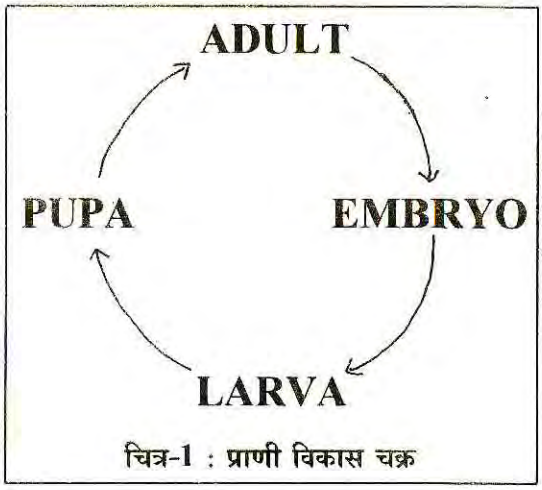


**चित्र-1 : प्राणी विकास चक्र**

जानकारियां प्राप्त होंगी वे काफी हद तक मानव शरीर के विकास को समझने में सहायक सिद्ध होंगी । अब तक के प्रयोगों के परिणामों से यह धारणा काफी हद तक सही साबित हुई है । अनेक तरह के जीन जो कि ड्रॉसोफिला, मेंढ़क, या चूहे में पायी गयी हैं हमारे शरीर के विकास में उसी तरह कार्यरत हैं । उदाहरण के तौर पर 'Eyeless' जीन जो कि ड्रॉसोफिला में आंखों का निर्माण करती है, हमारे शरीर में भी आंखों का विकास में कार्य करते हैं। होमेयोटिक जीन जो कि शरीर के विभिन्न अंगों के विकास में सहायक हैं, अनेक जीव-जंतुओं में लगभग उसी तरह कार्य करते हैं ।

डॉ. नस्सलेन-वोल्हार्ड, डॉ. वीसचाउस और डॉ. लेविस ने अपने प्रयोग एक छोटे से जीव, ड्रॉसोफिला मेलेनोगैस्टर, जो कि 'फल मक्खी' के नाम से भी जाना जाता है, पर किया । इस जीव के विकास की प्रक्रिया मनुष्यों की तुलना में काफी साधारण है और साथ ही साथ जीवन चक्र भी काफी छोटा है । पूरे प्राणी का विकास होने में सामान्य तौर पर करीब 10 दिन का समय लगता है (चित्र-1), जिसके फलस्वरूप प्रयोगों के परिणाम शीघ्र प्राप्त होते हैं ।

डॉ. नस्सलेन-वोल्हार्ड और डॉ. वीसचाउस ने अपने प्रयोगों में एक रसायन, इथाइल मीथेन सल्फोनेट (EMS), का उपयोग किया । इसके उपयोग से उन्होंने

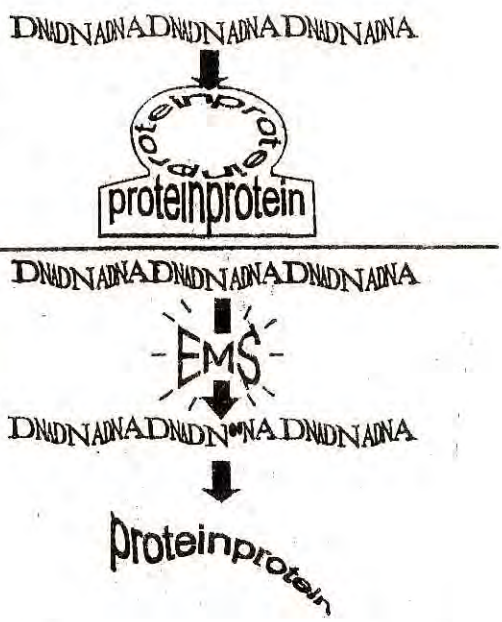


चित्र-2 : इथाइल मीथेन सल्फोनेट के उपयोग से ड्रॉसोफिला के जीवन में उत्पन्न बाधा

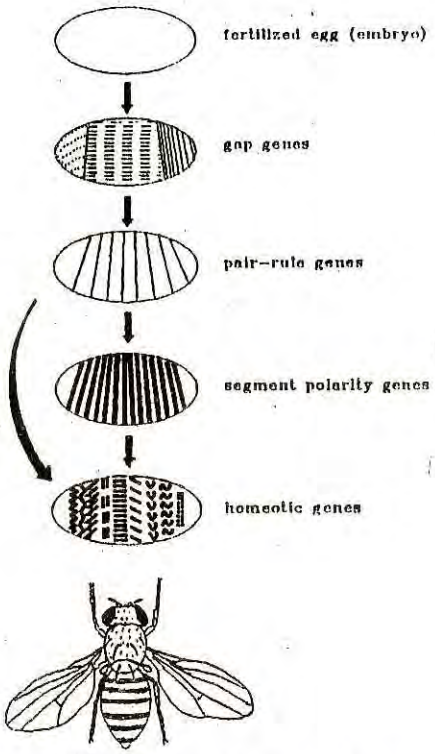


चित्र-3 : विभिन्न जीनों के कार्यों की झलक

ड्रॉसोफिला के प्रारंभिक विकास में आवश्यक अनेक महत्वपूर्ण जीनों की संरचना और कार्यों में बाधा उत्पन्न की (चित्र-2)। फलस्वरूप हमें उनके के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। तालिका-1 में इन वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गयी जीनों की जानकारी दी गयी है। इनको उनके कार्यों के आधार पर तीन वर्गों में बांटा गया है - अंतर जीन (gap genes), युगल-नियम जीन (pair-rule genes) और खंड ध्रुवता जीन (segment polarity genes)। गैप जीन का ऐसा नाम इसलिए दिया गया क्योंकि इनके कार्यों में बाधा उत्पन्न करने से भ्रूण के बड़े-बड़े हिस्सों का विकास नहीं होता है और फलस्वरूप उनमें अंतर उत्पन्न हो जाता है। इस तरह के जीन भ्रूण के विकास में सबसे पहले कार्य करते हैं और इनके ही कार्यों के परिणाम स्वरूप युगल-नियम जीन और खंड ध्रुवता जीन अपना कार्य शुरु करते हैं।

ड्रॉसोफिला भ्रूण के प्रारंभिक विकास के दौरान उनके शरीर का हिस्सा 14 भागों में विभाजित होता है और आगे चलकर ये भाग विकसित हो कर विभिन्न अंगों का निर्माण करते हैं। युगल-नियम जीन के कार्यों में बाधा उत्पन्न करने से विभिन्न भागों का विकास रुक जाता है। खंड ध्रुवता जीन विभिन्न भागों की ध्रुवता का नियंत्रण करती हैं, और यह निर्धारित करती हैं कि उन भागों का कौन अगला सिरा और कौन पिछला सिरा होगा। चित्र-3 में इन जीनों के कार्यों को प्रदर्शित किया गया है।

गैप जीन, पैयर-रूल और जीन सेग्मेंट पोलरिटी जीन के कार्यों के पश्चात ड्रॉसोफिला भ्रूण के आगे के विकास में जिन तरह के जीन का योगदान होता है उसमें होमेयोटिक जीन सबसे महत्वपूर्ण हैं। इनकी खोज अब तक लगभग सारे प्राणी जगत, यहां तक कि वनस्पति जगत

तालिका -1 नोबेल पुरस्कार से सम्मानित वैज्ञानिकों द्वारा खोजे गये जीन

| वर्ग | स्थान | मैप स्थिति | पूर्व जानकारी (हां/ना) |
|---|---|---|---|
| खंड ध्रुवता (segment polarity) | cubitus interruptus$^{D}$ (ci$^{D}$) | 4-0 | हां |
| | wingless (wg) | 2-30 | हां |
| | gooseberry (gsb) | 2-104 | ना |
| | hedgehog (hh) | 3-90 | ना |
| | fused (fu) | 1-59.5 | हां |
| | patch (pat) | 2-55 | ना |
| युग्म-नियम (Pair-rule) | paired (prd) | 2-45 | ना |
| | even-skipped (eve) | 2-55 | ना |
| | odd-skipped (odd) | 2-8 | ना |
| | barrel (brr) | 3-27 | (h) ना |
| | runt (run) | 1-65 | ना |
| | engrailed (en) | 2-62 | हां |
| गैप (Gap) | Kruppel (Kr) | 2-107.6 | हां |
| | knirps (kni) | 3-47 | ना |
| | hunchback (hb) | 3-48 | ना |

**चित्र-4 होमेयोटिक परिवर्तन (ड्रॉसोफिला में होमेयोटिक जीन के कार्यों में बाधा डालने से मक्खी में दो के स्थान पर चार पंखों का उगना)**

में भी, की जा चुकी है और यह पाया गया है कि इस तरह के जीन शरीर के विभिन्न अंगों को उसकी पहचान दिलाती हैं। अतः इनके कार्यों में बाधा उत्पन्न करने से शरीर का एक हिस्सा जो कि सामान्य तौर पर किसी एक अंग का निर्माण करता है, बदल कर दूसरे अंग का निर्माण करने लगता है। उदाहरण के तौर पर, ड्रॉसोफिला में होमेयोटिक जीन, 'Bithorax complex (BX-c)' के कार्यों में बाधा डालने के परिणामस्वरूप एक जोड़ी पंख की जगह दो जोड़ी पंख उग आते हैं। इस तरह के परिवर्तन को होमेयोटिक परिवर्तन कहते हैं और इस घटना को होमेयोसिस (ग्रीक शब्द) कहते हैं (चित्र-4)। इस तरह के जीनों के कार्यों के बारे में डॉ. लेविस पिछले 60 सालों से अध्ययन कह रहे हैं। उन्होंने यह पाया कि एक जोड़ी पंख की जगह दो जोड़ी पंख का निर्माण इसलिए होता है क्योंकि मक्खी के शरीर का एक अन्य हिस्सा जो कि आमतौर पर एक अंग, हाल्टर (Haltere), का निर्माण करता है, उसकी जगह पंख का निर्माण करने लगता है। बीथोरेक्स कांप्लेक्स के अंतर्गत तीन जीन आते हैं -

अल्ट्राबीथोरेक्स, एब्डोमिनल ए (Abdominal)-A और एब्डोमिनल-बी। अपने प्रयोगों से डॉ. लेविस ने यह निष्कर्ष निकाला कि ये तीनों जीन अन्य महत्वपूर्ण जीनों के साथ मिलकर कार्य करते हैं और ड्रॉसोफिला के वक्ष और पेट का निर्माण करती हैं। उन्होंने हमें साधारण होमेयोटिक जीन और खास तौर पर बीथोरेक्स कांप्लेक्स जीन के बारे में, अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारियां दी हैं। उदाहरण के तौर पर, उन्होंने बताया कि होमेयोटिक जीन क्रोमोसोम में उसी क्रम में स्थित हैं जिस क्रम में वह शरीर के अंगों का निर्माण करती हैं। अत: शरीर के अगले हिस्से का विकास करने वाली ये जीन, पिछले हिस्सों के विकास करने वाली जीन के पहले स्थित हैं। यह जानकारी अन्य जंतुओं में सही पायी गयी है। इसको हम 'सैरेखिक सिद्धांत' कहते हैं। ड्रासोफिला से लेकर मनुष्यों तक अनेक तरह के होमेयोटिक जीनों की संरचना और कार्यों में काफी समानता पायी गयी है। ऐसा समझा जाता है कि अरबों-खरबों वर्ष पहले इस तरह की एक जीन की संरचना हुई होगी और आगे चल कर अनुलिपि (ढिगुणन) तथा छोटे-छोटे परिवर्तनों के फलस्वरूप और भी अन्य होमेयोटिक जीनों का विकास हुआ। ये सब जीन अनेक तरह के विकसित प्राणियों में उस समय से कार्यरत हो गयीं।

इन तीनों वैज्ञानिकों के महत्वपूर्ण कार्यों के परिणामस्वरूप आज हमें अनेक जीव-जंतुओं के विकट (Complex) विकास को समझने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है। पूरी दुनियां में अनेक वैज्ञानिक, जो कि विकास जीव विज्ञान शाखा में कार्य करते हैं, यह जानने की कोशिश में लगे हैं कि शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण कैसे होता है और जीन इस कार्य को कैसे करती हैं। भविष्य में हम यह उम्मीद करते हैं कि इस तरह के प्रयोगों से जब हमें मानव जीवन के विकास को पूरी तरह समझने में सफलता मिल जायेगी, तब तरह-तरह की जन्मजात बीमारियां जो कि आज मनुष्यों में अत्यंत घातक हैं और जिनका इलाज संभव नहीं है, दूर की जा सकेंगी।

❐❐❐

## उप-परमाण्वीय कणों की खोज

(पृष्ठ - 83 का शेष भाग)

$\Gamma(\tau \rightarrow e\nu\bar{\nu}) / \Gamma(\mu \rightarrow e\nu\bar{\nu}) = (M_\tau / M_\mu)^5$ और क्योंकि $\Gamma(\tau \rightarrow e\nu\bar{\nu}) / \Gamma_\tau = 0.2$,

$\Gamma_\tau / \hbar \cong 3 \times 10^{12}\ sec^{-1}$

प्रयोगों से पाया गया $\Gamma_\tau / \hbar = (3.38 \pm 0.03) \times 10^{12}\ sec^{-1}$। टॉव का द्रव्यमान चीन के बेजिंग शहर में स्थित $e^+e^-$ त्वरक में बहुत ही सही तौर पर ज्ञात किया गया है। उन प्रयोगों से द्रव्यमान $m_\tau = 1777.0 \pm 0.2\ MeV/c^2$। उसी प्रयोगशाला के अन्य प्रयोगों से टॉव - न्यूट्रीनो, जिसकी उपक्रिया कहीं भी नहीं पायी गयी, के द्रव्यमान की उच्चतम संख्या रखी गयी है :

$$M_{\nu_\tau} < 24\ MeV/c^2$$

प्रो. रायनेज और प्रो. पर्ल के शोधकार्य के बाद लेप्टॉन पीढ़ियों की जानकारी संक्षिप्त रूप में तालिका-1 में दी गयी है।

❐❐❐

# टिप्पणियां

## 1. अकेसिया की विभिन्न प्रजातियां एवं उनके उपयोग

अकेसिया के नाम से लोग मुख्यतः 2-3 प्रजातियों को ही सामान्यतः जानते हैं - जैसे अकेसिया सेनेगल, अकेसिया निलोटिका, अकेसिया टोरटलीस या फिर अकेसिया कटैचू । जबकि अकेसिया की 130 से भी अधिक प्रजातियां विश्व में पायी जाती हैं, इनमें से कई प्रजातियां भारत में भी पायी जाती हैं । अकेसिया की विभिन्न प्रजातियों का संक्षिप्त वर्णन एवं उनकी उपयोगिता इस प्रकार है :

**अकेसिया केसिया** :- यह आरोही पादप हिमालय की तराई में 1200 मी. की ऊंचाई तक चिनाव से पूर्व की ओर असम तक पाया जाता है । ऐसी ही एक जाति अकेसिया सूडो-इंटसिया अंडमान में मिलती है ।

इसे हिंदी में ऐला, मराठी में चिलार, तेलगू में कोरिटा, कोरिदम आदि नामों से भी जाना जाता है ।

सिक्किम में लेपचा लोग साबुन के स्थान पर बाल धोने के लिए इसकी छाल का प्रयोग करते हैं ।

**अकेसिया कॉनसिना** :- यह एक कांटेदार आरोही झाड़ी है जो सर्वत्र मिलती है एवं भारत के उष्णकटिबंधीय जंगलों में विशेष रुप से दक्षिण में बहुतायत से मिलती है । इसे हिंदी में कोची, रीठा, बंगाली में वनरीठा, मराठी में शिकेकाई, गुजराती में शिकाकाई, तेलगू में शीकाया, तमिल में शिकाई, कन्नड़ में सीगे, मलयालम में चीकाका आदि नामों से जाना जाता है । इसकी फलियों का उपयोग सिर धोने के लिए किया जाता है, इसके अतिरिक्त इसकी फलियों में सेपोनिन की मात्रा 5% होती है जो उपयोगी है । उत्तरी बंगाल में इसका उपयोग मछलियों को मारने के लिए किया जाता है । इसकी नयी पत्तियां खट्टी होती हैं एवं चटनी बनाने के काम आती हैं । इसकी छाल बंसी की डोरी रंगने के लिए इस्तेमाल की जाती है ।

**अकेसिया जैक्विमोंटी** : यह कांटेदार झाड़ी है, जिसके फूल मीठी गंध वाले होते हैं । यह पंजाब, राजस्थान एवं उत्तरी गुजरात के मैदानी भागों तथा श्रीलंका के शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है । यह गोंद देने वाले अकेसियाओं में से एक है । इसे राजस्थानी में बोली, गुल्ली, पंजाबी में कीकर, बमूल आदि कहते हैं । गोंद के अतिरिक्त, राजस्थान में इसकी छाल से चमड़ा बनाया जाता है जो भूरे या काले रंग का होता है । इसकी टहनियां पशुओं को खिलाई जाती हैं ।

**अकेसिया डिलबाटा** :- यह मूलतः तस्मानिया एवं दक्षिण आस्ट्रेलिया का एक चिरहरित वृक्ष है । हिमालय की पहाड़ियों पर भी यह शिमला, नैनीताल और अल्मोड़ा क्षेत्रों में पाया जाता है । इसमें जड़ीय कल्लों द्वारा पुनुरुत्पादन की अद्‌भुत क्षमता होती है । यह मुख्यतः युकेलिप्टस के वनों में इनके नीचे उगता है तथा भूमि को नाइट्रोजन युक्त करता है । इसका गोंद अच्छी किस्म का होता है जबकि लकड़ियां ईंधन के रुप में काम में ली जाती हैं । फ्रांस के दक्षिणी भागों में इस वृक्ष को इसके सुगंधित फूलों के लिए उगाया जाता है । विलायकों द्वारा निष्कर्षण से इनसे अच्छी प्रकार की मीमोसी सुगंध प्राप्त होती है ।

**अकेसिया डेकरेन्स** :- यह 12 मीटर ऊंचा एक चिरहरित वृक्ष है । भारत में नीलगिरि पर ये पेड़ दक्षिणी अफ्रीकी बीजों से उगाये गये हैं । इनकी छाल में टेनिन होता है एवं फूलों में सुगंध होती है जो उपयोगी है ।

**अकेसिया पिकनैन्था** :- इसका मूल स्थान दक्षिण आस्ट्रेलिया है । भारत में इसकी खेती के प्रयोग नीलगिरि पर किये जा रहे हैं । यह अधिक सर्दी-गर्मी नहीं सह सकता है । इस वृक्ष से मिलने वाला गोंद आस्ट्रेलियन गम कहलाता है । इसकी छाल में टेनिन की मात्रा 50% तक होती है ।

**अकेसिया पेन्नाटा** :- यह कंटीली आरोही झाड़ी प्रायः भारत के उन सभी स्थानों पर मिलती है जो बहुत सूखे नहीं है । इसे हिंदी में ऐला, मराठी में शेंबी, मलयालम में करींचा कहते हैं । इसकी छाल में 9% टेनिन

होता है तथा यह मुंबई में मछली पकड़ने के जालों को रंगने में काम आती है। इससे चमड़ा भी बनाया जाता है।

**अकेसिया प्लैनिफोस** :- इसे तमिल बबूल भी कहते हैं। यह दक्षिण भारत में सेलम, मदुराई, तिन्नेवेली एवं त्रावनकोर में तथा श्रीलंका में पाया जाता है। इसे तेलगू में गोडुंग तुंभा एवं तमिल में कोडइवेलम कहते हैं। इसकी लकड़ी कड़ी एवं भारी होती है, यह खेती के औजार बनाने के काम आती है। यह अच्छा ईंधन भी है। इसकी फलियां गायों एवं बकरियों को खिलाई जाती हैं। इसमें टैनिन भी होता है।

**अकेसिया फारनेसियाना** :- इसका मूल स्थान उष्णकटिबंधीय अमेरिका समझा जाता है। अब यह अधिकांश भारत एवं श्रीलंका में फैल गया है। दक्षिणी फ्रांस में इसकी खेती की जाती है। उत्तरी भारत में नदियों की बलुई मिट्टी में एवं पंजाब के शुष्क स्थानों पर यह अच्छी तरह उगता है एवं भू-क्षरण रोकने में सहायक है। यह वृक्ष पूरे वर्ष से मुख्यतः नवंबर से मार्च तक फूल देने लगता है। उसके फूलों से सुगंध प्राप्त की जाती है। इसकी पकी फलियों में 23% टैनिन होता है व छाल भी चमड़ा पकाने के काम आती है। इससे गोंद भी प्राप्त किया जाता है। इसकी पत्तियों से चटनी बनाई जाती है। इसे खेतों में बाड़ लगाने के काम में भी लिया जाता है। इसके एक प्रौढ़ वृक्ष से एक मौसम में लगभग 1 किलो फूल मिलते हैं।

**अकेसिया फेरुजीनिया** :- यह एक मंझले आकार का वृक्ष है जो गुजरात विदर्भ, आंध्र, डेकन, कोंकण, कर्नाटक, पश्चिमी घाट के पूर्वी ढलानों पर पाया जाता है। यह श्रीलंका के शुष्क वनों में भी मिलता है। इसे मराठी में पंधरा-खैरा, गुजराती में कैगु, तेलगू में अनसांद्रा तमिल में वेलवेलम, कन्नड में बन्नी आदि नामों से भी जाना जाता है। यह कंटाले जंगलों में बिखरा हुआ उगता है। इसे सावधानी से सुखोकर अच्छी लकड़ी प्राप्त की जा सकती है, जिसे पहियों, खंभों व कृषि औजारों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसकी छाल और फलियां कषाय गुणयुक्त होती हैं। इस वृक्ष से गोंद भी मिलता है।

**अकेसिया मेलानोक्सीलॉन** :- यह तस्मानिया और दक्षिणी आस्ट्रेलिया का एक विशाल चिरहरित वृक्ष है इसे 1840 में नीलगिरि पर प्रवेशित किया गया था तथा वहां यह प्राकृतिक रूप से होता है जबकि उत्तर में नहीं होता है भारत में इसकी ऊंचाई 24 मीटर तक हो जाती है। इसकी लकड़ी गहरी भूरी एवं सुंदर धब्बों वाली होती है, जिससे आस्ट्रेलिया में फर्नीचर, रेल डिब्बे आदि बनाये जाते हैं। नीलगिरि पर इसे मुख्यतः जलाने के काम में लेते हैं।

**अकेसिया मोडेस्टा** :- यह 6-9 मीटर ऊंचा व 3-4 मीटर मोटा वृक्ष है जो मुख्यतः उप हिमालय तथा बाह्य हिमालय में जम्मू के आस-पास पाया जाता है। इसकी छाल खुरदरी व अनेक अनियमित दरारों वाली होती है। इसकी लकड़ी का उपयोग कोल्हू, रहट, गाड़ियां के पहियों एवं कृषि औजारों में किया जाता है। इसे ईंधन के रूप में भी लिया जाता है। इससे थोड़ी मात्रा में पीला गोंद भी मिलता है। उत्तरी भारत में इसे औषधियों में एवं पंजाब में इसकी कोमल टहनियां दातून के रूप में काम में ली जाती हैं।

**अकेसिया मोलिसिमा** :- इसका मूल स्थान दक्षिण आस्ट्रेलिया और तस्मानिया है। यह अकेसिया डेकरेन्स से मिलता-जुलता है तथा केवल पत्तियों की आकृति के आधार पर विभेदित किया जा सकता है। यह दक्षिण अफ्रीका में उगायी जाने वाली महत्वपूर्ण प्रजाति है। भारत में यह नीलगिरि, पलनी व केरल के कुछ भागों में तथा श्रीलंका के पठारों पर पायी जाती है। वाणिज्यिक रूप में वैटल की छाल का अधिकांश भाग इसी वृक्ष से प्राप्त किया जाता है। इससे चमड़ा पकाया जाता है। इसकी लकड़ी ईंधन में एवं गत्ता बनाने के काम में आती है।

**अकेसिया ल्यूकोफ्लोइआ** :- यह एक मध्यम ऊंचाई का पर्णपाती वृक्ष है। यह वृक्ष मुख्यतः सूखे प्रदेशों में आमतौर पर पाया जाता है और पंजाब के मैदानों तथा प्रायद्वीप के सूखे जंगली क्षेत्रों में सभी जगह पाया जाता

है। इसे हिंदी में सफेद कीकर, बंगाली में सफेद बबूल, मराठी में हेबर, गुजराती में हारीबावल, तेलगू में तेल्लातुम्मा, तमिल में बेल्वायलम, कन्नड़ में विलीजाली एवं मलयालम में पट्टाचर्यम कहते हैं यह बंजर भूमि के लिए उपयोगी वृक्ष है। इसकी लकड़ी मजबूत, कठोर व दृढ़ होती है, जिसका उपयोग साधारणतः कृषि औजारों, तेल घानियों, बैलगाड़ियों और उनके पहियों आदि में किया जाता है। इसे ईंधन के रूप में भी काम में लिया जाता है। इसकी छाल चर्मशोधन में काम आती है। इसकी छाल को पानी में डालने के बाद पीटने पर रेशे निकलते हैं जिनसे मछली पकड़ने के जाल व रस्सियां बनाई जाती हैं। चीनी एवं ताड़ के रस से शराब बनाने में भी इसका उपयोग होता है। इसकी गोंद देशी चिकित्सा में इस्तेमाल होती है। ताजी फलियां एवं बीज खाये जाते हैं। अकाल के दिनों में इसकी छाल पीसकर आटे में मिलाते हैं। साधारणतः इसकी फलियां पशुओं को खिलाई जाती हैं।

**अकेसिया सुंड्रा** : इसे पहले अकेसिया कटेचू की किस्म समझा जाता था परंतु अब इसे अलग प्रजाति माना गया है। यह मध्यम आकार का वृक्ष है जो कोयंबटूर, डेकन, कनारा, कोंकण, गुजरात और राजस्थान में मिलता है। यह पथरीली भूमि में, सूखे स्थानों पर पनपता हुआ मिलता है। इसे मराठी में लालखैर, तेलगु में सुंद्रा एवं व्यापारिक रूप में रेड कच कहते हैं। इसकी लकड़ी कड़ियों, खंभों एवं कृषि औजारों में काम आती है। मुंबई में इसका "रेड अबोनी" के व्यापारिक नाम से व्यापार होता है।

**अकेसिया सूमा** :- यह मंझले आकार का वृक्ष बंगाल, बिहार व भारतीय प्रायद्वीप के पश्चिमी भागों में विशेषतः आर्द्र स्थानों में मिलता है। इसे बंगाली में सईकांटा, मराठी में कमटिया, तेलगू में तुल्ल सुंद्रा व कन्नड़ में मुगाली के नाम से भी जाना जाता है। इसे ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है। इसके अतिरिक्त इस वृक्ष की छाल का उपयोग रंगाई के लिए भी किया जाता है।

**अकेसिया लेंटीकुलेरिस** :- यह छोटा वृक्ष उप हिमालय क्षेत्र में कुमायूं से सिक्किम तक पाया जाता है। यह भारतीय प्रायद्वीप के सूखे क्षेत्रों एवं श्रीलंका में भी मिलता है। लकड़ी का उपयोग बैलगाड़ी एवं कृषि औजारों में किया जाता है एवं कुछ मात्रा में गोंद भी प्राप्त किया जाता है।

**अकेसिया लेट्रोनम** :- यह छोटी कंटीली झाड़ी है। इसे तमिल में करोडाई एवं तेलगू में पाकि तुम्मा भी कहते हैं। यह डेकन के सूखे भागों में आमतौर पर पाया जाता है। यह भू-क्षरण रोकने एवं छोटे पौधों को पशुओं से बचाने में भी उपयोगी है। इसकी लकड़ी ईंधन में एवं तंबुओं के खूंटे बनाने के काम में ली जाती है।

**अकेसिया होलोसेरीशिया** :- यह मुख्यतः आस्ट्रेलिया, अफ्रीका एवं भारतीय उपमहाद्वीप में पायी जाने वाली मध्यम ऊंचाई वाली झाड़ी है। यह विशेष रूप से पथरीली, अम्लीय एवं कम उपजाऊ मिट्टी में अच्छी वृद्धि करता है। ईंधन के रूप में, चारे के रूप में एवं भू-क्षरण रोकने में यह उपयोगी है।

**अकेसिया अलविड़ा** :- मुख्यतः अफ्रीका एवं इज़राईल के इस वृक्ष की ऊंचाई 20 मीटर तक हो सकती है। यह शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। इसका उपयोग मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में, छाया करने में, बाड़ लगाने में, पत्तियों को चारे के रूप में एवं टेनिन तथा दवाइयों के रूप में भी किया जाता है।

**अकेसिया सियाल** :- यह मध्यम ऊंचाई का 9 से 10 मीटर ऊंचा वृक्ष मुख्यतः उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, पश्चिमी सोमालिया, दक्षिण मिश्र की नीलघाटी एवं दक्षिण जांबिया में पाया जाता है। इसकी लकड़ी ईंधन के रूप में, फल व पत्तियां चारे के रूप में तथा छाल टेनिन के रूप में काम आती है।

**अकेसिया कॉमबागी** :- यह 10-12 मीटर ऊंचाई का वृक्ष मुख्यतः पूर्वी, मध्य एवं पश्चिमी आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, परसियन गल्फ एवं भारत में पाया जाता है। जलाऊ लकड़ी के रूप में, चारकोल, बाड़ खंभ, छोटी

विभूषक वस्तुएं बनाने में इसका उपयोग होता है ।

**अकेसिया मिअर्नसाई** :- यह 25 मीटर तक लंबाई वाला वृक्ष है जो आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, इंडोनेशिया, भारत, श्रीलंका, दक्षिणी, मध्य एवं पूर्वी अफ्रीका और मध्य अमेरिका तक पाया जाता है । यह अम्लीय भूमि में भी जीवित रह सकता है । इसकी लकड़ी जलाने में, चारकोल के रूप में, पत्तियां हरी खाद के रूप में तथा छाल टेनिन के रूप में काम आती है । इसके अतिरिक्त यह मृदा अपरदन नियत्रंण में भी सहायक है ।

**अकेसिया ब्राकिस्टोकिया** :- यह आस्ट्रेलिया के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क भागों में पायी जाने वाली झाड़ी है । यह शुष्क पथरीली या बंजर क्षेत्रों में आसानी से उगती है । इसे छाता मुलगा भी कहते हैं । इसकी लकड़ी कठोर, भारी एवं टिकाऊ होती है । लकड़ी जलाने में एवं विभूषक वस्तुएं बनाने में, पत्तियां चारे के रूप में एवं बीज आदिवासियों द्वारा खाने के काम आते हैं ।

**अकेसिया साइक्लोप्स** :- यह मुख्यतः आस्ट्रेलिया के पश्चिमी भाग में प्रायः समुद्र के किनारे बालू मिट्टी में एक सदाहरित 2-3 मीटर ऊंची झाड़ी के रूप में उगता है । इसकी उच्च गुणवत्ता की लकड़ी जलाने के काम में, पत्तियां चारे के रूप में तथा बीज एवं तेलीय डंठल जंगली जानवरों द्वारा खाये जाते हैं ।

**अकेसिया टोरटीलिस** :- यह अफ्रीका, इज़राईल एवं भारत में पाया जाने वाला वृक्ष है । यह 4-15 मीटर ऊंचा हो सकता है । इसे भारत में इज़राइली बबूल के नाम से भी जाना जाता है । यह क्षारीय भूमि, बालु मिट्टी एवं 12 माह सूखे रहने वाले स्थानों पर भी तेजी से वृद्धि करता है । यह नत्रजन स्थिर करने की क्षमता रखता है, साथ ही रेतीले टिब्बों के स्थिरीकरण में भी सहायक है । इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी जलाने में, पत्तियां व फलियां चारे के रूप में भी काम आती हैं ।

**अकेसिया केटेचू** :- इसे खैर भी कहा जाता है । यह मुख्यतः भारत एवं बर्मा में मिलता है । यह मध्यम ऊंचाई वाला वृक्ष है । यह सभी प्रकार की मृदाओं (बलुई, बंजर, पथरीली, जलोद व काली मिट्टी) में उग सकता है । इसकी अंतकाष्ठ से कत्था बनाया जाता है । इसकी लकड़ी ईंधन व कोयले के लिए, पत्तियां चारे के रूप में व लकड़ी कृषि औजारों, बैलगाड़ी की धुरी व पहिये बनाने में काम आती है ।

**अकेसिया एन्यूरा** :- यह आस्ट्रेलिया में मुख्यतः पाया जाता है । इसे मुलगा भी कहा जाता है । यह 10-15 मीटर ऊंचा वृक्ष है जो अम्लीय बालू या बलुई दुमट मृदाओं में हो सकता है । लकड़ी जलाने व चाकोल में बाड़ बनाने में तथा पत्तियां चारे के रूप में तथा छाया के लिए काम आती हैं ।

**अकेसिया सेनेगल** :- यह मुख्यतः अफ्रीका (सेनेगल, सूडान), पाकिस्तान एवं भारत में पाया जाता है । भारत में यह दक्षिणी पंजाब, उत्तरी अरावली की पहाड़ियों और राजस्थान में मिलता है । यह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रहने की क्षमता रखता है । इसे राजस्थान में "कूमट" कहते हैं । इससे व्यापारिक महत्व का उत्पाद "गम अरेबिक" प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त इसकी लकड़ी जलाने व बाड़ लगाने में, बीज सब्जियों के रूप में, पत्तियां चारे के रूप में काम आती है । गोंद व अन्य उत्पादों के अतिरिक्त यह कृषि वानिकी एवं बालू टिब्बा स्थिरीकरण करने में एक महत्वपूर्ण उपयोगी वृक्ष है । राजस्थान में एक प्रसिद्ध सब्जी "पचकूटा" में इसके बीज प्रयुक्त होते हैं ।

**अकेसिया निलोटिका** :- यह मुख्यतः दक्षिण व मध्य एवं पूर्वी अफ्रीका, सहेलियन अफ्रीका, पश्चिमी अफ्रीका व भारतीय उपमहाद्वीप में पाया जाने वाला 20 मीटर तक ऊंचाई वाला उपयोगी वृक्ष है । यह लवणीय एवं क्षारीय भूमि में भी उग सकता है । इसकी लकड़ी जलाने में, अनेक प्रकार के कृषि उपकरण बनाने के लिए, पत्तियां, फलियां चारे के रूप में, छाल से टेनिन एवं गोंद तथा कृषि वानिकी एवं मृदा स्थिरीकरण में उपयोग किया जाता है । यह एक औषधीय महत्व का भी वृक्ष है ।

इस प्रकार अकेसिया की अनेक प्रजातियां कई प्रकार के उपयोग में आती हैं ।

**एन. के. बौहरा**
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान (आफरी),
जोधपुर (राज.)

## 2. प्राचीन भारत में धातुकर्म तकनीकी तथा अभियांत्रिकी का विकास

ईसा से प्राय: दो हजार वर्ष पूर्व ऋग्वेद काल में आर्यों के वस्त्र प्रमुखत: ऊनी होते थे तथा वे वनस्पतियों से बनाये गये लाल, बैंगनी तथा भूरे रंगों से रंगे जाते थे। अर्थात उस काल में वनस्पतियों से रंग बनाने की विधियां विकसित की जा चुकी थीं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में पेय पदार्थों में बहुधा, किण्वित पेय "सोमरस" का उल्लेख मिलता है। यह सोम पौधे से बनाया जाता था। इसमें ही दूध से किण्वित दही का उल्लेख भी मिलता है।

ये प्राचीनतम आर्य धातुओं में सुवर्ण, रजत, ताम्र तथा मिश्र धातु में कांसे का उत्पादन तथा उपयोग जानते थे। शीघ्र परिवहन हेतु तथा युद्धों में वे पहिये वाले रथों का उपयोग भी करते थे।

इसके पश्चात् शुक्ल यजुर्वेदकाल (10-11 शती ई.पू.) में वे छह धातुओं से परिचित हो गये ये, जिनके नाम थे-अयस (सुवर्ण), हिरण्य (रजत), लोह (ताम्र), श्याम (लोहा), सीस (सीसा) तथा त्रपु (टिन)।

प्राचीन उन्नत भारतीय धातुकर्म, तकनीकी तथा अभियांत्रिकी का एक अद्वितीय उदाहरण है– दिल्ली में कुतुब मीनार के पास खड़ा प्रसिद्ध लौह स्तंभ। यह ईसा की चौथी शती के प्रारंभ में राजस्थान में पुष्करण के राजा चंद्रवर्मन के राज्यकाल में बनाया गया ता। यही उस स्तंभ पर उत्कीर्णित भी है। परंतु बाद में 1050 में जब राजा अनंगपाल ने दिल्ली नगर का पुनर्निर्माण किया तब इसे वहां स्थापित कर दिया।

यह लौह स्तंभ लगभग आठ मीटर ऊंचा है। नीचे इसका व्यास लगभग 41 सेंटीमीटर तथा ऊपर लगभग 30 सेंटीमीटर है। ऊपर उत्कीर्णित भाग लगभग एक मीटर लंबा है। इसका भार लगभग छह टन आंकलित किया गया है।

रसायनों द्वारा स्तंभ की वस्तु का विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि यह शुद्ध लोहे का बना है। इसका आपेक्षिक घनत्व 7.81 पाया गया। विश्लेषण के अनुसार इसमें लोहा = 99.720, कार्बन = 0.080, सिलीकन = 0.046, गंधक = 0.006 तथा फास्फोरस 0.114 प्रतिशत पाये गये।

यह एक विचित्र परंतु सत्य तथ्य है कि सोलह शताब्दियों तक वर्षा तथा वायु के आघात सहने पर भी इस पर जंग नहीं लगा है।

विश्व के विशेषज्ञ मानते हैं कि यह स्तंभ प्राचीन भारतीयों के अद्भुत धातुकर्म तथा अभियांत्रिक योग्यता का विवादहीन स्थायी प्रमाण है, जिस पर हम गर्व कर सकते हैं।

**डॉ. बाल गोविंद जायसवाल**

94/16 ईदगाह हिल्स, मेन रोड, भोपाल (म. प्र.)

## 3. मच्छरों को मारने में जैव नियंत्रण विधि का प्रयोग

जैव नियंत्रण विधि से विकसित किये गये सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा मलेरिया, फाइलेरिया और डेंगू बुखार फैलाने वाले "जीवट" मच्छरों को नष्ट किया जा सकेगा। क्योंकि अब डी. डी. टी. और वी. एच. सी. जैसे मच्छरमार कीटनाशक अब बेअसर नजर आने लगे हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विकासशील देशों में 41.5 प्रतिशत मौतें मलेरिया, फाइलेरिया एवं डेंगू बुखार आदि के कारण होती हैं जिनमें से मलेरिया तीसरा सबसे प्रमुख जानलेवा रोग है जिससे 20 लाख से अधिक लोगों की मृत्यु होती है। मलेरिया के अलावा लीश मैनियता डेंगू रक्तस्रावी बुखार जापानी मस्तिष्क शोध और लसीका फाइलेरिया रोग जन स्वास्थ्य के लिए गंभीर चुनौती बने हुए हैं। मच्छरों पर नियंत्रण पाकर इन रोगों पर भी काबू पाया जा सकता है।

प्लासमोडियम फैल्सिपेरम नामक परजीवी से होने वाले सेरेबल मलेरिया से गत वर्ष एक हजार पांच सौ से भी अधिक लोगों की मृत्यु हुई जबकि 1976 में यह संख्या 50 थी। मलेरिया के दस प्रतिशत मामले शहरों में ही होते हैं। भारत में कई कारणों से अभी तक मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों के नियंत्रण के लिए जीवाणु का इस्तेमाल शुरू नहीं हुआ है जबकि विकसित देशों में इसका

इस्तेमाल शुरू हो चुका है ।

वैज्ञानिकों द्वारा बेसिलस पुरंजिएसिस और बेसिलस स्फेरिक्स से ऐसा जीव विष प्राप्त किया जा सकता है जो एनाफिलीज एंव क्यूलेक्स मच्छरों तथा काली मक्खियों को मारने में कारगर है । मलेरिया फैलाने में एनाफिलीज मच्छर मुख्य तौर पर जिम्मेदार होते हैं । बेसिलस स्फेरिक्स को क्यूलेक्स मच्छर के नियंत्रण में अत्यंत प्रभावी माना जा रहा है । उष्णकटिबंधीय देशों में क्यूलेक्स जाति के मच्छर लसीका फाइलेरिया रोग वाहक है । भारत सहित अनेक देशों में इन दोनों जीवाणुओं से बने पाउडरों और घोलों का परीक्षण करने पर पाया गया कि इनका नियंत्रित छिड़काव करके मलेरिया और फाइलेरिया जैसे फैलने वाले रोगों पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है ।

एनाफिलिज गैम्बिपाई जाति के मच्छरों पर नियंत्रण रखने के लिए 15 दिन के अंतराल पर बेसिलस स्फेरिक्स से बने पाउडर का छिड़काव किया गया जिसके बाद काटने वाले मच्छरों में 13.6 प्रतिशत की कमी देखी गयी । नदी तालाबों, बांधों और गड्ढों में भी स्फेरिक्स के पाउडर या घोल का छिड़काव करके मनुष्य को काटने वाले वयस्क क्यूलेक्स क्विकीफेसिएटस की संख्या में कमी लायी जा सकती है ।

जैव नियंत्रण विधि पर खर्च का आंकलन करने के लिए भी भारत और विदेशों में कई अध्ययन किये गये हैं । पांडिचेरी के रोगवाहक नियंत्रण अनुसंधान केंद्र के आंकड़ों से पता चलता है कि बेसिलस स्फेरिक्स के पाउडर या घोल की मदद से क्यूलेक्स क्विकीफेसिएटस मच्छर के प्रकोप पर एक वर्ष तक नियंत्रण रखने में प्रति हेक्टेयर 14 हजार 807 रुपये खर्च आता है जैव नियंत्रण विधि का इस्तेमाल शुरू करने तथा उसको बढ़ावा देने के लिए लोगों में उसके प्रति जागरूकता लानी होगी तथा संबद्ध अधिकारी को विश्वास में लेना होगा ।

मच्छरों के नियंत्रण की परंपरागत रासायनिक विधि की तुलना में जैव नियंत्रण की नयी विधि फिलहाल अधिक खर्चीली पड़ रही है । यही कारण है कि योजनाकार और नीति निर्माता रासायनिक नियंत्रण की विधि को बदलने के पक्ष में नहीं हैं । जबकि अमेरिका और जर्मनी जैसे विकसित देशों में जैव नियंत्रण विधि का व्यापक इस्तेमाल हो रहा है । इसी कारण मलेरिया और फाइलेरिया जैसे मच्छरों से फैलने वाले रोगों पर बड़ी सीमा तक नियंत्रण कर लिया गया है ।

## 4. अब घोंघे से पौष्टिक व स्वादिष्ट खाद्यपदार्थ बनेंगे

भारतीय वैज्ञानिकों ने पर्यावरण प्रदूषण और पर्णकृमि रोग फैलाने के जिम्मेदार समझे जाने वाले घोंघे से अत्यंत पौष्टिक व स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ बनाने में सफलता हासिल की है । घोंघे से बने मांसाहारी खाद्य पदार्थ की फ्रांस और कई अन्य देशों में मेंढ़क की टांग की तरह भारी मांग है । पश्चिम बंगाल के बैरकपुर स्थित केंद्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान (सी. आर. आर. आई.) के वैज्ञानिकों ने समुद्र, तालाबों और नदियों में भारी संख्या में पाये जाने वाले घोंघों को जमा करने तथा प्रोसेस करके खाये जाने लायक पौष्टिक मांस बनाने की प्रौद्योगिकी विकसित की है ।

घोंघे के मांस से बने खाद्य पदार्थ प्रोटीन से भरपूर होते हैं हालांकि समुद्र तट के आसपास रहने वाले लोग प्राचीन काल से ही स्वादिष्ट भोजन के रूप में घोंघे का मांस खाते रहे हैं । लेकिन पर्णकृमि रोग नियंत्रण कार्यक्रम के तहत इन घोंघों को हाथ से चुनकर नष्ट कर दिया जाता रहा है । लेकिन भारतीय वैज्ञानिकों को इस सफलता की बदौलत अब प्रोटीन के इस अत्यंत सस्ते स्रोत को न केवल नष्ट किये जाने से बचाया जा सकेगा बल्कि उनके मांस के निर्यात से भारी विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकेगी ।

जमीन पर रहने वाले और उभयचर किस्म के अनेक तरह के घोंघे मनुष्यों और पशुओं में फीता कृमि को फैलाने के लिए जिम्मेदार हैं । इस तरह ये घोंघे गांवों और शहरों की झुग्गी झोपड़ियों में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक भी साबित हो सकते हैं । घोंघे

को घोंघा नाशक रसायन (मौलस्किसाइड्स) से नष्ट करने के बजाय उनको प्रोसेस करके खाद्य पदार्थ के रूप में सेवन किया जाना चाहिए । भारतीय वैज्ञानिकों की ओर से विकसित प्रोसेस प्रौद्योगिकी के माध्यम से घोंघे में मौजूद फीताकृमि के अंश को हटाया जा सकता है और इस तरह फीता कृमिरोग पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है । यदि मौलस्कसाइड रसायनों से घोंघे को नष्ट किये जाने से पर्यावरण प्रदूषण फैल सकता है और जीव जंतुओं व वनस्पतियों के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है तो प्रोसेस किये हुए घोंघे को पशुओं व मुर्गियों को खिलाया जा सकता है ।

भारतीय वैज्ञानिकों ने बड़े-बड़े आकार के अफ्रीकी घोंघे (एचाटिना फ्यूलिका) से मांस प्राप्त करने की तकनीक विकसित की है । यह तकनीक भारतीय निर्यातकों व व्यापारियों को हस्तांतरित की जा चुकी है । एचाटिना फ्यूलिका अर्थात अफ्रीकी घोंघे को आम तौर पर फसल नाशी कीट माना जा रहा है । ये पौधे मद्रास शहर के उन बंगलों के आसपास भी पलते बढ़ते देखे गये हैं जिसके चारों तरफ बाग बगीचे होते हैं और इनके खाने के लिए रसोई घर के कचरे उपलब्ध होते हैं । जिन बाग बगीचों की बहुत दिनों से देखभाल नहीं हुई हो वहां भी ये पैदा होते हैं । सुबह अथवा शाम को वर्षा होने के बाद ये घोंघे बड़े-बड़े झुंड बनाकर सड़कों पर आ जाते हैं और सड़क दुर्घटना का कारण बनते हैं । पंतनगर विश्वविद्यालय परिसर में वर्षा के बाद काफी संख्या में घोंघों को देखा जा सकता है ।

विशेष विधि से बनायी गयी भूमि पर अफ्रीकी घोंघों की वृद्धि अत्यधिक तेज होती है । ये घोंघे पालक, राख, बैगन और घास फूस व कटी हुई सब्जियों से युक्त रसोई घर के कचरे के ढ़ेर पर रहते हैं । करीब 150 दिनों में एक-एक घोंघे का वजन 61.5 ग्राम हो जाता है । कृषि कीट माने जाने वाले इन घोंघों की विदेशी बाजार में भारी मांग है । कोच्चि स्थित समुद्री उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण एम. पी. ई. डी. ए. के अनुसार केवल फ्रांस में ही बीस हजार टन खाने योग्य घोंघों की मांग है । कोच्चि स्थित केंद्रीय समुद्री मत्स्य अनुसंधान संस्थान और मद्रास के कोवालम स्थित संस्थान के केंद्र में अफ्रीकी घोंघे के अलावा घोंघे की अन्य प्रजातियों जैसे मेरेटिक्स टोचयस रेडियेटस और पेर्ना बिरिडिस से बड़े पैमाने पर खाने लायक मांस का उत्पादन किया जा रहा है । भारतीय वैज्ञानिकों को प्रदूषण व वर्णकृमि रोग फैलाने वाले घोंघे से पौष्टिक खाद्य बनाने में सफलता मिली है । इसको निश्चय ही एक महत्वपूर्ण खोज कहा जायेगा ।

**डॉ. आर. एस. सेंगर**
(सी. वी. एस. एच.)
गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पंतनगर - 263145

## 5. मां के कार्यकलापों को पहचानता है गर्भस्थ शिशु

कुछ नये चिकित्सा विज्ञान के शोधों से पता चला है कि किसी महिला के कार्यकलापों का प्रभाव उसके गर्भस्थ शिशु पर भी पड़ता है तथा व्यक्तित्व की विशेषताएं और लक्षण, गर्भावस्था में ही विकसित होने लगते हैं । लगभग चार दशक पूर्व अमेरिका के नॉर्थ कैरोलिना विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने 16 अजन्में शिशुओं को कंपायमान अनुभूति के प्रति पैर को चलाकर प्रतिक्रिया प्रदर्शित करना सिखा दिया था । साधारणतया अजन्मा शिशु इतनी हल्की अनुभूति की ओर ध्यान नहीं देता । लेकिन शोधकर्ताओं द्वारा अपने पात्रों को उनकी माताओं से कुछ फुट की दूरी पर जोरदार आवाज करके उनकी सीखी हुई प्रतिक्रिया उत्पन्न की । आवाज के तुरंत बाद उन्होंने कंपन आरंभ किया । धीरे-धीरे यह स्थिति आ गयी कि बिना आवाज किये कंपन आरंभ करने पर अजन्मा शिशु पैर चलाने लगा था ।

हमारी नापसंद, हमारे भय आदि विशिष्ट आचरण जो हमारे व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं, किसी सीमा तक गर्भ में प्राप्त प्रतिबंधित शिक्षा का परिणाम होते हैं । उदाहरणार्थ वह कौन-सी बात है जो अजन्में शिशु में दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ने वाली गहरी चिंता पैदा कर

दे ? अध्ययनों से पता चला है कि मां के सिगरेट पीने से भ्रूण पर गंभीर प्रभाव पड़ते हैं। जैसे उसके दिल की धड़कन सामान्य से कहीं अत्यधिक तेज हो जाती है, ऑक्सीजन की सप्लाई घट सकती है और जन्म के समय शिशु का वजन कम हो जाता है। मां के सिगरेट पीने से भ्रूण पर जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ते हैं, वे संभवत: और भी अधिक हानिकारक होते हैं, क्योंकि ऑक्सीजन की कमी उसे अनिश्चतता और भय की चिरकालिक स्थिति में धकेल देती है।

मां के दिल की धड़कन का भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। गर्भस्थ शिशु को मां के दिल की धड़कन की आश्वस्त करने वाली ताल अपने संसार का एक प्रमुख तारापुंज मालूम पड़ती है। कुछ वर्ष पहले इसके प्रदर्शन ने अनुसंधानकर्ताओं को किसी सीमा तक आश्चर्य में डाल दिया। एक अस्पताल ने मां के दिल की धड़कन का टेप बजाया। टेप सुन कर शिशुओं का व्यवहार ही बदल गया। यह देखकर टेप बजाने के दिन निश्चित किये गये। अंतत: उनकी भूख बढ़ गयी, वजन ज्यादा हो गया, वे ज्यादा सोये, बेहतर ढंग से सांस ली, कम रोये और कम बीमार पड़े।

ऑस्ट्रिया के साल्जबर्ग विश्वविद्यालय के डॉ. गेरहव्ट राटमैन ने गर्भावस्था से लेकर प्रसव तक 141 महिलाओं का अध्ययन किया। उनका निष्कर्ष था कि बच्चे के जन्म पर एकमात्र प्रभाव मां के रवैये का पड़ता है। अध्ययन के लिए उन्हें चार विभिन्न भावना वर्गों में बांटा गया। आदर्श माताएं चेतन और अचेतन दोनों अवस्थाओं में अपने अजन्में शिशु को चाहती थीं। उनका प्रसव बहुत ही सहज तथा कष्ट रहित रहा और उनकी संतान शारीरिक तथा भावनात्मक रुप से स्वस्थ थी। नकारात्मक मनोवृत्ति वाली विकट माताओं के सामने गर्भावस्था के दौरान चिकित्सा संबंधी भयंकर समस्याएं पैदा हुईं और उन में समय से पहले, कम वजन तथा भावनात्मक दृष्टि से असंतुलित शिशुओं की जन्म दर सब से अधिक पायी गयी।

उभयवृत्ति वाली माताएं ऊपर से प्रसन्न दिखाई देती थीं। उनके अजन्मे शिशुओं ने उनकी वह अवचेतन उभयवृत्ति ग्रहण कर ली जिसका पता राटमैन के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से लगा था। जन्म के समय बहुत अधिक संख्या में ये शिशु व्यवहार संबंधी तथा पेट और आंतों की समस्याओं से ग्रस्त थे। उदासीन स्वभाव की माताओं में संतान न चाहने के अलग-अलग कारण थे। उनके सामने व्यवसाय संबंधी या आर्थिक समस्याएं थीं और वे इसीलिए अभी मां बनने के लिए तैयार नहीं थीं।

अजन्में शिशु पर पिता का क्या प्रभाव पड़ता है ? एक मां पर अपने पति की चिंता जितना गहरा असर डालती है, उतनी कोई और बात नहीं। एक अध्ययन से पता चलता है कि क्लेशपूर्ण विवाह बंधन में बंधी नारी की संतान अधिकतर मानसिक रुप से विकृत होती है। सुखी दांपत्य जीवन बिताने वाली स्त्री के साथ ऐसी आशंका कम ही होती है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि गर्भस्थ शिशु पिता की आवाज को सुनकर शारीरिक रुप से प्रतिक्रिया प्रकट कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि वह रो रहा है तो पिता की आवाज सुनते ही चुप हो जायेगा। क्योंकि जानी-पहचानी आवाज को सुनकर शिशु को विश्वास हो जाता है कि वह सुरक्षित है। आज से बीस वर्ष पूर्व एक फ्रांसीसी लेखक एफ लब्बाये ने अपनी पुस्तक 'बर्थ विदाउट वायलेंस' में लिखा कि किसी गर्भस्थ शिशु को उसी तरह प्यार और परिचर्या की आवश्यकता होती है, जिस तरह जन्म लेने के बाद होती है। गत तीन-चार दशकों में शारीरिक विज्ञान तंत्रिका विज्ञान, जीव रसायन और मनोविज्ञान के शोधकर्ताओं ने यह पता लगाया है कि जन्म ले रहा शिशु वास्तव में कोमल, स्नेहपूर्ण और प्यार की देख-देख का पात्र होता है और ये सब बातें गर्भस्थ शिशु पर छठें महीने से लागू होने लगती हैं।

मिआमी विश्वविद्यालय के एक शोधकर्ता प्रो. हेनरी इबी अपने अध्ययनों का हवाला देते हुए बताते हैं कि गर्भाशय में भ्रूण छठे महीने से साफ-साफ सुनने लगता है। एक चौंकाने वाली बात तो यह है कि भ्रूण में मां

की आवाज की प्रतिक्रिया भी होती है छः महीने का भ्रूण संगीत का आनंद लेता है।

इन नये शोधों ने कुछ राहें हमें अवश्य दिखा दी हैं। अपने भावी शिशु को प्रभावित करने और उससे घनिष्टता स्थापित करने का एक बेहतर अवसर होता है - जब शिशु गर्भ में हो। केवल अपने व्यवहार और रहन-सहन से माता-पिता अपने शिशु को एक बेहतर जीवन की राह दिखा सकते हैं।

**राजेंद्र कुमार राय**

डी-707, सरस्वती विहार. दिल्ली - 110034

## 6. विकिरणोपचारीय चिकित्सा के कुछ पहलू

चिकित्सीय समस्याओं के लिए भौतिकी के सिद्धांतों का प्रयोग एक लंबे अरसे से हो रहा है। उदाहरण के लिए 1584 में गैलीलियो ने पेंडुलम के सिद्धांत का आविष्कार किया था। उसने एक लटकते हुए लैंप की गति का समय अपनी नाड़ी की गति से निश्चित किया। बाद में उसने किसी मरीज की नाड़ी की गति की दर को पता करने के लिए एक साधारण पेंडुलम के प्रयोग का सुझाव दिया। इस प्रकार उस समय से ही चिकित्सीय भौतिकी का वैद्यकी में प्रयोग प्रारंभ हो गया था। चिकित्सीय भौतिकी नाम का प्रयोग सर्वप्रथम 1825 में नील आर्नोट ने किया। प्रारंभिक वर्षों में मूल भौतिकी में होने वाली अनेक खोजों का वैद्यकीय प्रयोग किया जाने लगा। 1895 में रॉन्जन ने एक्स किरणों का आविष्कार किया और 1898 में मेरी क्यूरी ने विकिरण को खोज निकाला।

रॉन्जन का यह कार्य उसकी भौतिक शास्त्र की प्रयोगशाला में संपन्न हुआ। यह एक दिलचस्प बात है कि जे. सी. एम. ब्रेनटानो, शिकागो में नॉर्थवेस्ट यूनिवर्सिटी के लोजी प्रोफेसर में से थे जो रॉन्जन के बाद भौतिकशास्त्र में पीएच. डी. के द्वितीय अंतिम छात्र थे। रॉन्जन की खोज ने शीघ्र ही चिकित्सा के क्षेत्र में अपना स्थान बना लिया। 22 दिसंबर 1895 को रॉन्जन ने अपनी पत्नी के हाथ का चित्र उतारा। नैदानिक ध्येय के लिए एक्स किरणों का यह प्रथम प्रयोग था। उपचार के लिए एक्स किरणों का प्रयोग बाद में शिकागो के चिकित्सक ई. ग्रुबे के द्वारा किया गया जिन्होंने जनवरी 1896 में कैन्सर के दो मरीजों का विकिरणोपचार किया। यही वह वर्ष था जब बैक्वेरल ने प्राकृतिक विकिरणधर्मिता की खोज की। दो वर्ष बाद मैडम क्यूरी ने जो बैक्वेरल की प्रयोगशाला में ही काम कर रही थीं, विकिरण की खोज की। उसने और उसके पति पियरे क्यूरी ने शीघ्र ही नये तत्वों से शरीर पर होने वाले विकिरणीय प्रभावों का ज्ञान प्राप्त किया और चिकित्सकों को विकिरण की नलिकाएं दीं जिनका उन्होंने मानव शरीर पर प्रयोग किया।

1901 में एक्सरे की खोज के लिए रॉन्जन को भौतिकी का प्रथम नोबेल पुरस्कार दिया गया। चिकित्सा के क्षेत्र में विकिरण और क्ष-किरणों के प्रयोग का चमत्कारिक प्रभाव पड़ा। 1905 में ही जर्मनी में हैडिलबर्ग के मेडिसन स्कूल ऑफ दि यूनिवर्सिटी में विकिरणोपचार को एक अलग विभाग का स्तर दिया गया जो दुनिया का सबसे पुराना विभाग है। 1913 आयुर्भौतिकी के लिए महत्वपूर्ण वर्ष था। इस वर्ष अमेरिका में हारवर्ड यूनिवर्सिटी के अस्पताल में पहली बार डॉ. विलियम डोना को आयुर्भौतिकीविद के रूप में रखा गया। डॉ. डौना ने मरीजों के उपचार में रेडियम व रेडॉन के प्रयोग से संबंधित समस्याओं पर काम किया। एक्सरे उत्पादक नलिका पर लगे विभव व उत्सर्जित एक्स किरणों की न्यूनतम तरंगदैर्घ्य में संबंध स्थापित करने के आविष्कार से निम्न सूत्र मिला जो आज डान हान्ट के नियम से जाना जाता है :

$$\lambda_{min} = 12.4 / E(KeV)$$

जहाँ $\lambda_{min}$ न्यूनतम तरंग दैर्घ्य ऑन्गस्ट्राम में है।

जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी में कूलिज ने एक्स-किरण नलिकाओं के लिए गर्म फिलामेन्ट का विकास किया जिससे नलिकाओं में गैटरिंग पद्धति से उच्च निर्वात करना संभव हो सका। गैस भरी क्ष-किरण नलिकाओं की अपेक्षा यह एक बड़ी सफलता सिद्ध हुई। आजकल केवल कूलिज

नलिकाएं ही आवश्यक तौर पर एक्स किरण नलिकाओं के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं। उसी वर्ष 1913 में विकिरण की गुणवत्ता बनाने के लिए क्रिस्टन ने अर्धमूल्य सतह के विचार को प्रतिपादित किया।

1934 तक फ्रांस में क्यूरी और जेलियट ने कृत्रिम विकिरणधर्मिता का उत्पादन कर लिया था। उन्होंने अल्फा किरणों से फलोरीन, एल्युमिनियम और सोडियम जैसे तत्वों पर बमबारी की जिसके परिणामस्वरूप न्यूट्रॉन तथा धनात्मक और ऋणात्मक इलेक्ट्रॉन का उत्सर्जन हुआ। बेरीलियम को छोड़ कर सभी धातुओं के प्रोटॉन का भी उत्सर्जन किया जा सका। तभी इटली में फर्मी ने नये विकिरणधर्मी समस्थानिक का उत्पादन करने के लिए न्यूट्रॉन का प्रयोग किया। फर्मी ने तर्क दिया कि न्यूट्रॉन आवेशरहित होता है। अतः जब यह धनात्मक आवेशित नाभिक की ओर जायेगा, तो कूलंब प्रभाव से मुक्त रहेगा रेडियम, बेरीलियम न्यूट्रॉन स्रोत का प्रयोग करके फर्मी और उसके सहयोगियों ने विभिन्न तत्वों पर बमबारी की और कई नये समस्थानिकों को प्राप्त किया।

1937 में विकिरण विज्ञान की पाँचवी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में गामा या क्ष-किरण के लिए रॉन्जन को मात्रा की अंतर्राष्ट्रीय इकाई के रूप में स्वीकार किया गया। बाद में इसे क्ष-एवं गामा-किरणों के उद्भास की विशेष इकाई माना गया।

लगभग 50 वर्ष पूर्व चिकित्सीय भौतिकी के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण विकास हुए। इलेक्टॉन त्वरक की कुछ पद्धतियों का विकास, जिसके प्रयोग ने विकिरणोपचार के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी। यह वर्ष कई नये कणिक त्वरकों के डिजाइन एवं चिकित्सीय अनुप्रयोग का प्रारंभिक काल था।

इलिनॉय (Illinois) यूनिवर्सिटी में कार्य करते समय 1939 तक फर्स्ट ने बीटाट्रान इलेक्ट्रॉन त्वरक का आविष्कार कर लिया था। द्वितीय विश्व युद्ध के समय, बीटाट्रान का विकिरण चित्रण के लिए प्रयोग किया गया। 1946 के स्कान्स और लान्जी ने मुक्त इलेक्ट्रॉन पुंज का कैन्सर के मरीजों पर सीधे प्रयोग करने के उद्देश्य से बीटाट्रान से इलेक्ट्रॉन को बाहर निकाल लिया था। इसमें त्वचा से लेकर अच्छी गहराई तक के कैन्सर थे।

1948 में पहली बार ग्लीओब्लास्टोम मल्टीफॉर्म, एक प्रकार के मस्तिष्क ट्यूमर के मरीज के इलाज के लिए बीटाट्रान से 20 एम. इ. वी. किरण पुंज का प्रयोग किया था। 1950 में शिकागो में यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉय चिकित्सा स्कूल ने मात्र कैन्सर उपचार के लिए बीटाट्रान को प्राप्त किया जिससे 250 के. इ. वी. क्ष-किरण की अपेक्षा 20 एम. इ. वी. की क्ष-किरण के लाभ ले सके, जैसे (1) अधिक गहराई तक उपचार योग्य मात्रा प्राप्ति (2) अगल-बगल प्रकीर्णन कम होना, जिससे स्वस्थ ऊतकों को कम विकिरण प्राप्त हो (3) उच्चतर शक्ति का त्वचा पर असर न होना। 1970 तक पूरी दुनिया में वैद्यकीय में विकिरणोपचार के लिए 157 बीटाट्रान प्रयोग में आ रहे थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय रडार के विकास के बाद तकनीक और उपकरणों के उपलब्ध होने पर उच्च क्षमता की सूक्ष्म तरंगों का प्रयोग संभव होने पर पूरी दुनिया में लगभग 10 समुदायों ने सूक्ष्म तरंग इलेक्ट्रॉन रेखीय त्वरक बनाना शुरू कर दिया। 1952 में विकिरणोपचार के लिए बनाया गया पहला इलेक्ट्रॉन रेखीय त्वरक लंदन में हेमरस्मिथ अस्पताल में लगाया गया। 8 एम. इ. वी. पर चलाया जाने वाला यह त्वरक 1948 में फराई और उसके सहयोगियों द्वारा विकसित किया गया जिसे 1956 में केलिफोर्निया में स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी अस्पताल में लगाया गया। 1959 में स्केग्स, लान्जी और अन्य सहयोगी कर्मचारियों ने मरीजों के उपचार के लिए 5 से 50 एम इ वी (MeV) तक इलेक्ट्रॉन शक्ति वाली गतिशील तरंग वाले रेखीय त्वरक से पहले स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन पुंज का निर्माण किया और प्रयोग में लाना शुरू किया।

कदाचित द्वितीय विश्व युद्ध के समय महत्वपूर्ण वैज्ञानिक घटना नाभिकीय रिएक्टर का सफलतापूर्वक चलाया जाना था। इसे नियंत्रित नाभिकीय ऊर्जा के

उत्पादन किये जा सकने के कारण चिकित्सा के क्षेत्र में भी उपयोगी पाया गया ।

रिएक्टर से रेडियोसक्रिय समस्थानिकों का उत्पादन संभव हुआ और फिर बहुत से अस्पतालों में नाभिकीय उपचार विभाग की स्थापना संभव हो सकी । कोबाल्ट-60 विकिरणोपचार के लिए प्रयोग किया जाने लगा । यह उल्लेखनीय है कि 1951 में पहली कोबाल्ट-60 दूरोपचार मशीन प्रयोग में लायी गयी । 1954 में लान्ज़ी, स्केग्स और उनके सहयोगियों ने यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो में घूमने वाला समकेंद्रिक कोबाल्ट-60 दूरोपचार संयंत्र डिजाइन किया और उपचार के लिए प्रयोग में लाना शुरु किया । भारत में, केरल में त्रिवेंद्रम के मेडिकल कॉलेज के अस्पताल में कैन्सर के मरीजों के उपचार के लिए कोबाल्ट-60 संयंत्र की स्थापना 1961 में की गयी । वहां के प्रथम चिकित्सा भौतिकशास्त्री कार्था थे । 1970 तक पूरी दुनिया में 1830 कोबाल्ट-60 मशीनें कार्य करने लगीं ।

1953 तक मरीज को मिलने वाली विकिरण मात्रा (डोज़) हवा के आयतन में आयनीकरण की मात्रा के रुप में मापी जाती थी । जब 1953 में कोपेनहेगन, डेनमार्क में विकिरण विज्ञान की सातवीं अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस हुई तो वैज्ञानिकों ने किसी भी आयनीकारक विकिरण की अवशोषित मात्रा की इकाई "रैड" स्वीकार की । यह ऊतक को मिला कर किसी भी अवशोषक के प्रति ग्राम में अवशोषित 100 अर्गस की इकाई ग्रे और सेंटीग्रे स्वीकार की गयीं (100 रैड = 1.0 ग्रे)

1972 में सी. टी. स्कैनिंग के नाम से जानी जाने वाली संगणक आधारित टोमोग्राफी सामने आयी । इसमें कई संसूचक, सभी तरफ से क्ष-किरणों को अवशोषित करते हैं तथा मरीज के शरीर के चारों ओर घूमते हैं । एक संगणक इन सभी क्ष किरणों के त्रि आयामी चित्र एक दूरदर्शन परदे पर प्रदर्शित करता है । इस विकास के लिए एक इंजीनियर हॉन्सफील्ड और एक भौतिकशास्त्री कोरमार्क को 1979 में औषध विज्ञान के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया । आज कैंसर के मरीज की उपचार योजना में सी. टी. स्केनिंग के अलावा एम. आर. आई और सिमुलेटर भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं । 1980 तक पूरी दुनिया में लगभग 42 प्रयोगशालाएं स्थापित की गयीं जहां पर विकिरणोपचार पाने वाले मरीजों को मिलने वाली विकिरण की परिशुद्ध मात्रा निर्धारित करना संभव हो सका ।

इस प्रकार पिछली शताब्दी में भौतिकी के अनुप्रयोग के कारण विकिरणोपचार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार हुआ । हालांकि चिकित्सा अभी भी एक कला समझी जाती है पर नाभिकीय एवं परमाण्विक भौतिक विज्ञान के विकास ने विकिरणोपचार को एक सुदृढ़ वैज्ञानिक आधार दिया है ।

**डॉ. श्रीमती प्रेम भार्गव**

एफ-6/1, सेक्टर 7, वाशी, नयी मुंबई - 400 703

**विज्ञान-कविता**

## पर्यावरण

पर्यावरण की हो अगर रक्षा,
हमें मिलेगी संपूर्ण सुरक्षा ।
पेड़ लगायें पौधे लगायें,
मन में यह संकल्प जगायें ।।
प्रदूषण से मिले हमें मुक्ति,
प्रकृति की गोद में है संतुष्टि ।
वायु एवं जल हो शुद्ध,
नहीं हो कभी परमाणु युद्ध ।।
प्रगति की राह पर बढ़ते चलें,
पराये को भी गले लगाते चलें ।
प्राकृतिक संपदा हो सुरक्षित,
रहें हम सदा आनंदित ।।
मन से यही संकल्प करें,
पर्यावरण को सुगंधित करें ।
प्रगति होगी विकास होगा,
हर चेहरे पर निखार होगा ।।

**दिलीप भाटिया**

टाईप V-5, अणुकिरण कॉलोनी, रावत भाटा,
भाभा नगर, कोटा-राजस्थान - 323307

## बाल विज्ञान

# बिजली के तारों पर बैठी चिड़िया को करंट क्यों नहीं लगता ?

जैसे ही हमारा स्पर्श विद्युत तारों से हो जाता है तो हमें करंट लग जाता है। परंतु चिड़िया के तार पर निरंतर बैठी रहने पर भी उसे करंट नहीं लगता। ऐसा क्यों होता है ?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने से पहले हमें यह पता होना चाहिए कि आखिर करंट क्यों लगता है। करंट लगने की प्रक्रिया में स्पर्श किये जाने वाले तार उच्च वोल्टता के होते हैं। हम यहां उच्च वोल्टता से अभिप्राय विद्युत की उच्च शक्ति से ले सकते हैं। सदैव करंट का लगना दो वस्तुओं अथवा दो स्थानों के बीच विद्युत प्रवाह से होता है। जैसे ही हम तार को स्पर्श करते हैं तो तार द्वारा विद्युत हमारे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। यानि कि पृथ्वी में जाने के लिए उसे हमारे शरीर से होकर जाना पड़ता है। ध्यान रहे कि पृथ्वी की वोल्टता शून्य होती है। इसीलिए, करंट उच्च वोल्टता से पृथ्वी की ओर बहता है। बस, इस प्रक्रिया में सुचालक माध्यम की आवश्यकता होती है जो हमारे शरीर द्वारा पूरी कर दी जाती है।

अब हम अपने मूल प्रश्न पर लौट आते हैं। यहां स्पष्ट है कि चूंकि चिड़िया केवल उच्च वोल्टता के तार पर बैठी रहती है अत: उसका निम्न वोल्टता से संपर्क नहीं हो पाता और उसे करंट नहीं लगता। हां, जब कभी आंधी-तूफान में बिजली के किन्हीं दो तारों के बीच दूरी कम हो जाती है और चिड़िया का शरीर दूसरे तार से छू जाता है तो चिड़िया को भी करंट लगता है और वह काल-कलवित हो जाती है। खंभे के पास तार पर बैठी चिड़िया प्राय: खंभे से रगड़कर अपनी चोंच साफ करने लगती है इससे करंट उसके शरीर से होकर पृथ्वी में प्रवेशकर जाता है, तब भी वह मर जाती है।

# क्या सौर ऊर्जा से सूर्य ताप से अधिक ताप प्राप्त किया जा सकता है ?

हम सौर ऊर्जा का उपयोग कर पृथ्वी पर ताप प्राप्त करते हैं। यह ताप सौर किरणों को परावर्तकों या लैंसों द्वारा संकेंद्रित कर प्राप्त किया जाता है। अब प्रश्न है कि यदि यह संभव हो जाये कि सौर किरणों को विशाल परावर्तकों अथवा लैंसों से इकट्ठा किया जा सकता है, तो क्या ताप सूर्य के ताप के बराबर अथवा अधिक प्राप्त किया जा सकता है ?

मान लीजिए हम ऐसे परावर्तक बनाने में सफल हो जाते हैं जो सौर ऊर्जा को इकट्ठा कर ताप को 6000 डिग्री केल्विन से अधिक कर देता है। ऐसी स्थिति में पृथ्वी पर ताप सूर्य के ताप से अधिक होने से ऊष्मा पृथ्वी से सूर्य की ओर विकिरित होगी। परंतु यह विज्ञान के एक नियमानुसार असंभव है। इस नियम के अनुसार ऊष्मा, बिना किसी बाह्य सहायता के, कम ताप वाली वस्तु से उच्च ताप वाली वस्तु की ओर स्थानांतरित नहीं हो सकती। अत: यहां हमारा यह मानना कि पृथ्वी पर सूर्य द्वारा उत्पन्न ऊष्मा से अधिक ताप (6000 डिग्री के.) प्राप्त किया जा सकता है, गलत है। सैद्धांतिक रूप में भी पृथ्वी पर $6000^0$ के. से काफी कम ताप उत्पन्न करना ही संभव है।

## तारे क्यों टिमटिमाते हैं ?

अंतरिक्ष में वे पिंड जिनका अपना प्रकाश होता है तारे कहलाते हैं। सूर्य भी एक तारा है। तारों से प्रकाश निरंतर निकलता रहता है और समय विशेष में उसमें कोई परिवर्तन भी नहीं होता है, फिर भी वे टिमटिमाते दिखाई पड़ते हैं। इस टिमटिमाने का क्या कारण है ? आइए इस पर विचार करें।

दिन में सूर्य की किरणों से सबसे पहले पृथ्वी के समीप की वायु परतें गर्म होना शुरू होती हैं। इसके बाद क्रमानुसार ऊपर की पर्तें गर्म होती जाती हैं। यह प्रक्रिया सूर्य के अस्त होने के बाद भी जारी रहती है। यहां हम आपको बता दें कि वायु की पर्तें गर्म होकर फैलती हैं और विरल हो जाती हैं। इस प्रकार, इस प्रक्रिया के जारी रहते हुए वायुमंडल की पर्तों की विरलता (अथवा अघनता) में परिवर्तन होता रहता है। प्रकाश जब इन पर्तों से होता हुआ हमारी आंख में पहुंचता है तो वह टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर चलता है। मसलन, पूर्व में जो किरणें तारे की स्थिति प्रकट कर रही थीं उसके स्थान पर दूसरी किरणें तारे की दूसरी स्थिति दिखाने लगती हैं। इसी प्रकार, तीसरी, चौथी— आदि किरणें तारे की स्थितियां थोड़ा-थोड़ा भिन्न दिखाती हैं। इसी को तारों को टिमटिमाना कहा जाता है। हालांकि, तारे की आभासी स्थिति में परिवर्तन होता रहता है, परंतु यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि हमें केवल टिमटिमाने की ही अनुभूति होती है। यह परिघटना प्रकाश के अपवर्तन के नियमों पर आधारित होती है। यदि पृथ्वी पर वायुमंडल न होता तो अपवर्तन के अभाव में किरणें सीधे हमारी आंखों में पहुंचती और हमें तारों के टिमटिमाने की घटना परिलक्षित नहीं होती। यही कारण है कि चंद्रमा पर हम तारों को टिमटिमाते हुए नहीं देख सकते।

## तारे हमें छोटे क्यों दिखाई देते हैं ?

दूर की वस्तु हमें छोटी दिखाई पड़ती है। इसीलिए हमें तारे छोटे दिखाई पड़ते हैं। परंतु यह हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं है। क्या कारण है कि दूर की वस्तुएं हमें छोटी दिखाई देती हैं ? यह स्वरूप है हमारे प्रश्न का।

दरअसल हमारे प्रश्न का उत्तर आंखों द्वारा वस्तुओं को देखने की प्रक्रिया में छिपा है। इस प्रक्रिया में वस्तु से आने वाली किरणें हमारी आंखों में पहुंचती हैं और आंखों में स्थित रैटिना पर वस्तु का प्रतिबिंब बनाती हैं। तब वहां स्थित उत्तेजित नाड़ियों द्वारा बनाया गया चित्र मस्तिष्क में पहुंचा दिया जाता है। और हम चित्र देखने लगते हैं। प्रतिबिंब का छोटा या बड़ा बनना आंख पर वस्तु द्वारा बनाये गये कोण पर निर्भर करता है। इसे "दर्शन कोण" कहा जाता है। यदि बड़ी वस्तु दूर स्थित है तो वह आंख पर किसी ऐसी छोटी वस्तु द्वारा बनाये गये कोण के बराबर कोण बनायेगी जो पास में स्थित है। यहां आपको बता दिया जाये कि वे तारे जो हमसे अरबों प्रकाश वर्ष दूर हैं, आंख पर अत्यंत छोटा कोण बनायेंगे। अतः ऐसे तारों का दिखाई देना संभव नहीं होता। इतना ही नहीं छोटे आकार के तारे पास होते हुए भी नहीं दिखाई दे सकते। ऐसे तारों को देखने के लिए टेलीस्कोप का सहारा लिया जाता है। यदि उक्त पिंडों का प्रकाश कम होता है तो इन्हें शक्तिशाली रेडियो टेलीस्कोप द्वारा देखा जाता है। रेडियो टेलीस्कोप, रेडियो तरंगों को ग्रहण कर उन पिंडों का चित्र ले लेता है।

## पृथ्वी घूमती है परंतु हमें इसका पता नहीं चल पाता है, क्यों ?

यदि हमारे सामने कोई वस्तु घूर्णन कर रही होती है तो वह हमें प्रत्यक्षतः दिखाई पड़ती है। हमारी पृथ्वी पश्चिम से पूर्व को घूमती हुई 24 घंटे में अपनी धुरी पर एक चक्कर लगा लेती है। अब प्रश्न है कि घूर्णन करती हुई पृथ्वी हमें परिलक्षित क्यों नहीं होती ? क्योंकि हमारे घरों के दरवाजे सदा एक दिशा में ही रहते हैं। वे पूर्व से दक्षिण, पश्चिम अथवा उत्तर में नहीं हो सकते। आइए, इस प्रश्न पर विचार करें।

सर्वप्रथम, हमें यह समझ लेना आवश्यक है कि दिशाएं निरपेक्ष नहीं है, वे प्रति क्षण बदलती रहती हैं। मसलन, जिस दिशा को हम भारतवासी ऊपर कहेंगे वही अमेरिका वासियों के लिए नीचे की दिशा को इंगित करेगी। इसी प्रकार, हमारा नीचे या पूर्व दिशा उनके लिए क्रमशः (उसी समय) ऊपर व पश्चिम दिशा होगी। हां, उत्तर या दक्षिण दिशा समान हो सकती है। परंतु वे भी सार्वकालिक नहीं हो सकतीं। हमारी पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा 365 दिन में करती है और सदैव परिक्रमा तल से 66.5 अंश का कोण बनाती है। पृथ्वी के घूर्णन से पृथ्वी के विभिन्न भाग क्रमशः सूर्य की ओर आते जाते हैं। सूर्य की ओर इंगित करने वाली दिशा को हम पूर्व दिशा निर्धारित करते हैं। चूंकि अंतरिक्ष में ऐसा कोई बिंदु अथवा तारा ऐसा नहीं है जो सदैव स्थिर रहे, अतः हम अंतरिक्ष में अपनी स्थिति का अनुमान नहीं लगा सकते। हम केवल सापेक्षिक गति को ही परिलक्षित कर सकते हैं। ट्रेन में बैठे हुए हम दूसरी ट्रेन की सापेक्षिक गति को ही देखते हैं और हमें इस बात का पता नहीं चल पाता है कि कौन सी ट्रेन चल रही है। इसी प्रकार, हमें स्थिर आधार के अभाव में पृथ्वी के घूर्णन का आभास नहीं हो पाता।

## क्या चंद्रमा पृथ्वी से दूर हट रहा है ?

वैज्ञानिकों का विचार है कि चंद्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से ही हुई है। कालांतर में पृथ्वी और चंद्रमा बीच दूरी बढ़ती गयी और वर्तमान में यह दूरी 384000 किलोमीटर के लगभग है। अभी भी यह दूरी बढ़ती जा रही है और प्रतिवर्ष चंद्रमा पृथ्वी से लगभग एक सेंटीमीटर दूर खिसक जाता है। यह कैसे होता है ?

पृथ्वी और चंद्रमा पर बाहर से ऐसा कोई कारण नहीं बनता जिसके कारण उनकी घूर्णन गति कम अथवा अधिक होती जाये। विज्ञान के एक नियमानुसार, ऐसी स्थिति में पृथ्वी और चंद्रमा का कुल कोणीय संवेग स्थिर रहता है। यानि कि यदि पृथ्वी की घूर्णन गति कम होती है तो चंद्रमा की दूरी बढ़ती है और यदि पृथ्वी की घूर्णन गति अधिक होती है तो चंद्रमा की पृथ्वी से दूरी कम होती है। इसका अर्थ हुआ कि चंद्रमा का पृथ्वी से दूर जाने के लिए आवश्यक है कि पृथ्वी की उसके अक्ष पर घूर्णन गति कम हो। क्यों होती है यह गति कम ? इसका कारण है पृथ्वी पर चंद्रमा के आकर्षण बल द्वारा ज्वार उत्पन्न करना। ज्वार में ऊंची उठी हुई जल राशि और पृथ्वी के बीच सापेक्ष गति पैदा हो जाती है। यानि कि यह जलराशि पृथ्वी की घूर्णन गति को रगड़ द्वारा कम करने का प्रयत्न करती है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इस प्रकार, इस विवेचन से स्पष्ट है कि पृथ्वी की घूर्णन गति कम होती है और इसी कारण चंद्रमा पृथ्वी से दूर हटता जा रहा है।

वैज्ञानिकों के अनुसार जब चंद्रमा और पृथ्वी का घूर्णन काल बराबर हो जायेगा तब चंद्रमा और दूर नहीं हटेगा। तब सूर्य के कारण उत्पन्न ज्वार पृथ्वी की घूर्णन गति कम करने का प्रयत्न करेगा जबकि चंद्रमा उसकी घूर्णन गति को बढ़ायेगा। इस प्रकार, चंद्रमा पुनः पृथ्वी की ओर लौटना शुरू कर देगा। जब तक कि वह पृथ्वी पर न गिर पड़े। परंतु इस प्रक्रिया में अभी काफी लंबा समय लगेगा।

## वायु में नट कलाबाजी कैसे करते हैं ?

कभी-कभी आपने देखा होगा कि नट विभिन्न करतब दिखाने के साथ वायु में कलाबाजी का खेल भी प्रदर्शित करते हैं। तेजी से दौड़ते हुए बीच रास्ते में ही वायु में कलाबाजी करने लगते हैं और फिर दौड़ना शुरू कर देते हैं। यह कलाबाजी कैसे की जाती है ? आइए देखें कि यह कैसे होता है।

नट के द्वारा कलाबाजी प्रदर्शित करने में एक तख्ते का इस्तेमाल किया जाता है। यह तख्ता एक ओर से कुछ उठा होता है। दूसरे सिरे पर यानि कि ऊंचे उठे सिरे पर धक्का मारकर नट कुछ ऊपर उछलता है। इस प्रकार, तख्ता

*(कृपया शेष पृष्ठ - 110 पर देखें)*

# विज्ञान समाचार

## भा. प. अ. केंद्र से :

### 1. बंद परिपथ टेलीविजन नियंत्रण प्रक्रम :

भा. प. अ. केंद्र ने पिछले वर्ष विस्तारित बंद परिपथ टेलीविजन (डिस्ट्रिब्यूटेड क्लोज्ड सर्किट टीवी) नियंत्रण प्रक्रम की तकनीक का हस्तांतरण ई. सी. आई. एल. के इलेक्ट्रॉनिक प्रभाग को किया है ।

प्राय: बड़े विस्तृत क्षेत्रों, जैसे कि नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र, औद्योगिक संकुल, विमान-पत्तन, बंदरगाह या बड़ी इमारतों आदि, का मॉनीटरन बंद परिपथ टेलीविजन प्रक्रम द्वारा किया जाता है । वांछित क्षेत्र में आवश्यक स्थलों पर टीवी कैमरे लगाकर - उनसे प्राप्त विडियो सिगनलों को एक केंद्रीय स्थल पर प्रेषित कर, वहां से कैमरों को नियंत्रित कर उस क्षेत्र का मॉनीटरन किया जाता है । इन विडियो सिगनल के प्रेषण व कैमरे के नियंत्रण सिगनलों को (जिनसे उन्हें दृश्य पर जूम, व पैन कराया अथवा उन्हें झुकाया या उनकी परितारिका (आइरिस) को खोला जा सके) प्रेषित करने के लिए केबल की काफी लंबाई लगती है । सुरक्षा कक्ष से ही ऑपरेटर द्वारा कंट्रोल सिगनल भेजे और कैमरों से सिगनल प्राप्त किये जाते हैं ।

भा. प. अ. केंद्र के इलेक्ट्रॉनिकी प्रणाली प्रभाग (ई. एस. डी) द्वारा विकसित विस्तारित बंद परिपथ टीवी नियंत्रक प्रणाली का मुख्य उद्देश्य केबल खर्चे को कम करना है । इसमें एक मुख्य (मास्टर) नियंत्रक केंद्रीय स्थल (सुरक्षा कक्ष) में व सहायक (दास) नियंत्रक कैमरे के निकट लगाये जाते हैं । मुख्य नियंत्रक व सहायक नियंत्रक के बीच एक ही समाक्षीय (कोएक्सिल) केबल पर आवृति विभाजन बहुसंकेतन (मल्टी प्लेकसिंग) प्रणाली से विडियो व नियंत्रक सिगनल भेजे जाते हैं जिससे नियंत्रण केबल की आवश्यकता नहीं रहती । नियंत्रक सिगनलों के प्रेषण हेतु प्रत्येक दिशा के लिए एक-एक वाहक आवृत्ति का उपयोग किया जाता है । इस प्रक्रम में कैमरे के निकट किसी भी खतरे की सूचना से जुड़े आंकड़े (जैसे घुस-पैठ सूचक अलार्म, दरवाजों की स्थिति, अलार्म की तोड़-फोड़ आदि की स्थिति वगैरह) को भी इसी केबल से प्रेषित किया जा सकता है । प्रत्येक सहायक नियंत्रक दो कैमरों को संचालित कर सकता है व चार अलार्मों से प्राप्त सूचनाओं को संसाधित (प्रोसेस) कर चार त्रिस्तरीय निर्गत सिगनल दे सकता है । कैमरों को सामान्यत: प्रयुक्त सितारा विन्यास में लगाने के बदले, आठ कैमरों को एक लूप में जोड़कर आवश्यक केबल की लंबाई को और भी घटा कर लागत मूल्य में कमी की गयी है । इस तरह के आठ लूपों का परिचालन एक मुख्य नियंत्रक द्वारा करने से इस प्रक्रम की क्षमता 64 कैमरों से निरीक्षण करने की हो गयी है । मास्टर नियंत्रक इसके अतिरिक्त अलार्मों से प्राप्त विभिन्न 52 आगत सिगनलों का संसाधन कर 56 तर्क संगत निर्गम संदेश दे सकता है । मुख्य नियंत्रक 8051 माइक्रोकंट्रोलर पर व सहायक नियंत्रक 8749 माइक्रो-कंट्रोलर पर आधारित हैं । मुख्य नियंत्रक को IBM-PC से जोड़ने से संचालन के दौरान ही कैमरों का विन्यास परिवर्तन करना संभव हो जाता है ।

### 2. विकिरण भेषजों (रेडियो फार्मास्युटिकल्स) में सन्निध डाइअमीनों का उपयोग :

विकिरण भेषजों (रेडियोधर्मी न्यूक्लीय दवाड़यों) का उपयोग न्यूक्लीय औषधियों के रुप में बीमारियों के निदान व उपचार में बहुतायत से होता है । $^{99m}Tc$ या $^{186}Re/^{188}Re$ पर आधारित विकिरण भेषजों की प्रभावशीलता अनूठे संलग्नियों (लीगेंड्स) के अभिकल्पन व संश्लेषण करने पर निर्भर करती है । अत: उचित प्रतिस्थापित संलग्नियों (वे रासायनिक यौगिक जिनमें दो अमीन समूह दो पड़ोसी कार्बन परमाणुओं पर होते हैं) का अनुप्रयोग, भेषज-संश्लेषण में, संकुलक कर्मकों (कांप्लेक्सिंग एजेंटों) व काइरल सहायकों (ऑक्जलरीज) के रुप में काफी होता है । $N_2O_2$, $N_2S_2$ व $N_4$ संलग्नियों वाले उचित प्रतिस्थापित सन्निध डाइअमीनों के कीलेटन गुणों का महत्व बढ़ रहा है और न्यूक्लीय चिकित्सा के

दोनों क्षेत्रों, निदान व उपचार, में इनका अनुप्रयोग अधिक हो रहा है ।

भा. प. अ. केंद्र के बायो-ऑरगेनिक प्रभाग ने अपने संक्रमण (ट्रांजीशन) धातुओं के माध्यम से ऑरगेनिक (जैव) अभिक्रियायों पर चल रहे मूल अनुसंधान के दौरान सहज सुलभ क्रियाधारों (सबस्ट्रेटों) के उपयोग से सन्निध डाइअमीनों के संश्लेषण की एक-चरणीय सरल विधि विकसित की है । यह विधि कम संयोजकता के टाइटेनियम अभिकारक के माध्यम से होने वाली एकल इलेक्ट्रॉन प्रक्रिया पर आधारित है। यह विधि अधिक उत्पादक है तथा कई संभावनाओं के द्वार खोलती है । इससे वांछित संकुलन गुणों से युक्त विभिन्न अभिलाक्षणिकों वाले सन्निध अमीनों को आसानी से बनाया जा सकता है। विकिरण भेषज अनुसंधान में यह विधि काफ़ी महत्वपूर्ण सिद्ध होगी ।

## 3. भा. प. अ. के. में विकसित खाद्य प्रौद्योगिकियां

### (अ) पेक्टिन का व्यापारिक स्तर पर उत्पादन :

पेक्टिन खाद्य उद्योग के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण पदार्थ है। यह जाम, जैली तथा मुरब्बे बनाने में, सलाद की सजावट में, जैलीकारक व प्रगाढ़क के रूप में अत्यावश्यक है। इसका इस्तेमाल कई दवाइयों के निर्माण में भी होता है। वसा के बदले में भी इसका प्रयोग किया जाता है । पेक्टिन की भारतीय खाद्य उद्योग की आवश्यकता लगभग 300 टन प्रतिवर्ष आंकी गयी है जबकि इसका देश में उत्पादन सिर्फ लगभग 25 टन प्रतिवर्ष ही है ।

प्रगत देशों में, पेक्टिल के दो महत्वपूर्ण स्रोत खट्टे फलों के अपशिष्ट व सेव के फलामेष हैं। सूरजमुखी के बीज, अमरूद तथा संतरे व आम के छिलके पेक्टिन के अन्य अच्छे स्रोत हैं। महाराष्ट्र राज्य में अमरूद, आम, संतरा व नींबू का उत्पादन काफी ज्यादा है। अतः इन फलों को संसाधित करने वाली इकाइयों से प्राप्त फलावशेषों से अच्छी गुणवत्ता वाला पेक्टिन कम दाम पर प्राप्त किया जा सकता है। नींबू के छिलकों से, उच्च गुणवत्ता का पेक्टिन (> 200 ग्रेड वाला) प्राप्त करने की विधि विकसित की गयी है। पेक्टिन के देशीय उत्पादन से न केवल हमारे खाद्य उद्योग की बढ़ती हुई मांग पूरी की जा सकेगी अपितु इसके आयात में खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा की बचत भी हो सकेगी ।

### (ब) फलों का परासरणी (ऑस्मोटिक) निर्जलीकरण :

सामान्यतः फलों में 75% जल होता है। अतः यदि उन्हें ठीक से भंडारित न किया जाय तो वे अतिशीघ्र खराब हो जाते हैं। यदि फलों को निर्जलीकृत न किया जाये तो उचित भंडारण भी उन्हें अधिक समय तक सुरक्षित रखने में असफल रहता है ।

परासरणी निर्जलीकरण विधि फलों को न केवल लंबी अवधि तक सुरक्षित रखती है अपितु उनकी सुरुचिता (फ्लेवर), पोषणज गुणवत्ता भी बनाये रखती है तथा वे सूक्ष्म जैविक (माइक्रोबीय) सड़न से भी बचे रहते हैं। इससे फलों के रख-रखाव, उनके परिवहन व विपणन (मार्केटिंग) की कठिनाइयां कम हो जाती हैं, तथा सभी प्रकार के फल, पूरे वर्ष भर, उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराये जा सकते हैं। ताजे पक्के केले, आम, चीकू, पपीते, सेव व अन्य उष्ण कटिबंधीय फलों से, परासरणी निर्जलीकरण विधि द्वारा 50% जल हटाया जा सकता है। इस तरह संसाधित फलों को फिर निर्वात में सुखाने से अच्छी गुणवत्ता वाला प्राकृतिक उत्पाद प्राप्त होता है, जिसे बिना किसी अन्य प्रक्रिया से गुजारे, यों ही सीधे रूप से अल्पाहार में खाया जा सकता है। निर्जलीकृत उत्पाद को दूध-पाउडर में मिश्रित कर अन्य उत्पाद तथा मिष्ठान भी बनाये जा सकते हैं ।

### (स) अपारंपरिक फलों का द्रवण :

अपारंपरिक फल वे फल हैं, जिन्हें पहाड़ी क्षेत्रों या ऊसर जमीन पर जहां सिंचाई की उचित सुविधा नहीं होती है उगाया जाता है। शरीफा, रामफल, अनार, बेर आदि इसी श्रेणी के कुछ फल हैं। भारत में महाराष्ट्र राज्य इन फलों के उत्पादन में अग्रणी है। कई सालों से ज्यादा से ज्यादा भूमि पर इन फलों के पेड़ लगाये जा रहे हैं,

जिससे हाल के कुछ वर्षों से इन फलों का उत्पादन काफ़ी बढ़ गया है। पर उचित प्रौद्योगिकी के अभाव में इन फलों का औद्योगिक संसाधन, अभी तक, उपेक्षित रहा है, जिससे इनके पूरे दाम उत्पादकों को नहीं मिल रहे हैं।

खाद्य उद्योग में, फलों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधित उत्पाद विभिन्न 'फलों के रस' हैं। घरेलू व संसार की फल-रसों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में अपारंपरिक फलों के रस अपना योगदान कर सकते हैं। ये अन्य अपारंपरिक फल-रसों की तुलना में सस्ते, साथ ही पोषण गुणों से भरपूर व स्वाद में बेहतर होते हैं।

भा. प. अ. केंद्र में विकसित, अपारंपरिक फलों की एंजाइमीय द्रवण विधि, प्रचलित पारंपरिक प्रौद्योगिकी की तुलना में अधिक लाभदायी है। पारंपरिक विधियों द्वारा फलों से रस निकालने पर, प्राप्त रस की मात्रा कम होने के साथ ही गुणवत्ता में भी सापेक्षतः कम होती है। इसकी तुलना में केंद्र में विकसित नयी विधि इस्तेमाल में सरल और कम लागत वाली है। नूतन विधि के मुख्य गुण इस प्रकार हैं :

– गूदे से बीज निकालने में सरलता,
– ज्यादा मात्रा में जूस की प्राप्ति,
– प्राप्त जूस की अधिक निर्मलता (क्लेरिटी),
– प्राप्त जूस में प्राकृतिक सुरुचिता (फ्लेवर) व प्राकृतिक रंगों के कारण उपभोक्ता द्वारा अधिक पसंद किया जाना। यह रस-निष्कर्षण विधि कई अपारंपरिक फलों के प्रौद्योगिक संसाधन में प्रयुक्त की जा सकती है। अपने गुणों के कारण यह विधि, विश्व बाजार में भारत के प्राकृतिक फल-रसों के योगदान को बढ़ाने में सहायक ही सकती है।

*अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :*
**प्रभागाध्यक्ष, खाद्य तकनीकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई- 400 085.**

प्रस्तुति : **डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला**
रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र,
मुंबई 400 085

## अन्य समाचार :

### 1. अब संभव है अल्सर का आसान इलाज

आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों ने अपने शोध के जरिए ऐसी तकनीक का विकास किया है, जिससे अल्सर का इलाज अत्यंत आसान हो गया है और एक आसान इलाज द्वारा ही अल्सर के गंभीर रोग से छुटकारा मिल सकेगा।

वैज्ञानिकों के अनुसार यदि सात दिन तक रोगियों को अंडे का योगर्ट किसी साधारण प्रति जैविक पदार्थ में मिलाकर दिया जाये, तो अल्सर को आसानी से ठीक किया जा सकता है। 10 वर्षों के अथक परिश्रमपूर्ण शोध के पश्चात इस इलाज की खोज असिस्टेंट प्रोफेसर जॉन लैंबर्ट के मार्गदर्शन में चिकित्सकों के एक दल ने की है।

अब तक माना जाता था कि पेट के अल्सर का मूल कारण आवश्यकता से अधिक आमाशयी अम्ल का निःस्राव है, इसीलिए इसके उपचार के लिए अम्ल स्राव को रोकने वाली दवाएँ ही दी जाती हैं, जिससे कुछ समय के लिए आराम तो मिल जाता है, किन्तु, ऐसा देखने में आता है कि एक वर्ष पश्चात् पुनः यह बीमारी उभर कर अपने मूल रुप में आ जाती है। किंतु पहली बार प्रोफेसर-जॉन लैंबर्ट एवं उनके सहयोगियों ने यह पता लगाया कि ग्रहणी एवं आमाशयी अल्सर वास्तव में जीवाणुओं के संक्रमण से होते हैं।

डॉ. लैंबर्ट के प्रभावशाली इलाज से इस रोग के मुख्य कारक 'हैलिकोबैक्टर पाथलोरी' नामक जीवाणु का नाश हो सकता है। इस पद्धति में सात दिन तक बिस्मथ एवं दो प्रति जैविक पदार्थों के मिश्रण से तैयार दवा लेने से रोगियों में जीवाणु का नाश संभव हो सका है। साथ ही काफी लंबे अरसे तक रोग के पुनः उभरने के लक्षण भी नहीं देखे गये। यह परीक्षण लगभग 80 प्रतिशत रोगियों पर सफलतापूर्वक किया जा चुका है।

अपने देश में भी वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद में स्थित जैविक शोध प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों ने करीब 50 लैक्टोबैसिली जीवाणुओं की जांच

की है। मनुष्य की आहार नली में लैक्टोबैसिली जीवाणु प्राकृतिक रूप से प्रति जैविक क्रिया करते हैं। इससे ऐसे छः जीवाणुओं का पता लग चुका है, जो हेलिकोबैक्टर जीवाणु का नाश करने में सक्षम हैं। अब मनुष्य पर परीक्षण के लिए इन जीवाणुओं से युक्त योगर्ट को तैयार किया जा रहा है।

प्रस्तुति : **डॉ. गणेशकुमार पाठंक,**
प्रतिभा प्रकाशन, बलिया - 277 001 (उ. प्र)

### 2. नदियों पर बांध बनाने से दिन की अवधि प्रभावित

नदियों पर बांध मुख्यतः बिजली बनाने और उन क्षेत्रों तक सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध कराने के लिए बनाया जाता है जहां अन्यथा पानी मिलना कठिन होता है। बांध बनाने से कई प्रकार की हानियां भी होती हैं जैसे भूमि के बड़े भाग का पानी में डूब कर बेकार हो जाना, ठहरे पानी के कारण नाना प्रकार की बीमारियों के जीवाणुओं का दूर तक पहुँचना, अधिक मात्रा में मीथेन ($CH_4$) गैस का पैदा होना जो कि पृथ्वी के वायुमंडल को पौधघर प्रभाव द्वारा और गर्म करती है, बांध के कारण पृथ्वी के उसके नीचे के भाग पर अतिरिक्त दबाव पड़ने पर उस भाग की चट्टानों की परतों में हलचल होने से वहां भूकंप आने की संभावना बढ़ जाती है। कहीं रेगिस्तान हरे होते हैं तो कहीं जंगल रेगिस्तान बन जाते हैं। एक नयी बात यह मालूम हुई है कि बांधों की बड़ी संख्या में बनने से पानी की बड़ी मात्रा पृथ्वी पर रोक ली गयी है साथ में मिट्टी भी। इससे समुद्र की गहराई धीमी गति से बढ़ रही है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस कारण पृथ्वी की अपने कक्ष के चारों ओर गति प्रभावित हो रही है और इसी कारण दिन लंबे हुआ करेंगे अर्थात चौबीस घंटों से बड़े होंगे। वैज्ञानिकों ने इस परिवर्तन को मापा है जो बहुत ही कम है पर आगे यह बढ़ जायेगा। उन्होंने वैज्ञानिक आधार पर ही यह भी अनुमान लगाया है कि पृथ्वी की उत्पत्ति के समय दिन बाइस घंटों के हुआ करते थे। अनुमान का आधार वही है जो बांध के कारण का है। अनुमान है कि पृथ्वी के जड़त्व आघूर्ण (मोमेंट आफ़ इनर्शिया) में परिवर्तन से ऐसा हो सकता है।

प्रस्तुति : **सलाहुद्दीन अहमद**
रेडियो रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

## संगोष्ठी समाचार :

### 1. हृदय रोग निदान एवं चिकित्सा

चिंतन व मनन वैज्ञानिक अनुसंधान के अभिन्न अंग हैं परंतु इनके लिए मानव शरीर व मन का स्वस्थ होना अत्यंत आवश्यक है। इसी संदर्भ में हिं. वि. सा. प. तथा आयुर्विज्ञान प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई के संयुक्त तत्वावधान में जनहित के लिए मानव स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न विषयों पर संगोष्ठी श्रृंखला प्रारंभ करने का निश्चय किया गया। इस दिशा में सरल तथा रोचक ढंग से हिंदी भाषा में जानकारी देने हेतु "हृदय रोग निदान एवं चिकित्सा" एक-दिवसीय संगोष्ठी का 3 अप्रैल 1996 को ट्रेनिंग स्कूल हॉस्टेल, अणुशक्तिनगर में आयोजन किया गया। भा. प. अ. केंद्र के कर्मचारियों ने अपने परिवार जनों के साथ बड़ी संख्या में इस संगोष्ठी में भाग लिया। इस संगोष्ठी में प्रख्यात चिकित्सकों ने हिंदी में वार्ताएं दीं। सर्वप्रथम हिं. वि. सा. परिषद के उपाध्यक्ष श्री रा. नि. आर्य ने मुख्य अतिथि डॉ. गंगाधरन, मुख्य कार्यपालक, ब्रिट; डॉ. आर. डी. लेले, जसलोक अस्पताल; डॉ. सी. के. गुप्ता, अध्यक्ष हिं. वि. सा. परिषद तथा आंमत्रित डॉक्टरों और सभी प्रतिभागियों का इस संगोष्ठी में स्वागत किया। डॉ. अशोक कुमार सूरी, सचिव हिं. वि. सा. परिषद ने परिषद की गतिविधियों का संक्षेप में उल्लेख किया। डॉ. पी. टी. वी. नायर ने संगोष्ठी परिचय दिया तथा डॉ. राम प्रसाद ने धन्यवाद प्रस्ताव रखा। डॉ. सी. के. गुप्ता ने अध्यक्षीय भाषण दिया। डॉ. गंगाधरन ने अपने उद्घाटन वक्तव्य में इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की यह पहली बार हुआ है कि इतनी बड़ी

संख्या में कर्मचारी अपने परिवार जनों के साथ एक वैज्ञानिक संगोष्ठी में भाग ले रहे हैं, यह एक अच्छी शुरुआत है। उन्होंने कहा कि दिल और दिमाग शरीर के महत्वपूर्ण अंग हैं उनका एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है तथा मानसिक तनाव का दिल पर सीधा असर होता है। मृत्यु के समय पहले दिल की मृत्यु होती है या दिमाग की, इस विषय पर अभी भी मतभेद चल रहे हैं। अच्छे स्वास्थ्य के लिए शांत, सरल तथा संतुलित जीवन की आवश्यकता है।

जसलोक अस्पताल, मुंबई के डॉ. आर. डी. लेले ने 'स्वस्थ हृदय - स्वस्थ मानव' विषय पर अपनी प्रमुख वार्ता में बताया कि - हृदय मांसपेशियों से बना, 350 ग्राम भार का तथा मुट्ठी के आकार का एक विलक्षण पंप है। विश्राम की अवस्था में हृदय लगभग 6 लीटर रक्त प्रति मिनट पंप करता है। व्यायाम तथा भावनात्मक आवेग की स्थिति में यह गति 10 गुना तक बढ़ सकती है। हृदय की कार्य प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन करते हुए डॉ. लेले ने हृदय की विभिन्न व्याधियों का जिक्र किया। जन्मजात हृदय रोग, रुमेटिक हृदयरोग, कोर पल्मोनेल, उच्च रक्त चाप, कोरोनरी एथेरोस्क्लेरोसिस, पेरीकार्डाइटिस आदि हृदय की विविध व्याधियां हैं। जन्मजात हृदयरोग का उपचार शल्यक्रिया से किया जा सकता है। रुमेटिक रोग से बचने के लिए शरीर के किसी भी अंग में हुई बीमारी का इलाज अवश्य कराना चाहिए। उच्च रक्तचाप एक मूक मृत्युकारक है। अतः रक्तचाप कम करने के उपाय करने चाहिए। शरीर का वजन कम रखना, भोजन में नमक कम और पोटैशियम (फलों - सब्जियों में विद्यमान) का अधिक समावेश, मनोदशा पर नियंत्रण-आदि पर अमल करना चाहिए। वार्ता के संदेश को एक निचोड़ के रूप में बताने के लिए डॉ. लेले ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ा :-

"नित्यं हिताहार विहार सेवी,
समीक्षकारी विषयेऽसक्तः।
दाता समः सत्यपर क्षमावान,
आप्तोपसेवी भवेत् आरोगः॥

सोमैया मेडिकल कॉलेज, मुंबई के डॉ. एस. शेट्टी ने 'कोरोनरी हृदयरोग की प्रारंभिक चिकित्सा व नये आयाम' पर बोलते हुए बताया कि दिल का दौरा दिल की मांसपेशियों में ऑक्सीजन का तालमेल बिगड़ जाने से पड़ता है। कोरोनरी हृदय रोग के मुख्य लक्षणों में छाती में दर्द, साँस फूलना, चक्कर आना, घबराहट, आँखों के सामने अँधेरा छाना आदि शामिल हैं। रोग की जांच ई. सी. जी., होल्टर मॉनिटरिंग, 2-डी इको सोनोग्राफी, न्यूक्लियर इमेजिंग, स्ट्रेस टेस्ट, एंजिओग्राफी आदि द्वारा की जा सकती है। कोरोनरी रोग से बचने के लिए रोग की जानकारी होना, शरीर का वजन कम करना, संतुलित व्यायाम, दूसरी बीमारियों का इलाज, स्वस्थ कोलेस्टेराल के स्तर को बनाये रखना, जल्दबाजी न करना आदि वांछनीय हैं। विशेष औषधियों जैसे - नाइट्रेट्स (सार्बिट्रेट्स), बीटा-ब्लाकर्स (सिप्लाज़), कैल्शियम चैनेल ब्लाकर्स (नेपिडेपिन), एस्पीरिन, डिजीटैलिस (डिजॉक्सिन), निद्रादायक (सेडेटिव्ज़), प्रशान्तकारक (ट्रैंक्विलाइजर्स), प्रतिशामक (एंटीडिप्रेसेंट) आदि द्वारा कोरोनरी हृदय रोग का इलाज किया जा सकता है। हाल में विकसित की गयीं दवाइयों – ट्राइमेटाजिन्स तथा कार्निटाल का भी उपयोग किया जा रहा है। रोग का शल्यचिकित्सात्मक इलाज 'एंजियोप्लास्टी' तथा 'बाई-पास सर्जरी' द्वारा भी किया जा सकता है।

सोमैया मेडिकल कालेज, मुंबई के वरिष्ठ डॉक्टर एन. वी. आप्टे ने हृदय रोग के संभावित कारणों और रोग की रोकथाम पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि पुरुष, स्त्रियों की तुलना में अधिक रोग ग्राही होते हैं। बढ़ती उम्र, धूम्रपान, मधुमेह, अतितनाव, मोटापा, दबाव, कोलेस्टेराल में वृद्धि, रक्त में फाइब्रिन फाइब्रिनोजन - स्तर में वृद्धि इत्यादि हृदय रोग को आमंत्रण देते हैं। रोग से बचाव के लिए व्यायाम अत्यावश्यक है। मध्यम दर्जे का व्यायाम हृदय रोग के खतरों से हमारी रक्षा करता है। व्यायाम से हृदय-संवहनी क्षमता में सुधार होता है। स्वाभिमान में उन्नति, खिन्नता में कमी, स्वस्थ एच डी एल कोलेस्टेराल में वृद्धि, एल डी एल के स्तर में कमी, नयी

धमनियों का खुलना, मधुमेह पर नियंत्रण, स्वास्थ्य की अनुभूति में वृद्धि आदि लाभ व्यायाम से प्राप्त होते हैं। उन्होंने बताया कि ज्यादातर 'हार्ट अटैक' रात को या सवेरे 6 से 9 बजे के बीच होते हैं।

हृदयचिकित्सा सलाहकार डॉ. संदीप राणे ने 'हृदय रोग लक्षण और निदान' पर बोलते हुए हृदय की संरचना को 'मॉडल' द्वारा समझाया। उन्होंने बताया कि चर्बी जमा होने से कोरोनरी धमनियों में अवरोध होता है। 70% तक के अवरोध की स्थिति में आदमी सामान्य रहता है। 70% से अधिक अवरोध होने पर मेहनत का काम करने पर छाती में दर्द होता है। पूर्ण अवरोध की स्थिति को 'मायोकार्डियल इनफार्क्सन' कहा जाता है। यदि छाती में बायीं तरफ दर्द हो, बहुत पसीना आये, दर्द प्रसरित हो, तो 'हार्ट अटैक' के स्पष्ट लक्षण समझ लेना चाहिए। अन्य लक्षणों में बेचैनी, चेहरे का पीलापन, अत्यधिक पसीना, हाथ-पाँव ठंडे होना, साँस लेने में कठिनाई, नाड़ी का धीमा या तेज चलना, आवाज के साथ हृदय धड़कना आदि शामिल हैं। लक्षण प्रकट होने पर प्राथमिक उपचार के रूप में एस्पीरिन की टिकिया खिलाना, आराम देना, अधिक ऑक्सीजन प्रदान करना, जीभ के नीचे नाइट्रेट की गोली रखना तथा आराम देना, डॉक्टर के पास ले जाना – आदि कार्य करने चाहिए। हृदय-गति रुक जाने पर मुंह से मुंह सांस देकर हृदय पर दबाव डालने की क्रिया के बारे में भी जानकारी दी गयी।

भा. प. अ. केंद्र औषधालय के डॉ. आर. वी. असोपा ने हृदय-रोग में पारिवारिक डॉक्टर की भूमिका की चर्चा की। पारिवारिक डॉक्टर हृदय रोग की रोकथाम करने, रोग का शीघ्र पता लगाकर चिकित्सा दिलाने तथा हृदय आघात पश्चात रोगी को पूर्व स्थिति में लाने में अहम् भूमिका निभा सकता है।

आहार विशेषज्ञ डॉ. वैशाली थट्टे ने आहार और हृदय रोग के संबंधों का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया। बीसवीं शताब्दी के वातावरण के साथ हृदय रोग का गहरा संबंध रहा है। संतृप्त खाद्य तेल कोलेस्टेराल में वृद्धि करता है। भोजन में असंतृप्त खाद्य तेलों एवं वसा का प्रयोग, वनस्पति जन्य प्रोटीन का प्रयोग, कम नमक तथा कम वसा का प्रयोग स्वास्थ्य के लिए हितकर है। विविध खाद्य पदार्थों से मिलने वाली केलारीज़ की जानकारी के अलावा खाने में नमक कम कैसे करें, कोलेस्टेराल कम कैसे करें, – आदि के बारे में भी डॉ. थट्टे ने सुझाव दिये।

संगोष्ठी के अंत में परिचर्चा-सत्र में विशेषज्ञों ने प्रतिभागियों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर दिये। प्रतिभागियों को 'कोरोनरी एंजियोप्लास्टी', 'कोरोनरीबाई-पास आपरेशन' एवं 'कोलेस्टेरोल – हृदय की परेशानियों की जड़' शीर्षक की तीन हिंदी लघु पुस्तकें भी दी गयीं। इस संगोष्ठी में कुल मिलाकर 450-500 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

प्रस्तुति : **डॉ. राज नारायण पांडेय**
**एवं रामनाथ जिंदल**
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

## 2. खाद्य उत्पादन व परिरक्षण

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, मुंबई के तत्वावधान में दिनांक 19 फरवरी '96 को सेंट्रल कॉम्पलेक्स, भा. प. अ. केंद्र में इस केंद्र के अतकनीकी वर्ग के कर्मचारियों के लिए एक-दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ। संगोष्ठी का विषय था "खाद्य उत्पादन व परिरक्षण के क्षेत्र में भा. प. अ. केंद्र का योगदान"। संगोष्ठी का विधिवत उद्घाटन, डॉ. पी. सी. केसवन, निदेशक जीव विज्ञान वर्ग द्वारा संपन्न हुआ। अपने वक्तव्य में उन्होंने खाद्य उत्पादन तथा परिरक्षण के क्षेत्र में न्यूक्लीय तकनीकी की भूमिका पर प्रकाश डाला। अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. सी. के. गुप्ता, निदेशक पदार्थ वर्ग ने आशा प्रकट की कि इस संगोष्ठी से प्राप्त जानकारी द्वारा प्रतिभागियों में जागरूकता बढ़ेगी और वे वैज्ञानिक अनुसंधान व खाद्य आपूर्ति के क्षेत्र में भा. प. अ. केंद्र के प्रयासों की सराहना कर सकेंगे। लगभग 250 प्रतिभागियों ने इस संगोष्ठी में सक्रिय रूप से भाग लिया। कार्मिक प्रभाग के अध्यक्ष श्री एस. राघवन ने प्रतिभागियों का अभिवादन किया तथा

हिं. वि. सा. परिषद के सचिव डॉ. अ. कु. सूरी ने परिषद की विभिन्न गतिविधियों का उल्लेख किया तथा भविष्य में निर्धारित कार्यक्रमों के बारे में भी बताया। संगोष्ठी के संयोजक डॉ. ए. जे. ताम्हनकर ने धन्यवाद प्रस्ताव रखा। संगोष्ठी के दो तकनीकी सत्रों में कई प्रमुख विषयों पर वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं : *जैविक पदार्थों पर विकिरण का प्रभाव, पौधों का ऊतक संवर्धन और उसके उपयोग, विकिरण के उपयोग द्वारा खाद्य परिरक्षण, संसाधन द्वारा खाद्य परिरक्षण तथा प्राकृतिक उत्पादों द्वारा फसलों की रक्षा इत्यादि।*

प्रस्तुति : **रामनाथ जिंदल**
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

## 3. उद्योग में संक्षारण नियंत्रण एवं पर्यावरण प्रदूषण :

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र मुंबई; इंजीनियरी व प्रौद्योगिकी संकाय, एम. एस. विश्वविद्यालय, वडोदरा; इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स, वडोदरा तथा इंस्टीट्यूट ऑफ मेटल्स, वडोदरा, के संयुक्त तत्त्वावधान में "उद्योग में संक्षारण नियंत्रण एवं पर्यावरण प्रदूषण" विषय पर वासविक सभागृह, इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स, वडोदरा में हिंदी में द्वि-दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन 11-12 अप्रैल 1996 को किया गया। उद्योग, अनुसंधान और विकास तथा शिक्षा संस्थानों से लगभग 100 प्रतिभागियों ने इस संगोष्ठी की गतिविधियों में सक्रिय भाग लिया।

गुजरात रिफायनरीज लिमिटेड (वडोदरा) के कार्य पालक निदेशक श्री पी. एस. राव ने संगोष्ठी का उद्घाटन किया। अपने वक्तव्य में श्री राव ने पर्यावरण प्रदूषण को नियंत्रित करने की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि जनसामान्य को साफ सुथरा पर्यावरण मिल सके। गुजरात रिफायनरीज लिमिटेड द्वारा इस दिशा में किये गये प्रयासों पर भी प्रकाश डाला गया। भा. प. अ. केंद्र, मुंबई के पदार्थ वर्ग के निदेशक डॉ. सी. के. गुप्ता ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में पर्यावरण प्रदूषण तथा उद्योग में संक्षारण नियंत्रण के महत्व पर बल दिया; कहीं ऐसा न हो कि प्रौद्योगिकी विकास मानव जाति के लिए अभिशाप ही बन जाये। संगोष्ठी संयोजक डॉ. एम. के तोतलानी ने संगोष्ठी परिचय दिया। इंजीनियरी व प्रौद्योगिकी संकाय, एस. एस. विश्वविद्यालय वडोदरा के उप प्रधान, प्रोफेसर एच. वी. भवनानी ने धन्यवाद प्रस्ताव रखा। डॉ. ए. के. सूरी, श्री किशोर कुमार और श्री एम. वी. नाईक ने क्रमशः हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, मुंबई, इंस्टीट्यूट ऑफ मेटल्स, वडोदरा तथा इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स, वडोदरा की गतिविधियों के बारे में बताया।

पांच तकनीकी सत्रों में विशेषज्ञों द्वारा 12 आमंत्रित वार्ताएं प्रस्तुत की गयीं। प्रमुख वार्ताएं निम्न विषयों पर आधारित थीं : परमाणु बिजलीघर पर्यावरण संरक्षण में योगदान; भारत का नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम; नाभिकीय अपशिष्ट - उपचार एवं निपटान; अपशिष्ट जल के उपचार हेतु प्रगत जैविक प्रकियाएं; ऊर्जा उत्पादन संस्थानों में संक्षारण समस्याएं; नाभिकीय ऊर्जा संयंत्रों में संक्षारण नियंत्रण; पेट्रोरसायन उद्योग में संक्षारण नियंत्रण; पेट्रो रसायन उद्योग में पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण; प्रणाली अभिकल्पन तरीके; औद्योगिक प्रगति एवं विभिन्न प्रदूषक तथा परिवहन-जन्य प्रदूषण का नियंत्रण।

संगोष्ठी के दूसरे दिन, भारी पानी संयंत्र, वडोदरा को देखने का कार्यक्रम भी रखा गया जिसमें लगभग 35 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

प्रस्तुति : **डॉ. एम. के. तोतलानी**
(संयोजक), धातुकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085.

## 4. नोबेल पुरस्कार : किसे और क्यों ?

वर्ष 1995 के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों एवं उनके कार्यों के बारे में कुछ जानकारी देने के उद्देश्य से हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने एक अर्ध दिवसीय सेमिनार का आयोजन 25 मार्च 1996 को किया। यह इस श्रृंखला का पंचम कार्यक्रम था। इसके अंतर्गत

भौतिकी, रसायनिकी और फीजियोलॉजी एवं मेडिसिन के वर्ष 1995 के नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों के कार्यों पर प. ऊ. विभाग के निम्नलिखित वक्ताओं द्वारा प्रकाश डाला ।

***भौतिकी नो. पु. विजेता :***

1. प्रो. फेड्रिक रायनेज (अमेरिका)
2. प्रो. मार्टिन एल. पर्ल (अमेरिका)

*विषय : उप-परमाणवीय कणों की खोज (टाव लेप्टॉन तथा न्यूट्रिनो) ।*

**वक्ता** : डॉ. वी. एम. दातार, नाभिकीय भौतिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई ।

***रसायनिकी नो. पु. विजेता :***

1. प्रो. एफ. शेरवुड रोलेन्ड (अमेरिका)
2. प्रो. मारियो जे. मोलीना (अमेरिका)
3. प्रो. पॉल जे. क्रुटजन (जर्मनी)

*विषय : ओजोन रसायनिकी ।*

**वक्ता** : डॉ. आर. डी. सैनी, रसायनिकी प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, मुंबई ।

***फीजियोलाजी एवं मेडिसिन नो. पु. विजेता :***

1. प्रो. क्रिश्चेन एन. वोलहर्ड (जर्मनी)
2. प्रो. एडवर्ड बी. लेविस (अमेरिका)
3. प्रो. एरिक एफ. वीचाउस (अमेरिका)

*विषय : एम्ब्रायेनिक विकास में आरंभिक नियंत्रण ।*

**वक्ता** : डॉ. भगवती प्रसाद, मॉलीक्यूलर बायोलॉजी ग्रुप, टी. आई. एफ. आर., मुंबई ।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. उमेश चंद्र मिश्र, निदेशक स्वास्थ्य एवं सुरक्षा वर्ग, भा. प. अ. केंद्र ने इसे विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करने वाला कार्यक्रम बताया । संयोजक डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल ने श्रोताओं का स्वागत किया और वक्ताओं का परिचय दिया । उपाध्यक्ष, श्री रामनिवास आर्य ने वक्ताओं को परिषद की ओर से स्मृति चिन्ह प्रदान किये । हर वर्ष की भांति कार्यक्रम में लोगों ने भारी संख्या में भाग लिया तथा सभी वक्ताओं के प्रस्तुतीकरण की प्रशंसा भी की ।

प्रस्तुति : **डॉ. गो. प्र. कोठियाल**
(संयोजक), भा. प. अ. केंद्र, मुंबई

❐❐❐

## बाल-विज्ञान

*(पृष्ठ 102 का शेष भाग)*

जितना लचक दार होगा उछाल उतनी ही अधिक होगी। इस उछाल के समय नट का शरीर कुछ आगे की ओर झुका होता है । जैसे ही वह ऊंची उछाल भरता है तो वह कुछ कोणीय संवेग प्राप्त कर लेता है । यानि कि ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेता है जो उसके शरीर को घूर्णन कराने का कार्य करती है । यह स्थिति प्रदान की जाती है – लचकदार तख्ते द्वारा । उछाल के दौरान नट का शरीर पूर्णतया स्वतंत्र हो जाता है । इस स्थिति में विज्ञान के एक नियम का पालन होता है । वह यह है कि उक्त स्थिति में कोणीय संवेग का स्थिर रहना । अर्थात कि यदि शरीर कुछ कम सिकुड़ा होगा तो उसका घूर्णन कम होगा और यदि शरीर को काफी सिकोड़ लिया जाये तो यही घूर्णन काफी बढ़ जाता है । उछाल के समय नट यही करता है, वह अपने शरीर को काफी सिकोड़ लेता है और वह घूर्णन करने लगता है । इसी को कलाबाजी कहते हैं । उछाल जितनी अधिक होती है उतना ही अधिक समय शरीर को घूर्णन करने के लिए मिल जाता है और इस प्रकार वायु में कलाबाजियां अधिक होती हैं । शरीर जितना लचकदार होगा उतना ही अधिक कलाबाजियां करने में आसानी होती है ।

**श्याम लाल धीमान,**
प्रवक्ता भौतिकी, द्वारा भोला सिंह रावत,
राजकीय चिकित्सालय के पीछे,
कोटद्वार (गढ़वाल) 246149

❐❐❐

एक वैज्ञानिक संस्मरण :

# जब दिन में रात हो गयी

एक दिन की बात है। हर बार की तरह सुबह हुई। धूप निकली। दिन भी निकल आया। फिर हुआ यों कि जैसे शाम होने वाली है और उसके बाद अचानक दिन में रात हो गयी। आकाश में तीन तारे भी निकल आये लेकिन फिर से जल्दी ही सुबह हो गयी। यह सब आधे घंटे के लगभग समय में घटित हुआ जो इससे पहले मैंने तो कभी नहीं देखा था। यह कोई कहानी नहीं वास्तविकता है। यह 24 अक्टूबर 1995 की बात है जब भारतवर्ष के कई स्थानों पर खग्रास सूर्यग्रहण हुआ था। ऐसा तभी होता है जब अपनी कक्षा में घूमते हुए पृथ्वी तथा चंद्रमा उस स्थिति में आ जाते हैं जब चंद्रमा सूर्य तथा पृथ्वी के बीच एक सीधी रेखा में आ जाता है। उसकी प्रच्छाया पृथ्वी पर जहां पड़ती है वहाँ पूर्ण अंधकार हो जाता है। चूंकि चंद्रमा अपनी कक्षा में सदैव गतिमान रहता है अतः खग्रास सूर्य ग्रहण की स्थिति में भी उसी गति के कारण पृथ्वी पर चंद्रमा की लगभग गोलाकार छाया भी गतिमान होती है, पश्चिम से पूर्व की ओर और जब जब, जहाँ जहाँ वह छाया पड़ती है तब तब, वहाँ वहाँ खग्रास सूर्य ग्रहण दिखलायी देता है। इस बार जब सूर्य ग्रहण भारत की भूमि पर पड़ा तो इस छाया (प्रच्छाया) की गति लगभग तीन किलोमीटर प्रति सेकंड थी (मध्यम गति)। इसे आप अपनी आँखों से आते और जाते नहीं देख सकते क्योंकि यह गति भी काफ़ी अधिक हुई। इसमें हम पृथ्वी पर चंद्रमा की गोल छाया के किनारे को भागते हुए साफ़ देख नहीं सकते क्योंकि चंद्रमा पृथ्वी से लाखों किलोमीटर दूर है। बस अचानक तीव्र गति से अंधेरा हो जाता है।

24 अक्टूबर 1995 को मैं इलाहाबाद में था। उस दिन आकाश बादलों से साफ़ था। सूर्य प्रतिदिन की भांति छः बजे से थोड़ा पहले निकला था। 7 बजकर 27 मिनट से सूर्यग्रहण आंशिक रुप से आरंभ हुआ था जो धीरे धीरे बढ़ता गया। पहले प्रकाश की तीव्रता में कमी का आभास नहीं हो रहा था पर धीरे धीरे होने लगा। आठ बजे के लगभग प्रकाश घटने लगा तथा ऐसा लगा जैसे शाम होने वाली है। सवा आठ बजे प्रकाश की तीव्रता इतनी कम हुई कि पेड़ों पर पक्षियों ने बसेरा लेकर चुप साध ली। प्रातः 8 बजकर 35 मिनट तथा 49 सेकंड पर पूर्ण सूर्य ग्रहण हो गया। चारों ओर अंधेरा हो गया। ऐसा लगता था जैसे प्रतिदिन सूर्यास्त के दस मिनट बाद का सा अंधेरा होता है। घुप्प अंधेरा नहीं कि हाथ को हाथ सुझाई न दे। उस समय वायुमंडल और ठंडा हो गया था, सूर्य की धूप की गरमी न मिलने के कारण। मैंने उस समय जो-जो नयी बातें देखी उन्हीं को यहाँ बतलाता हूँ।

जैसे ही चंद्रमा ने सूर्य को ढक लिया अर्थात पूर्ण ग्रहण आरंभ हुआ तब पूर्व-दक्षिण दिशा में क्षितिज से $60^0$ से अधिक कोण बनाने वाले गोले के चारो ओर पतला सा रूई के गाले का सा क्रीट (कोरोना) दिखलाई पड़ा जिसकी चौड़ाई समय के साथ जल्दी जल्दी बढ़ती गयी, हर जगह असमान रूप से। यह क्रीट गोल नहीं बल्कि दो विपरीत दिशाओं में लंबा था। ख़ग्रास कला (फ़ेज़) के प्रारंभ में गोले के ऊपर थोड़ा दाहिनी ओर, गोले के नीचे थोड़ी दूर पर तथा गोले के दाहिनी ओर थोड़ा अधिक दूर तीन तारे साफ़ दिखाई पड़े पर लगभग 5 सेकंड के बाद वे गायब हो गये। जब कोरोना (क्रीट) बहुत चौड़ा हुआ तब ऐसा लगने लगा जैसे पृथ्वी से केवल दो सौ फ़ीट की ऊंचाई पर चंद्रमा के आकार का गहरे फ़िरोजी और नीले-काले (ब्लू-ब्लैक) रंगों के बीच के रंग का गेंद आकाश में बहुत निकट ही हल्के अंधेरे में धीरे धीरे तैर रहा है। समय बीतने के साथ-साथ अंधकार की तीव्रता में धीरे धीरे कमी आने लगी। क्रीट मोटा होने के बाद फिर से पतला होने लगा। जब काफ़ी पतला हो गया तब गोले की परिधि पर ऊपर तथा नीचे दो तीन सूर्य की छोटी छोटी लाल-बैंगनी आग की सी लपटें स्थिर अवस्था में दिखलाई पड़ीं, दूर होने के कारण तथा इनकी लंबाई

अधिक नहीं थी। जब क्रीट की चौड़ाई न्यूनतम हो गयी, बस डोरे जैसी पतली तब उसका रंग सुनहरा चमकदार था तथा उसी के कुछ सेकंडों बाद ऊर्ध्वाधर से लगभग $30^0$ कोण पर बायीं ओर चमकदार बिंदु फूट कर तेज़ी से निकलने लगा जो पहले स्वयं सुनहरा था फिर उसका आकार बढ़ने लगा और उस बिंदु का केंद्र सफ़ेद होने लगा। अभी भी चंद्रमा की परिधि का चमकदार पतला वृत्त दिखलाई पड़ रहा था। यही 'हीरे की अंगूठी' (डायमंड रिंग) की अवस्था थी। थोड़ी देर में केवल अंगूठी का सिर शेष रह गया और सुनहरा चमकदार वृत्त गायब हो चुका था। उसके बाद तो आंशिक ग्रहण मात्र रह गया तथा 10 बजकर 2 मिनट, 28 सेकंड पर वह भी समाप्त हो चुका था। पूर्ण सूर्यग्रहण के समय जो अनुभव उसे सीधे आँखों से देखने में है वह न तो टी. वी. पर न फिल्टर (प्रकाश छन्नक) से देखने में है। मैंने भी सीधे ही उसे 15 सेकंड तक देखा।

ग्रहण के समय जानवरों या पक्षियों में कोई असाधारण बात या बेचैनी कहीं देखने को नहीं मिली जबकि इस ओर भी हमारा ध्यान था कि देखें क्या परिवर्तन आता है। बाद में उसी दिन इलाहाबाद के मछली बाज़ार (जो कि वहाँ के जीवित पक्षी बाज़ार का नाम है) के दुकानदारों से भी लगभग सभी से बातचीत की। सभी ने एक ही उत्तर दिया कि रोज़ की भाँति उन्होंने पक्षियों के पिंजड़े सुबह होते ही भूमि पर धूप में रखे तथा ग्रहण के आरंभ होने से अंत तक उनके हज़ारों पक्षियों में कोई असामान्य बात नहीं हुई सिवाय इसके कि जब शाम का सा समाँ होने लगा तो पक्षी एकदम चुप साधकर सोते हुए से हो गये थे।

अलबत्ता एक बात जो मैंने अपने घर में देखी कि श्वेत लूनी (बिना सुगंध का एक सुंदर फूल) की कलियां प्रतिदिन उन दिनों सुबह लगभग साढ़े सात बजे तक खिल जाती थीं पर उस दिन उस समय न खिलीं क्योंकि सुबह 7.27 बजे ग्रहण (आंशिक) आरंभ हो चुका था तथा उन पेड़ों में लगी कलियों के उन दिनों खिलने के समय (7.30 बजे) ग्रहण के कारण 2 प्रतिशत से कम (सूर्य के वृत्त के ग्रहण के कारण एक किनारे कटे भाग के कारण) प्रकाश में कमी हुई होगी और रोशनी की तीव्रता में इतने कम, अंतर के कारण ही श्वेत लूनी की कलियाँ न खिलीं तब तक जब तक 10 बज कर 2 से. के बाद जब हर प्रकार का ग्रहण (पूर्ण व आंशिक) समाप्त हो चुका था। यह बात लूनी के किसी और रंग के फूलों के पेड़ों में देखने को नहीं मिली जबकि उस समय वहां पर हर रंग के (आठ विविध रंग के एकरंगे व दोरंगे, चितकबरे फूलों के पेड़) अलग अलग ख़ानों में आरंभ से अंत तक धूप में पड़े थे।

यहाँ एक बात याद दिला दूँ कि इसी ग्रहण के दूरदर्शन प्रसारण में खग्रास के समय सूर्य की लपटों को दिखलाने का प्रबंध नहीं किया गया था जबकि ऐसा किया जा सकता था।

जैसे कि सामान्य स्थिति में सूर्य को सीधे एक झलक भर 1/10 से. के लिए देख सकते हैं। ठीक उसी प्रकार मैंने पूर्ण सूर्यग्रहण को सीधी आँखों, एक झलक भर के लिए देखा। लगता है कि आंख को अभी तक (25-4-96) कोई हानि नहीं हुई है।

प्रस्तुति : **सलाहुद्दीन अहमह**
रेडियो रसायनिकी प्रभाग,
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई - 400 085

❐❐❐

# कुछ फूल : कुछ कांटे

'वैज्ञानिक' वर्ष 27, अंक 2/3, अप्रैल-सितंबर 95 बहुत प्रतीक्षा के बाद मिला. "विज्ञान एवं मनोविज्ञान के बीच फंसा मानव" एक सार्थक सामयिक-सटीक संपादकीय है। बधाई।

विज्ञान की प्रगति के साथ हमारे मन-मस्तिष्क के दरवाजे निःसंदेह ही खुले हैं, परंतु इस देश की अधिकांश जनता अभी भी अंधविश्वासों व रुढ़ियों में सिमटी-सिकुड़ी हुई है। अंधेरे से उन्हें उजाले में लाने के लिए विज्ञान जानने-समझने वालों को अनवरत प्रयास करते रहने होंगे। वैज्ञानिक अनसंधान एवं उपलब्धियों का सही, सार्थक व सृजनात्मक सदुपयोग हो तभी जागृति, विकास, उत्पादन के लक्षण समाज में दृष्टिगोचर होंगे। पर्यावरण प्रदूषित न हो, इस ओर भी सजग, सतर्क एवं सावधान रहने ही परम आवश्यकता है। विज्ञान की अंधी दौड़ में हम प्रकृति से जो खिलवाड़ कर रहे हैं, वह प्रकृति के प्रति तो अन्याय है ही। उसके कुप्रभाव एवं दुष्प्रभाव से हम स्वयं भी अछूते नहीं रह सकते। आर्थिक, सामाजिक उन्नति के साथ हमें तनाव, चिंता, लाइलाज़ बीमारियां, दूषित जल, वायु एवं खाद्यान्न के रुप में जो भोगना-झेलना पड़ रहा है, उसकी विभीषिका से हम सभी त्रस्त-ग्रस्त हैं। सुबह का भूला शाम को भी घर लौट आये तो उसे भूला हुआ नहीं कहते। हम अभी भी जागें, चेतें व मनोविज्ञान एवं विज्ञान के बीच संतुलित सकारात्मक सृजनात्मक दृष्टिकोण रखें व प्राकृतिक संपदा एवं पर्यावरण-संरक्षण के प्रति जागरुक रहें, तभी वैज्ञानिक प्रगति का सही लाभ संपूर्ण मानव-जाति को मिल सकेगा।

06-04-96

**दिलीप भाटिया**
वैज्ञानिक अधिकारी,
ईंधन भरण इकाई, राजस्थान परमाणु बिजलीघर,
अणुशक्ति (कोटा) 323 303 (राज.)

---

मैंने 'वैज्ञानिक' अप्रैल-सितंबर 1995 अंक (वर्ष 27 अंक 2/3) पढ़ा। हर बार की भांति यह अंक भी बड़ा ही अच्छा तथा उच्च स्तर का है। इसी अंक के संपादकीय में 24 अक्टूबर 1995 को भारत में हुए खग्रास सूर्य ग्रहण की थोड़ी जानकारी पढ़ी। मैंने इलाहाबाद में इसी ग्रहण को स्वयं नंगी आंखों से देखा था। उन दिनों मैं पहले से वहीं मौजूद था। जो कुछ मेरे अनुभव थे उनमें से कुछ बाते मैं आपको लिख कर भेज रहा हूं। वैसे तो आपके पास इस विषय में तथा ऐसे पूर्ण सूर्यग्रहण के समय किये जानेवाले विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों के परिणामों की प्रचुर सामग्री होगी पर एक सामान्य नागरिक की दृष्टि से उसे देखने पर जो अनुभूति होती है उनमें से विशेष-विशेष बातें मैं आपको भेज रहा हूं।

25-04-96

**सलाहुद्दीन अहमद**
रेडियो रसायनिकी प्रभाग.
भा. प. अ. केंद्र, मुंबई 400 085

*अनुभूतियों को वैज्ञानिक संस्मरण के तौर पर इसी अंक में अलग से दिया गया है — सं*

---

अक्टूबर-दिसंबर अंक में, मेरा लेख, – ' क्या करता है, एड्स विषाणु मानव शरीर में जाकर।' आपने प्रकाशित किया, इसके लिए धन्यवाद।

लेख में काफी कुछ अशुद्धियां हैं। कुछ अशुद्धियां तो प्रूफ रीडिंग की हैं तथा बीच-बीच में कुछ शब्द छूट भी गये हैं। पाठकों के लाभ के लिए सही जानकारी इस प्रकार है :

(1) पृष्ठ 34 - दूसरा पैरा, आठवीं पंक्ति : जो के पश्चात यह जोड़ना है - '. . .मानव शरीर की विभिन्न रोगों से।
(2) पृष्ठ 35, तीसरा पैरा, तीसरी पंक्ति: पाली मार्क की जगह पॉली मार्फ।
(3) पृष्ठ 36, प्रथम पैरा, सातवीं पंक्ति: कोशिकाएं के बाद यह जोड़ना है। '. . कहलाती हैं जबकि टी-8 कोशिकाएं . .'।
(4) पृष्ठ 36, दूसरा पैरा के शुरु में ए. आई. वी. के स्थान पर एच. आई. वी.।
(5) पृष्ठ 37, प्रथम पैरा के अंत में : 'पाती है' की जगत 'जाती हैं'

इसी पृष्ठ पर दूसरे पैरा की आठवीं पंक्ति में : त्वचा में पाई जाने वाली के पश्चात् ये शब्द होने थे - 'लैंगहंस कोशिकाएं तथा मस्तिष्क में उपस्थित–' (ग्लायल एवं माइक्रोग्लायल कोशिकाओं को भी)।

03-05-96

**डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार**
मेन रोड, पो. - हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

**नोट** : *इन अशुद्धियों के लिए हमे खेद है। परंतु कई लेखकों से हमें विशेष शिकायत है कि लेख भेजते समय वे आवश्यक निर्देशों का पालन नहीं करते हैं। जिससे संपादन मंडल के सदस्यों को उनके लेख समझने में अत्यंत कठिनाई होती है। लिखावट के अत्यंत खराब होने के साथ-साथ वे पृष्ठ के दोनों ओर, बिना हाशिये और पंक्तियों के बीच जगह छोड़कर लिखते हैं। यदि लेख स्पष्ट लिखा गया हो तो अशुद्धियों की संभावना कम हो जाती है। महोदय, आपका हस्तलिखित पत्र एवं शुद्धिपत्र भी काफी अस्पष्ट है।*

---

वैज्ञानिक का 27 (2/3) अंक मिला, इसमें आपने हमार लेख "अग्निरोधी लकड़ी का प्रयोग" प्रकाशित किया है, इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। लेख को पढ़ने पर पता चला कि आपकी कलम से जो पांच पंक्तियां प्रारंभ में जोड़ी गयी हैं उनमें अंतिम वाक्य में लिख दिया गया है कि यह कार्य रुड़की विश्वविद्यालय में चल रहा है। इस लेख में कहीं भी रुड़की विश्वविद्यालय का नाम नहीं था, लेखकगण केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की में वैज्ञानिक हैं, लेख में पृष्ठ 30 पर साफ शब्दों में लिखा है कि यह कार्य केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की का है, फिर इस कार्य को रुड़की विश्वविद्यालय का लिखकर संपादक ने एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

27-05-96 **एन. एस. त्यागी**

तकनीकी अधिकारी, अग्नि अनुसंधान प्रयोगशाला,
केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान,
रुड़की - 247667 (उ. प्र)

**नोट** : *कथित गलती की ओर ध्यानाकर्षण हेतु धन्यवाद। वस्तुतः सी. बी. आर. आई. रुड़की की जगह पर रुड़की विश्वविद्यालय छप गया है इसका हमें खेद है। पाठक गण अपनी-अपनी प्रतियों में यह सुधार कर लें।*

---

वैज्ञानिक का जनवरी-मार्च 1995 अंक मिला। हिंदी की इस सस्ती-सुंदर वैज्ञानिक पत्रिका के पाठकों की प्रतिक्रिया की कमी पर एक कुशल संपादक को चिंतित होना स्वाभाविक ही है। बहुत से पाठक किसी पत्रिका के गुणों की प्रशंसा तो कर देते हैं किंतु उसकी कमियों पर आलोचना करने में शिष्टाचार या संकोचवश रुक जाते हैं।

मैं अपनी ही कहता हूं। मुझे अंतरिक्ष, भूगर्भ, चिकित्सा एवं अन्य नये-नये आविष्कारों एवं आविष्कृत वस्तुओं के बारे में जानने की इच्छा रहती है। इसीलिए इन विषयों की स्वतंत्र पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएं भी पढ़ता हूं। "वैज्ञानिक" में भी मैं यही चाहता हूं। किंतु, 'आविष्कार' और 'विज्ञान प्रगति' की तरह सरल-सुबोध लेख नहीं होते। यही कारण है कि उक्त अंक में 15 से 47 पृष्ठ तक के लेखों को नहीं पढ़ पाया।

यदि इसमें आप "वैज्ञानिक प्रश्नोत्तर" कॉलम आरंभ कर दें तो पाठकों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान होता रहेगा। मेरे ही मस्तिष्क में कुछ प्रश्न हैं जैसे, (1) विराट अनंत ब्रह्मांड में कहीं कृष्ण विवर (ब्लैक होल) हैं, किंतु कुछ विज्ञानवेत्ता इसे नहीं मानते, सत्य क्या है? (2) नेपच्यून और प्लूटो कितने वर्षों बाद क्रमशः सूर्य के सर्वाधिक दूरस्थ ग्रह होते रहते हैं ? (3) अनंत ब्रह्मांड की ओर अमेरिका द्वारा भेजा गया पायनियर-10 (जो 13 जून 1983 को अपना सौर मंडल छोड़ चुका है) की क्या स्थिति है ? (4) पृथ्वी से लेकर मंदाकिनी तक इस चंचल ब्रह्मांड में क्या ध्रुव तारा सचमुच स्थिर है। एवं उसके पीछे (विपरीत दिशा की ओर) अनंत ध्रुव तारे हैं, जो एक सीध में होने के कारण हम पृथ्वीवासियों को सिर्फ एक ही दिखता है। सप्तर्षि के अलावा ध्रुव तारे को और कौन-कौन घुमाता है या ध्रुव तारा भी किसी को घुमाता है ?

संभव हो तो पत्रिका में प्रश्नोत्तर कॉलम या वैज्ञानिक रोचक प्रसंग या वैज्ञानिक चुटकुले आदि दे सकते हैं। तथापि राष्ट्र भाषा हिंदी में ऐसी पत्रिका और संपादक मंडल के कुशल प्रयास के लिए धन्यवाद।

03-12-95 **आर्य प्रहलाद गिरि**

शिवमंदिर, निंगा, आसनसोल (प. ब.) - 713370

***नोट** : सुझावों के लिए धन्यवाद। पाठकों से भी निवेदन है कि इस पत्र में दिय गये प्रश्नों पर अधिकृत जानकारी भेजने का कष्ट करें। जहां तक लेखों को सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रश्न है, हमारा यह प्रयास तो सदैव ही रहता है। लेखकों से भी हमारा यही अनुरोध रहता है कि वे सरल एवं बोधगम्य लेख प्रेषित करें। फिर भी विषय की गूढ़ता को देखते हुए कहीं-कहीं क्लिष्टता का आना स्वाभाविक है। यह पत्रिका विभिन्न स्तर के पाठकों को मद्देनजर रखते हुए प्रकाशित की जाती है।*

❑❑❑

# उच्च शिक्षा पत्रिका

*विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उच्च शिक्षा पत्रिका (जनरल ऑफ हॉयर एज्युकेशन) को हिंदी में प्रकाशित कर रहा है। इस पत्रिका में उच्च शिक्षा से संबंधित समसामयिक समस्याओं और नीतियों के बारे में विचार-विमर्श एवं वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए आलेख प्रकाशित किये जाते हैं। इस पत्रिका का उद्देश्य उच्च शिक्षा से संबंधित छात्रों, शोधकर्ताओं, प्राध्यापकों को अनुसंधान के क्षेत्र में हो रहे नित नवीन समसामयिक चिंतन, विकास तथा विविध प्रवृत्तियों से अवगत कराना है। इस पत्रिका के दो अन्य कार्य भी हैं। एक यह कि 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग,' सरकार और नीति निर्धारक संस्थाओं के कार्यों के बारे में जानकारी देना और दूसरा, भारत और विदेशों में विभिन्न क्षेत्रों में हुए नये परिवर्तनों की समस्याओं और उपलब्धियों को उजागर करना।*

*उक्त पत्रिका में विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में कार्यरत/सेवानिवृत्त प्राध्यापक हिंदी में अपनी उच्च शिक्षा से संबंधित अनुसंधानपरक रचनाएं प्रकाशन हेतु भेज सकते हैं। प्रत्येक स्वीकृत रचना पर आयोग द्वारा 1,000 रु मानदेय दिया जायेगा।*

*यदि आपके महाविद्यालय में कार्यरत/सेवानिवृत्त प्राध्यापक अपनी रचनाएं हिंदी में प्रकाशित करवाना चाहें तो अवर सचिव को रचना की एक प्रति भिजवाने का कष्ट करें।*

**डॉ. मथुरा दत्त मिश्र**
अवर सचिव एवं संपादक, 'उच्च शिक्षा पत्रिका'
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नयी दिल्ली - 110 002

## आजीवन सदस्यता / "वैज्ञानिक"ग्राहकों के लिए आवेदन पत्र का प्रारूप

**श्री ललित कुमार**
कोषाध्यक्ष, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, धातुकी प्रभाग,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400 085.

**प्रिय महोदय,**

मैं, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद (भापअ केंद्र, मुंबई) का आजीवन सदस्य / "वैज्ञानिक" पत्रिका का ग्राहक बनने का इच्छुक हूं। मेरा विवरण निम्नलिखित है :

नाम (हिंदी में) : _____ (अंग्रेजी में) : _____
पता (हिंदी में) : _____ (अंग्रेजी में) : _____
_____ _____
_____ पिन _____ _____ PIN _____
व्यवसाय : _____
हिंदी की पात्रता : _____ प्रवीणता _____
(Qualification) (Specialisation)

डिमांड ड्राफ्ट /(भारतीय पोस्टल आर्डर) सं :. . . . . दिनांक : . . . . . बैंक/पोस्ट ऑफिस :. . . . . रु. . . . . .संलग्न है।

दिनांक : हस्ताक्षर :

**कृपया शुल्क "हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद" के नाम केवल बैंक डिमांड ड्राफ्ट (मुंबई) अथवा भारतीय पोस्टल आर्डर द्वारा ही कोषाध्यक्ष को भेजें।**

# विकिरण समस्थानिक [रेडियोआइसोटोप]

## वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति हेतु अनिवार्य साधन

विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी) ने देश में विविध रेडियो उत्पादों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में स्वयं को पूर्णतया समर्पित किया है। रेडियोआइसोटोप के उत्पादन एवं अनुप्रयोग हेतु इस क्षेत्र में अनुसंधान की कुछ उत्कृष्ट सुविधाएं ट्रॉंबे में स्थापित की गयी हैं। स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास कार्यों पर निर्भर रहते हुए 'ब्रिट' (बी आर आई टी) ने रेडियो आइसोटोप उत्पादों का विस्तृत रूप से विकास किया है एवं देश - विदेश के 1000 से भी अधिक संगठनों की आवश्यकताओं की आपूर्ति की है।

**कुछ महत्वपूर्ण उत्पाद एवं सेवाएं इस प्रकार हैं :**

- **विकिरण भेषज (रेडियोफार्मास्युटिकल्स) :**
  विभिन्न प्रकार के रोगों के निदान एवं थायराइड रोगों के उपचार हेतु।
- **विकिरण प्रतिरक्षा आमापन (रेडियो इम्यूनो ऐसे) किट्स :**
  हार्मोन्स तथा औषधियों की सूक्ष्म मात्रा के आकलन हेतु।
- **रेडियोस्सायन एवं विकिरण स्रोत :**
  अनुसंधान, औद्योगिक अनुप्रयोगों एवं कैन्सर रोगोपचार हेतु।
- **रेडियोग्राफी कैमरे एवं उपसाधन :**
  सांचों तथा वेल्डों के रेडियोग्राफिक निरीक्षण हेतु।
- **गामा किरणन उपस्कर :**
  चिकित्सा उत्पादों के विकिरण निर्जर्मीकरण या खाद्य किरणन हेतु।
- **विकिरण निर्जर्मीकरण सेवा :**
  प्रयोज्य चिकित्सा उत्पादों जैसे, आई. सैट, वी. कैथीटर (मूत्रनलिका), जाली का कपड़ा, रूई, शल्य ब्लेड, दस्तानें, रिक्त पात्र आदि के विकिरण निर्जर्मीकरण हेतु।

***कृपया अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें :***

**वरिष्ठ प्रबंधक एवं विपणन संचालन प्रभारी,**

**विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड (बी आर आई टी)**
**वि. ना. पुरव मार्ग, देवनार, बम्बई - 400 094.**
**टेलीफोन : 555 1676/555 3145**
**तार : ब्रिट एटम, बम्बई - 94, टेलेक्स : 011 72212 ब्रिट इन**

# इंडियन रेअर अर्थ्स लिमिटेड

शेरबानू, छटी मंजिल, 111, महर्षि कर्वे रोड,
बंबई - 400 020 (भारत)

फोन : 290 914 - 15 टैलेक्स : 011 - 83122

तार : रेअर अर्थ बंबई

**: हमारे उत्पादन :**

इलमेनाइट
रूटाइल
जरकान
जरकॉन फ्लोर (जिरफ्लोर)
जिरकोनियम ऑक्साइड
जिरकोनियम आक्सीक्लोराइड
गारनेट
सिलिमेनाइट
मोनाज़ाइट

रेअर अर्थ्स क्लोराइड
रेअर अर्थ्स फ्लोराइड
रेअर अर्थ्स ऑक्साइड एवं साल्टस
सीरियम ऑक्साइड
सीरियम हाइड्रेट
सीरियम कार्बोनेट
ट्राइसोडियम फास्फेट (डोडेकाहाइड्रेड)
समेरियम/इट्रियम/गैडोलिनियम सांद्र

*थोरियम/सीरियम नाइट्रेट - थोरियम ऑक्साइड*
*एवं*
*कृत्रिम रूटाइल*



हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के लिए डॉ. गोविंद प्रसाद कोठियाल द्वारा संपादित तथा
श्री इंद्र कुमार शर्मा द्वारा प्रिंट शॉप, चेंबूर, मुंबई (फोन : 555 2348) में मुद्रित व प्रकाशित ।

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) R. No. 18862/70
दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ. प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।


# NUCLEAR GRADE MATERIALS FOR COMMERCIAL APPLICATION

The accuracy, quality and reliability of nuclear grade pipes and tubes - in seamless tubes of different grades S. S. and alloy steels as per ASTMA 312/213/269, for chemical, nuclear, fertilizer petrochemical and power generation industries.

**Ultra pure materials** - Like Selenium, Antimony, Bismuth, Gallium, Zirconium, $POCl_3$ and other electronic grade materials upto 99.999 purity.

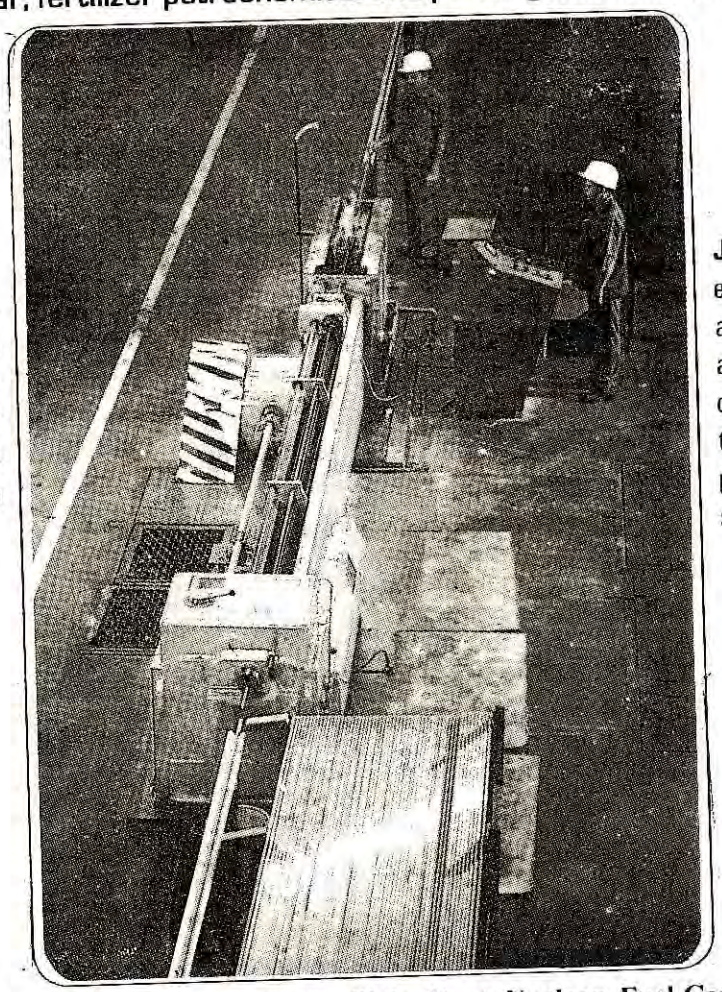

**Job Work** - For hot extrusion, cold pilgering and vacuum or hydrogen annealing of bearing or carbon steel, cupronickel, titanium or other tubes, plasma, Arc melting of special metals.

**The 8-15 cold rolling or pilger mill, built at Nuclear Fuel Complex, available for sale to Indian Industries.**

For your special material requirements, please contact :

**Marketing Manager**

**NUCLEAR FUEL COMPLEX**

ECIL POST, HYDERABAD - 500 762
Tel. No. 040 - 621239. Fax No. 040 - 621305